मध्यस्थ दर्शन - सहअस्तित्ववाद

मानव व्यवहार दर्शन

मध्यस्थ दर्शन भाग-1

मान्यता : ज्ञान की व्यापकता एवं प्रकृति का अनादित्व
सिद्धांत : श्रम - गति - परिणाम

ए. नागराज
श्री भजनाश्रम, अमरकंटक,
जिला अनूपपुर, म.प्र. (भारत) - 484886

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन

प्रकाशक :
जीवन विद्या प्रकाशन
दिव्यपथ संस्थान
अमरकंटक, जिला अनूपपुर - 484886 म.प्र. भारत

प्रणेता एवं लेखक :
ए. नागराज
सर्वाधिकार प्रणेता एवं लेखक के पास सुरक्षित

संस्करण : 2011
पूर्व संस्करण : 1972, 1978, 2001, 2004
मुद्रण : अगस्त 2015

सहयोग राशि :

जानकारी :
Website : www.madhyasth-darshan.info
Email : info@madhyasth-darshn.info

सदुपयोग नीति :
यह प्रकाशन, सर्वशुभ के अर्थ में है और इस प्रकाशन का कोई व्यापारिक उद्देश्य नहीं है। इसलिए, इसका पूर्ण अथवा आंशिक मुद्रण, निजी उपयोग (मानवीयता एवं सार्वभौम शुभ के अर्थ में) करने के लिए उपलब्ध है। इसके अन्यथा किसी भी अर्थ में प्रयोग (मुद्रण, नकल आदि) करने के लिए 'दिव्यपथ संस्थान' अमरकंटक, जिला अनूपपुर - 484886, म.प्र. भारत से, पूर्व में लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

Good Use Policy :
This publication is for 'Universal Human Good' and has no commercial intent. It may be used & reproduced (in part/s or whole) for personal use. Any reproduction, copy of the contents of this publication for non-personal use has to be authorised beforehand via written permission from 'Divya Path Sansthan' Amarkantak, Anuppur - 484886, M.P. India.

विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्वरूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सहअस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययन गम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए.नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान ''ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'' जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

   उपासना :- देवी देवताओं के संदर्भ में।

   कर्म :- स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)।

   मनु धर्म शास्त्र में :- चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।

   कर्म काण्डों में :- गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्म काण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है ? तत्कालीन वेदज्ञों

एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण, समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांङ्मय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान तथा परम्परा के अनुसार- ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार - ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोध गम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रुप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केंद्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात भी कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित सम्पूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।

7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुयें व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र सूत्र है।

सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रुप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना-आराधना-अर्चना-स्तवन कार्य सम्पन्न होता रहा।

9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवा भावी तथा श्रम शील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्नचिन्ह रहे।

10. प्रथम प्रश्न उभरा कि -

ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे ?

दूसरा प्रश्न -

ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे ?

तीसरा प्रश्न -

शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण ?

आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्‌गाता प्रमाण ?

शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण ?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न -

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जनप्रतिनिधि कैसा ?

संविधान में धर्म निरपेक्षता - एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता - एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

जनतंत्र - शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट- नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है ?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्मानीय ऋषि-महर्षियों के सुझाव से -

(1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।
सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा-विचार-इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 घण्टे से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरुप संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व सहज रूप में रहना, होना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वांङ्गमय ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र के रुप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़-चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रुप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में 'जीवन' होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई-'जीवन' रुप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण भौतिक रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रुप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था

  और

- प्राणपद
- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद
- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या, मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

- ए. नागराज

मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व

1. उद्घोष

- जीने दो और जियो ।

2. मंगल-कामना

- भूमिः स्वर्गताम् यातु,
  मानवो यातु देवताम्,
  धर्मो सफलताम् यातु,
  नित्यं यातु शुभोदयम् ॥

- भूमि स्वर्ग हो,
  मानव देवता हों,
  धर्म सफल हो,
  नित्य मंगल हो ॥

3. अनुभव ज्ञान

- सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति, सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त जड़-चैतन्य इकाईयाँ अनन्त ।
- व्यापक (पारगामी व पारदर्शी) सत्ता में सम्पृक्त सभी इकाईयाँ रूप, गुण, स्वभाव व धर्म सम्पन्न, त्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में हैं ।

4. सिद्धान्त

- श्रम-गति-परिणाम ।

5. उपदेश

- जाने हुए को मान लो ।
  माने हुए को जान लो ।

6. स्थिति

- स्थितिपूर्ण सत्ता में सम्पृक्त स्थितिशील प्रकृति।
- सहअस्तित्व नित्य वर्तमान।

7. प्रमाण

- अनुभव व्यवहार प्रयोग
- अनुभव ही प्रमाण परम
  प्रमाण ही समझ ज्ञान
  समझ ही प्रत्यक्ष,
  प्रत्यक्ष ही समाधान, कार्य-व्यवहार,
  कार्य-व्यवहार ही प्रमाण,
  प्रमाण ही जागृत परम्परा,
  जागृत परम्परा ही सहअस्तित्व।

8. यथार्थ

- ब्रह्म सत्य, जगत शाश्वत।
- ब्रह्म (सत्ता) व्यापक, जीवन पुंज अनेक।
- जीवन पुंज में अविभाज्य आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन।
  जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का वैभव।
- ईश्वर व्यापक, देवता अनेक।
- मानव जाति एक, कर्म अनेक।
- भूमि (अखण्ड राष्ट्र) एक, राज्य अनेक।
- मानव धर्म एक, समाधान अनेक।
- जीवन नित्य, जन्म-मृत्यु एक घटना।

9. वास्तविकता

- सहअस्तित्व में विकास क्रम, विकास।
- जागृति क्रम, जागृति।
- जागृति पूर्वक अभिव्यक्तियाँ समझदार मानव परम्परा।

10. ज्ञान

- सहअस्तित्व में जीवन ज्ञान ।
- सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान ।
- मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ।
- अनुभव ही ज्ञान ।

11. अनुसंधान

- गठन पूर्णता ।
- क्रिया पूर्णता ।
- आचरण पूर्णता ।

12. आधार

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति (सहअस्तित्व) ।

13. प्रतिपादन

- भौतिक रासायनिक प्रकृति ही विकास क्रम में है । परमाणु ही विकसित रूप में चैतन्य इकाई है ।
- चैतन्य इकाई अर्थात् जीवन ही जागृति पूर्वक मानव परम्परा में अखण्ड सामाजिकता सहज प्रमाण ।
- सतर्कतापूर्ण मानवीयता, देव मानवीयता एवं सामाजिकता ।
- सजगतापूर्ण दिव्य मानवीयता ।
- गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता ।

14. सत्यता

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति ही सृष्टि ।
- प्रकृति ही नियति ।
- नियति ही व्यवस्था ।
- व्यवस्था ही विकास एवं जागृति ।

- विकास एवं जागृति ही सृष्टि है ।
- नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही ऐश्वर्य (सहअस्तित्व), ऐश्वर्यानुभूति ही आनन्द, आनन्द ही जीवन, जीवन में नियम है ।
- भ्रमित मानव ही कर्म करते समय स्वतन्त्र एवम् फल भोगते समय परतन्त्र है ।
- जागृत मानव कर्म करते समय तथा फल भोगते समय स्वतंत्र है ।

15. मानव शरण

- अखण्ड सामाजिकता सार्वभौम व्यवस्था (सहअस्तित्व) सहज प्रमाण परम्परा ।

16. मानवीय व्यवस्था

- मानवीयता । मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी ।

17. व्यक्ति में पूर्णता

- क्रिया पूर्णता ।
- आचरण पूर्णता ।

18. समाज में पूर्णता

- सर्वतोमुखी समाधान ।
- समृद्धि ।
- अभय ।
- सहअस्तित्व सहज प्रमाण परम्परा ।

19. राष्ट्र में पूर्णता

- कुशलता ।
- निपुणता ।

- पाण्डित्य।

20. अन्तर्राष्ट्र में पूर्णता (अखण्ड राष्ट्र)

- मानवीय संस्कृति-सभ्यता-विधि-व्यवस्था में एकात्मता (सार्वभौमता)।

21. मानव धर्म

- सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द।

22. धर्मनीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ के सदुपयोग हेतु व्यवस्था।

23. राज्य नीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ की सुरक्षा हेतु व्यवस्था।

24. अनुगमन और चिन्तन

- स्थूल से सूक्ष्म।
- सूक्ष्म से कारण।
- कारण से महाकारण।

25. जागृति का प्रमाण

- अमानवीयता से मानवीयता।
- मानवीयता से देव-मानवीयता।
- देव-मानवीयता से दिव्य-मानवीयता।

26. मांगल्य

- जीवन मंगल।
- उदय मंगल।
- समाधान मंगल।

- अनुभव मंगल।
- जागृति मंगल।

27. सर्व मांगल्य

- मानव के चारों आयाम (कार्य, व्यवहार, विचार व अनुभूति), पाँचों स्थिति (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र) तथा दश सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में निर्विषमता (सामरस्यता) एवं एकसूत्रता।

28. महा मांगल्य

- सत्यानुभूति जागृति (भ्रम मुक्ति)।

29. उपलब्धि

- सहअस्तित्व में स्थापित मूल्यों में अनुभूति।
- समाधान, समृद्धि अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण-यही सर्वशुभ।
- भ्रम मुक्ति और नित्य जागरण।

30. शिक्षा में पूर्णता

- चेतना विकास मूल्य शिक्षा।
- कारीगरी (तकनीकी) शिक्षा।

31. परम्परा में सम्पूर्णता

- मानवीय शिक्षा संस्कार।
- मानवीय संविधान।
- मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था।

लेखकीय

मानव में साम्यत: पाये जाने वाले रूप, बल एवं बुद्धि के योगफल से निर्मित पद एवं धन तथा इन सबके योगफल से उत्पन्न शिष्टताओं एवं भौगौलिक संरचनाओं व तदनुसार आवश्यकताओं के आधार पर परस्पर सामरस्यता की कामना पायी जाती है।

शिष्टता की वैविध्यता, सम्पत्ति एवं स्वत्व की विस्तार-प्रवृत्ति की उत्कटता के अनुसार मानव में सीमाएं दृष्टव्य हैं। मानव में प्रत्येक सीमित संगठन, प्रधानत: भय-मुक्ति होने के उद्देश्य से हुआ है। सर्वप्रथम मानव ने जीव-भय एवं प्राकृतिक भय से मुक्त होने के लिये साधारण (आहार, आवास, अलंकार) एवं हिंसक साधनों का आविष्कार किया है। इन हिंसक साधनों से मानव की परस्परता में अर्थात् परस्पर दो मानव, परिवार वर्ग एवं समुदायों के संघर्ष में प्रयुक्त होना ही युद्ध है। इसके मूल में प्रधानत: संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की वैविध्यता है। साथ ही उसके अनुसरण में स्वत्व एवं सम्पत्ति के विस्तारीकरण की प्रवृत्ति भी है। यही केन्द्र-बिन्दु है। मानव, मानव के साथ संघर्ष करने के लिये, प्रत्येक संगठित इकाई अर्थात् परिवार एवं वर्ग अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ मानने के आधार पर स्वत्व और सम्पत्तिकरण के विस्तारीकरण को न्याय-सम्मत स्वीकार लेता है, फलत: उसी का प्रतिपादन करता है और आचरण एवं व्यवहार में प्रकट करता है। यही स्थिति प्रत्येक सीमा के साथ है।

इस ऐतिहासिक तथ्य से ज्ञात होता है कि प्रत्येक सामुदायिक इकाई के मूल में सार्वभौमिकता को पाने का शुभ संकल्प है। उसे चरितार्थ अथवा सफल बनाने का उपाय सुलभ हुआ है, जो ''मध्यस्थ दर्शन'' के रूप में मुखरित हुआ है। यह मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, विधि एवं व्यवस्था के लिए प्रमाणों के आधार पर वर्तमान बिन्दु में दिशा को स्पष्ट करता है।

''वर्ग विहीन समाज को पाने के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाने वाली न्याय पिपासा, समाधान एवं समृद्धि वांछा एवं सहअस्तित्व में पूर्ण सम्मति को सफल बनाने की आप्त कामना के आधार पर मध्यस्थ दर्शन को प्रकट करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है।''

''सहअस्तित्व सूत्र व्याख्या ही स्वयं में सामरस्यता है।'' सामरस्यता की स्थिति रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म की साम्यता समाधान पर आधारित है, जो दृष्टव्य अर्थात् समझ में आता है, जैसे पदार्थावस्था की प्रकृति में रूप सामरस्यता, वनस्पति अर्थात् प्राणावस्था की प्रकृति में गुण सामरस्यता, जीवावस्था की प्रकृति में परस्पर जीने की

आशा व स्वभाव सामरस्यता का प्रकटन स्पष्ट है। धर्म सामरस्यता ही मानव में अखंडता है। इसके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं में पाये जाने वाले धर्म, स्वभाव, गुण एवं रूप की सीमा में सामरस्यता की पूर्णता को पाना संभव नहीं है, यदि संभव होता तो मानव के पीछे की अवस्थाओं में सहअस्तित्व की तृप्ति को जानना, मानना था, किन्तु इनका न होना देखा जा रहा है। फलत: अग्रिम विकास में संक्रमण एवं पद में आरुढ़ता दृष्टव्य है। मानव में ही धर्म सामरस्यता को पाने की संभावना स्पष्ट हुई है। इसको पा लेना ही मानव का परमोद्‌देश्य है, उसे सर्व सुलभ कर देना ही मध्यस्थ दर्शन का अभीष्ट है। धर्म सामरस्यता का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होने से है।

''मानव-जीवन सफल हो''
''अन्य में संतुलन प्रमाणित हो''

- ए. नागराज

संदेश

भूमिः स्वर्गताम् यातु, मानवो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यम् यातु शुभोदयम् ।

व्यापक शून्यावकाश में स्थित अनन्त ब्रम्हाण्डों में से एक ब्रम्हाण्ड में अंगभूत इस पृथ्वी पर वर्तमान में पाये जाने वाले मानव अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि इनको ह्रास और विकास का अध्ययन एवम् प्रयोग करने का स्वर्णिम अवसर व साधन प्राप्त है।

अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) सबको सर्वत्र उत्प्रेरित कर रहा है कि - ''स्वयम् का मूल्यांकन कर लो- गलती अपराध नहीं करोगे फलत: दु:खी, प्रताड़ित और दरिद्र नहीं होगे।''

स्वयम् का मूल्यांकन करने के लिये स्वयम्-सिद्ध मूलभूत आधार हृदयंगम करना होगा, वह है :-

1. भूमि (अखण्ड राष्ट्र) एक - राज्य अनेक
2. मानव जाति एक - कर्म अनेक,
3. मानव धर्म एक - समाधान अनेक,
4. ईश्वर (व्यापक) - देवता अनेक।

एक- प्रत्येक मानव मानव मात्र को एक इकाई के रूप में जाने और उसके साथ तदनुसार निर्वाह कर सके - ऐसी क्षमता, योग्यता और पात्रता सहज विकास के लिए,

दो- सहअस्तित्व, सन्तुलन, समाधान, अभय और सुख सहज अक्षुण्णता के लिए,

तीन- स्वधन, स्वनारी/ स्व पुरुष तथा दया पूर्ण कार्य व्यवहार सम्पन्न जीवन दृढ़ता पूर्वक जीने में समर्थ होने के लिए,

चार- अमानवीयता से मानवीयता और मानवीयता से अति-मानवीयता की ओर गति के लिए, सुगम मार्ग पाने के लिए,

पाँच- अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में दायित्वों का सहजता पूर्वक निर्वाह करने के लिए,

छः- आशित मानवीय संस्कृति एवम् सभ्यता के ज्ञान सहित प्रमाणित होने के लिए,

सात- राष्ट्र में मानवीयता पूर्ण संस्कृति एवम् सभ्यता सहज विकास के लिए आवश्यक विधि, व्यवस्था एवम् नीति पक्ष में पारंगत होने के लिए, इनके आधार भूत तथ्यों का अध्ययन आवश्यक है।

उपरोक्त अध्ययन को सुलभ करने हेतु यह ग्रन्थ ''मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद)'' का प्रथम भाग **'मानव व्यवहार दर्शन'** के नाम से सम्पूर्ण मानव समाज को अर्पित करते हुए, मैं परम प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

पूर्ण विश्वास है कि सांकेतिक तथ्यों का अध्ययन करने के पश्चात् यह ग्रन्थ आपके व्यवहार एवम् आचरण में मानवीयता पूर्ण दृष्टि, गुण व प्रवृत्ति को प्रस्थापित करने की प्रेरणा देगा एवम् आपके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होगा जिससे -

भूमि ही स्वर्ग हो जाएगी, मानव ही देवता हो जायेगें,
धर्म सफल हो जाएगा और नित्य मंगल ही होगा ।।

- ए. नागराज

मध्यस्थ दर्शन में प्रतिपादित मूल बिन्दु

सत्ता मध्यस्थ है, व्यापक है। सत्ता में प्रकृति सम-विषम और मध्यस्थ क्रिया है, सीमित है। इसलिये सत्ता स्थिति पूर्ण है।

सत्ता में जड़-चैतन्य प्रकृति स्थितिशील है, इसलिये सत्ता में प्रकृति समायी हुई है। अत:, सत्ता में प्रकृति ओत-प्रोत है। अस्तु, सत्ता में प्रकृति सम्पृक्त है इसलिये ही प्रकृति पूर्णतया ऊर्जा सम्पन्न है। अस्तु, प्रकृति क्रियाशील है। अत: प्रकृति श्रम, गति एवं परिणामशील है। फलस्वरूप प्रकृति ही चार अवस्थाओं में प्रत्यक्ष है। इसलिये सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति में से चैतन्य प्रकृति ज्ञानावस्था में अनुभव करने की क्षमता, योग्यता एवं पात्रता से सम्पन्न होने के अवसर समीचीन है तथा चारों अवस्थाएं एक दूसरे से पूर्णता संपूर्णता के अर्थ में अनुबंधित हैं।

सत्ता मध्यस्थ है। इसलिये मध्यस्थ सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति नियंत्रित एवं संरक्षित है। प्रत्येक परमाणु में पाये जाने वाला मध्यांश (नाभिक) मध्यस्थ क्रिया है। इसलिये सम-विषमात्मक क्रियाएं एवं सापेक्ष शक्तियाँ नियंत्रित एवं संरक्षित हैं।

अनन्त क्रिया अथवा क्रिया-समूह ही प्रकृति है, जो जड़ और चैतन्य के रूप में गण्य है। जड़ प्रकृति ही विकास पूर्णता के अनन्तर चैतन्य पद को पाती है यह नियति विधि से सम्पन्न रहता है। मानव जड़ एवं चैतन्य का संयुक्त रूप है साथ ही प्रकृति का अंश भी है।

विकास क्रम में गठनपूर्णता ही विकास/जागृति क्रम में भ्रमित मानव में जागृति ही क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता है। जागृत मानव कम विकसित प्रकृति के साथ व्यवहार व्यवसायपूर्वक सदुपयोग, प्रयोजनीयता का पोषण करता है। मानव का मानव के साथ व्यवहार, अधिक जागृत के साथ गौरव करना दायित्व है तथा अधिक जागृति के लिये अभ्यास, अध्ययन एवं चिंतन करता है।

भ्रमित मानव ही कर्म करते समय स्वतंत्र एवं फल भोगते समय परतंत्र है।

इस पृथ्वी पर मानव जागृति क्रम में है। उसे जागृतिपूर्ण होने का अवसर, वांछा एवं संभावना प्राप्त है। जागृत मानव का कम विकसित के लिए सहायक होना ही उसका प्रधान लक्षण है।

पदार्थावस्था से प्राणावस्था विकसित, प्राणावस्था से जीवावस्था विकसित, तथा जीवावस्था से भ्रांति ज्ञानावस्था का पशु मानव विकसित है। भ्रांति ज्ञानावस्था के पशु मानव

से भ्रांत राक्षस मानव विकसित, भ्रांत राक्षस मानव से भ्रांताभ्रांत मानव विकसित तथा भ्रांताभ्रांत मानव से निर्भ्रान्त देव मानव विकसित है। निर्भ्रान्त देवमानव से दिव्यमानव विकास एवं जागृति पूर्ण है।

ज्ञानावस्था की इकाई दर्शन क्षमता सम्पन्न है। दर्शन, व्यापक में अवस्थित जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के संदर्भ में है।

निर्भ्रम अवस्था में ही अनुभव ज्ञान व दर्शन पूर्ण होता है। इसलिये -

निर्भ्रमता ही जागृति, जागृति ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही संप्रभुता, संप्रभुता ही प्रभुसत्ता, प्रभुसत्ता ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था है।

''मानव ही मानव के ह्रास व विकास में प्रधानत: सहायक है।''

''ज्ञानात्मनोर्विजयते ''

कृतज्ञता

उन सभी सुपथ प्रदर्शकों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिनसे आज भी यथार्थता के स्रोत जीवित हैं। कृतज्ञता जागृति की ओर प्रगति के लिये मौलिक मूल्य है। कृतज्ञता ही मूलत: संस्कृति व सभ्यता का आधारग्राही एवं संरक्षक मूल्य है।

जो कृतज्ञ नहीं है, वह मानव संस्कृति व सभ्यता का वाहक बनने का प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकता। जो मानव संस्कृति व सभ्यता का वहन नहीं करेगा, वह विधि एवं व्यवस्था का पालन नहीं कर सकता।

संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था परस्पर पूरक हैं। इनके बिना अखण्ड समाज तथा सामाजिकता का निर्धारण संभव नहीं है। अस्तु, कृतज्ञता के बिना गौरव, गौरव के बिना सरलता, सरलता के बिना सहअस्तित्व, सहअस्तित्व के बिना कृतज्ञता की निरन्तरता नहीं है।

जो मानव कृतज्ञता को वहन करता है, उसी का आचरण अग्रिम पीढ़ी के लिये शिक्षाप्रद एवं प्रेरणादायी है। यह मानवीयता में ही सफल है। जिस विधि से भी चेतना विकास मूल्य शिक्षा के लिए सहज सहायता मिला हो उन सभी के लिए कृतज्ञता है।

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

- ए. नागराज

पुस्तक में प्रयुक्त संकेत

● अनुभूतियाँ।

:: परिभाषाएँ।

★ सम्बन्ध एवम् स्पष्टीकरण।

❋ विश्लेषण अनुभूतियों अथवा परिभाषाओं का।

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृ.क्र.
1.	सहअस्तित्व	1-3
2.	कृतज्ञता	4-5
3.	सृष्टि-दर्शन	6-15
4.	मानव सहज प्रयोजन	16-43
5.	निर्भ्रमता ही विश्राम	44-55
6.	कर्म एवं फल	56-57
7.	मानवीय व्यवहार	58-62
8.	पद एवं पदातीत	63-64
9.	दर्शन-दृश्य-दृष्टि	65-72
10.	क्लेश-मुक्ति	73-77
11.	योग	78-80
12.	लक्षण, लोक, आलोक एवं लक्ष्य	81-87
13.	मानवीयता	88-90
14.	मानव व्यवहार सहज नियम	91-103
15.	मानव सहज न्याय	104-112
16.	पोषण एवं शोषण	113-120
	(i) मानव धर्म नीति	120-130
	(ii) मानव राज्य नीति	130-137
17.	रहस्य-मुक्ति	138-152
18.	सुख-शान्ति-सन्तोष और आनन्द	152-179

अध्याय - एक

सहअस्तित्व

- मैं नित्य, सत्य, शुद्ध एवं बुद्ध व्यापक सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति को अनुभव पूर्वक स्मरण करते हुए ''मानव व्यवहार दर्शन'' का विश्लेषण करता हूँ।

:: नित्य :- सदा-सदा एक सा विद्यमान है।

:: सत्य :- सदा-सदा एक सा भास-आभासमान एवं अनुभवगम्य है।

:: शुद्ध :- सदा-सदा एक सा सुखप्रद (अनुभव में) है।

:: बुद्ध :- सदा-सदा एक सा बोधगम्य है।

:: व्यापक सत्ताः- सदा-सदा प्रकृति होने और न होने के स्थलों में वैभव।

सत्ता, जड़-चैतन्य में पारगामी व परस्परता में पारदर्शी है। सत्तामयता को परमात्मा, ईश्वर, लोकेश, चेतना, शून्य, निरपेक्ष ऊर्जा, पूर्ण संज्ञा है।

:: सम्पृक्त :- सत्ता में डूबा, भीगा, घिरा हुआ जड़-चैतन्य प्रकृति है। यही सहअस्तित्व है, सहअस्तित्व ही नित्य है, यही ज्ञान है। सहअस्तित्व में ही नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, परम सत्य स्पष्ट हैं।

:: जड़ :- इकाईयाँ जो अपनी लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई की सीमा में क्रियाशील हैं।

:: चैतन्य :- इकाईयाँ जो अपने लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई की सीमा से अधिक स्थली में पुँजाकार रूप में क्रियाशील हैं। यहाँ स्थली का तात्पर्य सत्तामयता है।

- जागृत मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में गण्य है।

:: मानव :- मनाकार को साकार करने तथा मन: स्वस्थता का आशावादी और प्रमाणित करने वाले को मानव संज्ञा है।

:: व्यवहार :- एक से अधिक मानव एकत्र होने के लिए अथवा होने में जो श्रम नियोजन है उसे व्यवहार संज्ञा है।

:: दर्शन :- दृष्टि से प्राप्त समझ, अवधारणा और अनुभव ही दर्शन है।

:: दृष्टि :- वास्तविकताओं को देखने, समझने, पहचानने और मूल्यांकन करने की क्रिया की दृष्टि संज्ञा है।

:: विश्लेषण :- परिभाषाओं का प्रयोजन के अर्थ में व्याख्या की विश्लेषण संज्ञा है।

:: परिभाषा :- अर्थ को इंगित करने के लिए प्रयुक्त शब्द समूह की परिभाषा संज्ञा है ।

- व्यापक पूर्ण और इकाईयाँ अनंत हैं।

:: व्यापक :- जो सर्व देश - काल में विद्यमान है तथा नित्य वर्तमान है।

:: इकाई :- छः ओर से (सभी ओर से) सीमित पदार्थ पिण्ड की इकाई संज्ञा है। व्यापक वस्तु में सम्पूर्ण इकाईयाँ सहअस्तित्व में अविभाज्य रूप में वर्तमान हैं ।

:: अनंत :- संख्या में अग्राह्य क्रिया की अनंत संज्ञा है जिसको मानव गिनने में असमर्थ है अथवा गिनने की आवश्यकता नहीं बनती, यही अनन्त है।

- व्यापक सत्ता जागृत मानव में, से, के लिये कार्य-व्यवहार काल में नियम के रूप में, विचार काल में समाधान के रूप में, अनुभव काल में आनंद के रूप में और आचरण काल में न्याय के रूप में प्राप्त है क्योंकि सत्ता में संपूर्ण प्रकृति सम्पृक्त अविभाज्य रूप में विद्यमान है । यही सहअस्तित्व है।

:: काल:- क्रिया की अवधि की काल संज्ञा है।

:: नियम:- आचरण और क्रिया की नियंत्रण पृष्ठभूमि ही नियम है।

:: समाधान:- क्यों और कैसे की पूर्ति (उत्तर) ही समाधान है।

:: आनंद :- सहअस्तित्व रूपी परम सत्यानुभूति ही आनंद है ।

:: न्याय :- परस्परता में मानवीयतापूर्ण व्यवहार ही न्याय है।

★ **मानवीयतापूर्ण व्यवहार :-** धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा पूर्ण स्वभाव; न्याय, धर्म एवं सत्यतापूर्ण दृष्टि और वित्तेषणा, पुत्रेषणा एवं लोकेषणात्मक प्रवृत्ति से युक्त व्यवहार ही मानवीयतापूर्ण व्यवहार है।

❋ अस्तित्व में, से, के लिए जानने, पहचानने और अनुभव करने का प्रयास व अध्ययन मानव करता रहा है एवं करता रहेगा ।

:: ज्ञान को अनुभव काल में **आनंद**; सर्वत्र एक सा अनुभव में आने के कारण **सत्य**; ज्ञान में समस्त क्रियायें संरक्षित और नियंत्रित होने के कारण **लोकेश**; सर्वत्र एक सा विद्यमान होने के कारण **व्यापक**; चैतन्य के साथ **चेतना**; आत्मा से सूक्ष्मतम होने के कारण **परमात्मा**; प्रत्येक वस्तु सत्ता में सम्पृक्त, सक्रिय रहने के कारण से इसे **निरपेक्ष ऊर्जा** तथा अपरिणामिता के कारण **पूर्ण** संज्ञा है ।

- सहअस्तित्व में अनुभव ही ज्ञान का उद्घाटन है। सहअस्तित्व में अनुभव में, से, के लिए अध्ययन है। ज्ञान ही विवेक एवं विज्ञान रूप में प्रमाण है। यही ज्ञानावस्था में मानव सहज मौलिकता है।

  ★ ज्ञान स्वयं क्रिया न करते हुए अथवा क्रिया न होते हुए मानव जीवन में अनुभव स्थिति में आनन्द सहज वैभव प्रमाण है। अनुभव पूर्वक अभिव्यक्ति ही ज्ञान है। ज्ञान ही जागृत मानव में समस्त सकारात्मक क्रियाओं का आधार अथवा प्रेरणा स्त्रोत है।

- ज्ञान ही व्यापक सत्ता है। इसकी ही शून्य संज्ञा है।

  ❋ क्रियाहीनता की स्थिति की शून्य संज्ञा है तथा ज्ञान स्वयम् क्रिया न करते हुए अथवा क्रिया न होते हुए भी समस्त क्रियाओं का आधार और प्रेरणा स्त्रोत है। अतः ज्ञान और व्यापक सत्ता दोनों एक ही सिद्ध होते हैं तथा इसमें अवस्थित होने से ही क्रिया के लिए प्रेरणा प्राप्त है। ज्ञान से रिक्त और मुक्त इकाई नहीं है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - दो
कृतज्ञता

- मैं कृतज्ञता पूर्वक उन सुपथ प्रदर्शकों की वंदना करता हूँ, जिनसे यथार्थता के स्रोत आज भी जीवित हैं।

:: कृतज्ञता:- उन्नति और जागृति के लिये प्रेरणा और सहायता की स्वीकृति।

:: सुपथ:- समाधान, समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व की ओर निश्चित दिशा।

:: उन्नति :- उत्थान (समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व) के लिए प्राप्त प्रेरणा व सहायता।

:: यथार्थता के स्रोत (अकृत्रिमता पूर्वक अथवा आडंबरहीन) वास्तविकतापूर्ण ढंग से की गई अभिव्यक्ति अथवा प्रयास। सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति रूपी सहअस्तित्व को स्पष्ट करना ही यथार्थता का स्त्रोत है।

:: स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य व वस्तुगत सत्य को बोध कराने की परम्परा ही यथार्थता के स्रोत हैं।

:: वंदना :- गौरवता को व्यक्त करने हेतु प्रयुक्त चेष्टा।

:: गौरवता:- निर्विरोध पूर्वक अंगीकार किये गये अनुकरण, प्रयास, प्रवृत्ति ही गौरवता है।

- कृतज्ञता से गौरवता, गौरवता से सरलता, सरलता से सहजता, सहजता से मानवीयता, मानवीयता से सहअस्तित्व तथा सहअस्तित्व में से, के लिए कृतज्ञता प्रकट होती है।

:: सरलता :- अभिमान से रहित और यथार्थता को व्यक्त करने की विचार व व्यवहार पद्धति ही सरलता है।

:: अभिमान :- आरोपित मानदण्ड, यही अधिमूल्यन, अवमूल्यन, निर्मूल्यन दोष है।

:: सहजता :- आडंबर तथा रहस्यता से मुक्त न्यायपूर्ण व्यवहार व रीति ही सहजता है।

:: सहअस्तित्व :- परस्परता में निर्विरोध सहित समाधानपूर्ण अभिव्यक्ति ही सहअस्तित्व है।

- **मानव का समूचा व्यवहार कृतज्ञता तथा कृतघ्नता के आधार पर ही निर्भर करता है तथा मूल्यांकित व समीक्षित होता है।**

:: **कृतघ्नता :- जिस किसी से भी उन्नति व जागृति की ओर प्राप्ति में सहायता मिली हो उसे अस्वीकार करना ही कृतघ्नता है।**

"सर्व शुभ हो"

अध्याय - तीन
सृष्टि-दर्शन

- मानव ने सृष्टि दर्शन करने की कामना व प्रयास किया है, यथा जीव-जगत, ईश्वर और स्वयं को प्रतिपादित व व्याख्यायित करने का प्रयास किया है।

:: सृष्टि :- पदार्थ का संगठन एवं रचना और समृद्ध धरती तथा धरती पर प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था का प्रकाशन सृष्टि है।

- सृजन, विसर्जन, पोषण अथवा शोषण के भेद से सृष्टि दर्शन है।

:: सृजन :- इकाई+इकाई।

:: विसर्जन :- इकाई-इकाई।

:: पोषण :- इकाई+अनुकूल इकाई।

:: शोषण :- इकाई-अनुकूल इकाई।

:: पदार्थ :- पद भेद से अर्थ भेद को स्पष्ट करने वाली वस्तु की पदार्थ संज्ञा है। वस्तु का अर्थ वास्तविकता ही है।

- निरपेक्ष ऊर्जा व पदार्थों के सहअस्तित्व में ही सृष्टि कार्य है।

:: निरपेक्ष ऊर्जा :- जो व्यापक रूप में सहज सत्ता अस्तित्व है पर जिसके उत्पत्ति का कारण सिद्ध न हो, उसकी निरपेक्ष ऊर्जा संज्ञा है।

- निरपेक्ष ऊर्जा शून्य की स्थिति में सर्वत्र व्याप्त है।

:: शून्य:- जो स्वयं में क्रिया नहीं है पर सभी क्रियायें जिसमें समाहित (आवेष्टित एवं आश्लिष्ट) हैं की शून्य संज्ञा है।

- सापेक्ष एवं निरपेक्ष भेद से ऊर्जा है। इसे सापेक्ष ऊर्जा व निरपेक्ष ऊर्जा के रूप में पहचानना और समझना होता है। कार्य ऊर्जा सापेक्ष है तथा व्यापक रूप में निरपेक्ष ऊर्जा नित्य वर्तमान है।

:: सापेक्ष ऊर्जा :- ईकाइयों की परस्परता के बिना जिस शक्ति का प्रगटन न हो, वह सापेक्ष ऊर्जा है।

भौतिक रासायनिक वस्तुओं की परस्परता में अथवा परस्परता वश प्रगट होने वाली

शक्तियां जैसे दबाव, तरंग व प्रभाव को सापेक्ष ऊर्जा के रूप में पहचाना जाता है। ताप, ध्वनि, विद्युत भी सापेक्ष ऊर्जा है।

- निरपेक्ष ऊर्जा के बिना पदार्थों में मूल चेष्टा तथा पदार्थ के बिना निरपेक्ष ऊर्जा का परिचय नहीं है। निरपेक्ष ऊर्जा में प्रकृति नित्य वर्तमान है।

:: मूल चेष्टा :- श्रम, गति एवं परिणाम की सम्मलित क्रिया ही मूल चेष्टा है।

★ संपूर्ण पदार्थ अपनी परमाण्विक स्थिति में सचेष्ट हैं। इसलिए स्पष्ट होता है कि उन्हें ऊर्जा प्राप्त है। जिस ऊर्जा (शक्ति) से समस्त पदार्थ अपने परमाण्विक स्थिति में सचेष्ट है वह ही निरपेक्ष ऊर्जा है।

❋ उक्त रीति से पदार्थ एवं निरपेक्ष ऊर्जा का सहअस्तित्व सदा-सदा अविभाज्य रूप में होना सिद्ध होता है।

❋ मानव सुदूर विगत से वर्तमान तक परमाणुओं में पाई जाने वाली क्रियाशीलता के लिये मूल ऊर्जा स्रोत के संदर्भ में अज्ञात रहे। अब यह सहअस्तित्व विधि से स्पष्ट हुआ। सत्ता रूपी ऊर्जा के अस्तित्व को निरपेक्ष ऊर्जा के रूप में स्वीकारा गया है, क्योंकि इसे हम परमाणुओं की क्रिया के मूल में पाते हैं। यह निरपेक्ष ऊर्जा सर्वत्र एक सी रहने के कारण इसे **साम्य ऊर्जा** संज्ञा है। सत्ता से रिक्त व मुक्त क्रिया सिद्ध नहीं होती है। सत्ता ही **व्यापक** है। शून्य ही निरपेक्ष ऊर्जा है, शून्य ही सत्ता है।

❋ निरपेक्ष ऊर्जा एवं पदार्थ में इतना अंतर है कि निरपेक्ष ऊर्जा हर काल, स्थान व वस्तु में व्याप्त है। निरपेक्ष ऊर्जा न हो ऐसा कोई स्थान व वस्तु प्राप्त या सिद्ध नहीं है, परंतु पदार्थ न हो ऐसा स्थान है, पर ऐसा काल सिद्ध नहीं है। पदार्थ का प्रत्येक अंश ऊर्जामय है।

:: स्थान :- व्यापक सत्ता अथवा शून्य क्योंकि एक-एक वस्तु सत्ता में समायी है।

:- पदार्थ का विस्तार बराबर स्थान।

★ पदार्थ के संगठन तथा अवस्था भेद से ही पदार्थ की मात्रा एवं रूप की अवधियाँ हैं।

❋ समस्त पदार्थ ठोस, तरल अथवा विरल (वायु) के रूप में उपलब्ध हैं। इन अवस्थाओं में पदार्थ तात्विक, यौगिक अथवा मिश्रण के रूप में प्राप्त है।

:: तात्विक:- सजातीय परमाण्विक समूह के गठन की तात्विक संज्ञा है।

:: मिश्रण :- विजातीय परमाण्विक अथवा आण्विक समूह का ऐसा गठन जिसमें सभी अपने-अपने आचरण को बनाये रखते हैं।

:: यौगिक:- दो या अधिक प्रजाति की वस्तुयें निश्चित अनुपात से मिलकर, अपने-अपने आचरण को त्याग कर, अन्य प्रकार के आचरण को प्रस्तुत करते हैं।

❋ यौगिक में रासायनिक तथा भौतिक दोनों परिणाम होते हैं, जबकि मिश्रण में केवल भौतिक परिणाम होते हैं।

● परमाणुओं के मध्यांश एवं आश्रित कणों के संख्या भेद से परमाणुओं की जाति एवं अवस्था और मात्रा का निर्णय होता है ।

:: वायु :- विरल पदार्थ राशि के नृत्य (तरंग) रूप में गतिशीलता वायु है। जिनके योग से द्रव एवं ताप का प्रसव है।

● योग :- मिलन को योग संज्ञा है। योग के दो भेद हैं।

1. ऐक्य, 2. सहवास

:: ऐक्य :- सजातीय मिलन की ऐक्य संज्ञा है।

:: सहवास :- जिस योग के अनन्तर विलगीकरण संभव हो, उसकी सहवास संज्ञा है।

★ सहवास के अनन्तर उन्नति की ओर प्राप्त सम्वेगों की **प्रेरणा** संज्ञा है तथा इसके विपरीत प्राप्त सम्वेगों की **प्रतिक्रांति** अथवा **ह्रास** संज्ञा है। धारणा के प्रतिकूल **चेष्टा** को अथवा समस्या की ओर प्राप्त विवशता की भी **प्रतिक्रांति** संज्ञा है।

:: उन्नति :- गुरु मूल्यन की ओर अथवा समाधान की ओर प्रगति ही उन्नति है ।

:: सम्वेग :- संयोग से प्राप्त वेग ही सम्वेग है।

:: धारणा :- जिससे जिसका विलगीकरण संभव न हो, वह उसकी धारणा है । जो चारों पदों में अपने-अपने स्थिति के अनुसार स्पष्ट है।

:: समस्या :- किसी भी घटना अथवा क्रिया की समझ न होना ही समस्या है अथवा कैसे और क्यों समझ में न आना समस्या है।

:: समाधान :- किसी भी घटना अथवा क्रिया के नियम की समझ होना ही

समाधान है अथवा कैसे और क्यों की पूर्ति ही समाधान है।

:: गुरुमूल्यन :- दीर्घ कालीन परिणाम अथवा अपरिणामिता गुरुमूल्यन है।

- सहवास में ही प्रेरणा का प्रसव और अनुभव है तथा इसके विपरीत विवशता को प्रतिक्रांति की समीक्षा है।

- प्रेरणावादी सहवास से उभय सुकृतियाँ प्रतिक्रांतिवादी सहवास से उभयविकृतियाँ हैं।

:: उभय सुकृतियाँ :- गुरुमूल्यन अथवा दीर्घ परिणाम या अपरिणामिता।

:: उभय विकृतियाँ :- अवमूल्यन की ओर द्रुत परिणाम या ह्रास या समस्या की ओर द्रुत परिणाम।

- सहवास ही सृष्टि (रचना) का मूल कारण है। सहवास सहअस्तित्व में अभिव्यक्ति है। सहअस्तित्व नित्य वर्तमान व नित्य प्रभावी है।

  * संसार में अथवा अनंत संसार में ऐसी कोई इकाई नहीं है जो उत्थान या पतन की ओर गतित न हो क्योंकि गति रहित कोई इकाई नहीं है। अत: अनंत के लिये मात्र दो ही गतियाँ हैं।

  * ठोस पदार्थ राशि के नृत्य (तरंग) मिश्रण एवं यौगिक विधियों से समस्त रस एवं उपरस का प्रसव है।

- पदार्थ राशि का वर्गीकरण चार जातियों में है :

1. मृद् (मिट्टी), 2. पाषाण, 3. मणि और 4. धातु।

- मृद् अथवा मिट्टी उर्वरा और अनुर्वरा भेद से है।

:: उर्वरा :- बीज को पाकर अनेक बीज को तैयार करने वाली क्षमता से सम्पन्न मिट्टी की उर्वरा संज्ञा है तथा इससे विपरीत गुण स्वभाव वाली मिट्टी की 'अनुर्वरा' संज्ञा है।

- पाषाण का वर्गीकरण कठोर एवं अकठोर भेद से है।

:: कठोर :- अधिक भार सहने वाले पाषाण की कठोर संज्ञा है।

:: अकठोर :- कम भार सहने वाले की अकठोर संज्ञा है।

- मणि का वर्गीकरण किरण श्रावी एवं किरण ग्राही भेद से है।

:: किरण :- तप्त बिम्ब का प्रतिबिंबन अपारदर्शक वस्तु पर होना ही किरण है।

इकाई से बहिर्निहित अग्नि को ताप संज्ञा है।

:: किरण स्रावी :- किरण के प्रभाव से प्रसारण क्रिया करने वाले मणि को किरण स्रावी तथा ग्रहण करने वाले को किरण ग्राही संज्ञा है।

★ पारदर्शक एवं अपारदर्शक भेद से विकिरण और किरण क्रिया में रत है।

:: विकिरण :- किसी इकाई में अंतर्निहित अग्नि के प्रभाव से प्राप्त प्रसारण को विकिरण संज्ञा है।

:: रश्मि :- तप्त बिम्ब (प्रकाश के) प्रतिबिम्ब, अनुबिम्ब, प्रत्यानुबिम्ब क्रिया की रश्मि संज्ञा है।

:: प्रकाश :- इकाई के प्रतिबिम्बन की प्रकाश संज्ञा है ।

★ विकिरण एवं किरण माध्यम भेद से शोषण या पोषण क्रिया में रत है। प्राकृतिक विधि से पोषण स्पष्ट हो चुका है । भ्रमित मानव द्वारा विकिरणीय प्रयोग से शोषण सिद्ध हो चुका है।

★ पदार्थ राशि के संगठित पिण्ड की ग्रह-गोल संज्ञा है जिसके सभी ओर आकाश है ।

● प्रत्येक ग्रह आकाश में शून्याकर्षण की स्थिति में है। ऐसी हर इकाई अर्थात् ग्रह-गोल आकाश में अपनी गति के अनुसार स्थिति है।

इकाईयाँ धनाकर्षण की स्थिति में किसी की ओर आकर्षित तथा ऋण-आकर्षण की स्थिति में किसी को आकर्षित करती है तथा शून्याकर्षण की स्थिति में स्वतंत्र है।

● भार, आकर्षण से; आकर्षण, परस्परता से; परस्परता, लघुता एवं गुरुता से; लघुत्व एवं गुरुत्व, रचना एवं सापेक्ष ऊर्जाओं से; रचना एवं सापेक्ष ऊर्जा, क्रिया से; क्रिया, पदार्थ से और पदार्थ का ह्रास एवं विकास सापेक्ष ऊर्जा के सदुपयोग एवं दुरूपयोग से सापेक्षित है।

● समस्त पदार्थ निरपेक्ष ऊर्जा में संपृक्त व समाहित हैं तथा संपूर्ण सृष्टि की स्थिति तथा गति निरपेक्ष ऊर्जा में है।

● प्रत्येक चेष्टा से सापेक्ष ऊर्जा का प्रसव है।

● मूल चेष्टा के लिए निरपेक्ष ऊर्जा सबको प्राप्त है ही।

:: मूल चेष्टा :- पदार्थ के परमाण्विक स्थिति में वातावरण के दबाव से मुक्त चेष्टा

की मूल चेष्टा संज्ञा है।

❋ किसी भी भूमि पर पूर्ण सृष्टि तभी संभव है जब वह अपने में आवश्यक संपूर्ण रस, उपरस एवं वायु से समृद्ध हो जाये। इस प्रकार से इस असीम अवकाश में अनंत भूमि अपनी प्रगति के अनुसार पूर्ण-विकसित, अर्धविकसित, अल्प विकसित एवं अविकसित अवस्था में हैं। रस, उपरस का प्रमाण रासायनिक क्रियाकलाप और वैभव के रूप में है।

❋ अविकसित सृष्टि पदार्थावस्था की सृष्टि है। समस्त मृद्, पाषाण, मणि एवं धातु की गणना अविकसित सृष्टि में है। अल्प-विकसित सृष्टि प्राणावस्था की सृष्टि है। समस्त वनस्पति प्राणावस्था की सृष्टि में सम्मिलित हैं। अर्ध-विकसित सृष्टि जो जीवावस्था की सृष्टि है। मानवेतर अण्डज और पिण्डज सृष्टि की गणना जीवावस्था में है। ज्ञानावस्था में शरीर रचना पूर्ण-विकसित सृष्टि है। यह स्पष्ट हो जाना आवश्यक है कि अल्प-विकसित सृष्टि में अविकसित सृष्टि; अर्ध-विकसित सृष्टि में अल्प-विकसित और अविकसित तथा पूर्ण-विकसित सृष्टि में अर्ध विकसित, अल्प-विकसित तथा अविकसित सृष्टि समाहित है ही क्योंकि गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया रहता है।

❋ फलतः उच्चकोटि की सृष्टि में निम्न कोटि की सृष्टि के गुण, स्वभाव और धर्म विलय रहते ही हैं।

:: गुण :- सापेक्ष शक्तियों की गुण संज्ञा है। सम, विषम, मध्यस्थ के रूप में पहचान होती है, यही प्रभाव है।

:- एक से अधिक एकत्र होने पर जो प्रभाव उत्पन्न होता है, उसे गुण की संज्ञा है।

:: स्वभाव :- मौलिकता ही स्वभाव है।

:- गुणों की उपयोगिता की स्वभाव संज्ञा है।

:: धर्म :- धारणा ही धर्म है।

★ सृष्टि का उपरोक्त वर्गीकरण कोष गठन भेद से है।

:: कोष :- आशय तथा प्रयोजन सहित निश्चित क्रिया विशेष को कोष संज्ञा है। प्रवृत्ति के लिए जिम्मेदार संपदा ही कोष है।

:: कोष का तात्पर्य सम्पन्नता से है। प्रेरणा सम्पन्नता का अर्थ है ऊर्जा सम्पन्नता, बल

सम्पन्नता व चुम्बकीय बल सम्पन्नता। प्रेरणा सम्पन्नता ही प्राणमय कोष है। इसी प्रेरणा सम्पन्नता के आधार पर अंशों की परस्पर पहचान, निश्चित दूरी में नियन्त्रित रह कर परमाणु के रूप में प्रमाणित होता है । परमाणु में यह प्रवृत्ति ही प्राणमय कोष है।

★ अनंत रचनाएँ पाँच कोषों के गठन भेद के अंतर्गत परिलक्षित होती है। इन पाँच कोषों को क्रमश: प्राणमय कोष, अन्नमय कोष, मनोमय कोष, आनंदमय कोष और विज्ञानमय कोष संज्ञा है।

● प्राणमय कोष, अन्नमय कोष व मनोमय कोष जड़ संसार में; तथा मनोमय कोष, आनंदमय कोष व विज्ञानमय कोष चैतन्य संसार में स्पष्ट अथवा प्रमाणित होते हैं।

:: अन्नमय कोष :- ग्रहण और विसर्जन करने वाले अंग की अन्नमय कोष संज्ञा है।

:: प्राणमय कोष :- प्रेरणा को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने वाले अंग की प्राणमय कोष संज्ञा है ।

:: मनोमय कोष :- चयन करने वाले अथवा चुनाव करने वाले अंग की मनोमय कोष संज्ञा है।

:: आनंदमय कोष :- सुख अथवा दु:ख को व्यक्त करने वाले अंग की आनंदमय कोष संज्ञा है।

:: विज्ञानमय कोष :- विशेष ज्ञान को ग्रहण करने वाले अंग की विज्ञानमय कोष संज्ञा है।

● कोष-प्रकाशन भेद से सृष्टि में अवस्था भेद पाया जाता है।

❋ पदार्थावस्था की सृष्टि में अन्नमय कोष और प्राणमय कोष का प्रकाशन है। इन दो कोषों की क्रियाएँ समस्त पदार्थावस्था के मूल रूप परमाणुओं में पाई जाती है। प्रत्येक परमाणु सचेष्ट है, इसलिए उसमें प्रेरणा पाने वाला अंग सिद्ध है, इसके साथ ही परमाणु ह्रास एवं विकास से मुक्त नहीं है, जो कि ग्रहण विसर्जन का ही प्रतिफल है। अत: पदार्थ में अन्नमय कोष भी सिद्ध हुआ । अन्नमय कोष की क्रियाशीलता भी चेष्टा का ही फल है अर्थात् प्राणमय कोष के चेष्टित होने का फल ही है कि अन्नमय कोष की क्रिया भी संपादित होती है। अत: यह सिद्ध हुआ कि अन्नमय कोष और प्राणमय कोष का अविभाज्य संबंध है।

❋ प्राणावस्था की सृष्टि में तीन कोषों का प्रकाशन है, यह है - अन्नमय कोष,

प्राणमय कोष और मनोमय कोष। वनस्पतियों में पदार्थावस्था की सृष्टि की अपेक्षा चयनवादी क्रिया विशेष है, जो मनोमय-कोष की क्रिया है। यह इससे स्पष्ट होता है कि एक ही भूमि पर स्थित विभिन्न वनस्पतियाँ अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार आवश्यकीय तत्वों एवं रसों को ग्रहण करते हुए पुष्ट होती देखी जाती हैं।

- ❋ जीवावस्था व भ्रमित ज्ञानावस्था में चार कोषों की क्रिया स्पष्ट है। यह है - अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष और आनंदमय कोष।
- ★ आनंदमय कोष का विकास ही चैतन्यता का कारण है तथा इसी चैतन्यता के कारण जीवावस्था में सुख और दु:ख का प्रकाशन है। इसके कारण ही जीवावस्था की इकाई को विषयों (आहार, निद्रा, भय और मैथुन) का सेवन करने का अधिकार है।
- ★ जागृत मानव में पाँच कोषों का प्रकाशन है, इन पाँचों कोषों की क्रियाशीलता व अभिव्यक्ति मानव में है। यह अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, आनंदमय कोष और विज्ञानमय कोष है।
- ★ विज्ञानमय कोष का जागृत होना ही ज्ञान, विज्ञान और विवेक के रूप में विशेष ज्ञान का कारण है, विवेक और विज्ञान द्वारा ही दु:ख के कारण और निवारण की समझ विकसित होती है जिससे ही सुख, शांति, संतोष और आनंद की अनुभूति संभव है।

● चारों अवस्थाओं की सृष्टि की अपनी विशेषताएँ हैं तथा विशिष्टताएँ रूप, गुण, स्वभाव और धर्म से संबंधित हैं।

- ★ रूप :- चारों अवस्थाओं की सृष्टि में रूप का निर्धारण आकार, आयतन और घनता के भेद से है।
- ★ गुण :- चारों अवस्थाओं में गुण सम, विषम अथवा मध्यस्थ के भेद से है।
  :- सापेक्ष शक्तियों की गुण संज्ञा है अथवा एक से अधिक एकत्र होने पर जो प्रभाव उत्पन्न होता है उसे गुण संज्ञा है।
- :: सम :- सृजन क्रिया में सहायक गुण को सम संज्ञा है।
- :: विषम :- विसर्जन क्रिया में सहायक गुण को विषम संज्ञा है।
- :: मध्यस्थ :- विभव क्रिया में सहायक गुण को मध्यस्थ संज्ञा है।

- ❋ यह तीनों सृजन, विसर्जन तथा विभव की क्रिया ऊर्जामय हैं।
- ★ स्वभाव :- पदार्थ में संगठन-विघटन क्रियाएं तथा विघटन-संगठन क्रियाएं व उनकी निरंतरता स्वभाव है।
- ❋ प्राणावस्था में सारक अथवा मारक या सारक-मारक क्रिया की निरंतरता स्वभाव है।
- ❋ जीवावस्था में क्रूर, अक्रूर स्वभाव है।
- ❋ ज्ञानावस्था में धीरता, वीरता और उदारता, दया, कृपा व करुणा स्वभाव है।
- ★ धर्म :- पदार्थावस्था में अस्तित्व धर्म है।
- ❋ प्राणावस्था में अस्तित्व सहित पुष्टि धर्म है।
- ❋ जीवावस्था में अस्तित्व, पुष्टि सहित जीने की आशा धर्म है।
- ❋ ज्ञानावस्था में अस्तित्व, पुष्टि, जीने की आशा सहित सुख ही धर्म है।
- ★ यह ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि उच्च कोटि की सृष्टि में निम्न कोटि की सृष्टि समाहित रहती है।

● समस्त पदार्थ संगठन-विघटन एवं विघटन-संगठन क्रिया में अविरत गति से व्यस्त रहते हुये भौतिक एवं रासायनिक परिणाम को प्राप्त होते हैं।

- ★ प्राणावस्था की समस्त इकाईयाँ, पदार्थावस्था की सभी क्रियाओं सहित सप्राण, निष्प्राण, आरोह अथवा अवरोह क्रिया में अवस्थित होकर अथवा सारक-मारक स्वभाव सहित क्रिया में अभिव्यक्त हैं।
- :: सारक :- प्राणपोषक वनस्पति की सारक संज्ञा है।
- :: मारक :- प्राणशोषक वनस्पति की मारक संज्ञा है।
- ★ जीवावस्था की संपूर्ण शरीर रचना में पदार्थावस्था तथा प्राणावस्था की क्रियाएं समाहित हैं। यही उद्भव, विभव एवं प्रलय के रूप में स्पष्ट हैं। जीवावस्था में 'जीवन' आहार, निद्रा, भय और मैथुन युक्त विषयों में आसक्त होकर रत है। जीवावस्था का स्वभाव क्रूर-अक्रूर है।

● ज्ञानावस्था की इकाईयों को, ऊपरवर्णित तीनों अवस्थाओं की क्रिया, स्वभाव, विषय तथा दृष्टि सहित वित्तेषणा, पुत्रेषणा एवं लोकेषणा से युक्त व्यवहार करते हुए धीरता, वीरता एवं उदारता पूर्ण आचरण के द्वारा ज्ञान, विवेक एवं विज्ञान का अध्ययन और

प्रयोग का अवसर प्राप्त है जिसकी परिणति पूर्णता व अपूर्णता के आधार पर ही मानवीय या अमानवीय दृष्टि है।

:: धीरता :-न्याय के प्रति निष्ठा एवं दृढ़ता ही धीरता है।

:: वीरता :-दूसरों को न्याय उपलब्ध कराने में अपने बौद्धिक एवं भौतिक शक्तियों को नियोजित करने की प्रवृत्ति ही वीरता है।

:: उदारता :- अपनी सुख सुविधाओं को अर्थात् तन, मन, धन को प्रसन्नता पूर्वक दूसरों के लिए उपयोगिता, सद्उपयोगिता विधि से नियोजित करने की प्रवृत्ति ही उदारता है।

❋ ज्ञान, विवेक एवं विज्ञान के अध्ययन एवं प्रयोग क्रम में ही मानव भ्रांत, भ्रान्ताभ्रान्त तथा निर्भ्रान्त स्थिति में स्पष्ट होता है।

● सृष्टि में क्रिया अनन्त है एवं व्यापक सत्ता में सम्पूर्ण सृष्टि संपृक्त है।

★ प्रेरित होने के फलस्वरूप ही समस्त पदार्थ श्रम में रत है। श्रम के बिना कार्य कलाप फल परिणाम में ह्रास एवं विकास सिद्ध नहीं होता।

इसीलिए:-

● पदार्थावस्था + श्रम = प्राणावस्था।

● प्राणावस्था + श्रम = जीवावस्था।

● जीवावस्था + श्रम = भ्रमित ज्ञानावस्था।

● भ्रमित ज्ञानावस्था + श्रम = विश्राम अर्थात् सहअस्तित्व में अनुभूति।

:: श्रम :- श्रम का तात्पर्य अधिक उन्नत अर्थात् यथास्थिति से अधिक उन्नत यथास्थिति से है। ऐसी यथास्थिति विकास क्रम, जो कि भौतिक-रासायनिक वस्तुओं के रूप में है। विकास चैतन्य पद अथवा जीवन पद के रूप में अध्ययन सुलभ है। ऐसे जीवन जागृति क्रम, जागृति के रूप में अध्ययन, बोध व अनुभवगम्य है। अनुभवगम्य का अर्थ व्यवहार परम्परा में प्रमाणित होने से है।

★ श्रम के क्षोभ के बराबर ही विश्राम की तृषा है क्योंकि ज्ञानावस्था में 'समस्त श्रम' विश्राम सहज गन्तव्य, यथास्थिति और उसकी निरंतरता के लिये है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - चार
मानव सहज प्रयोजन

- विश्राम के लिये ही इस पृथ्वी पर मानव अपने महत्व को जानने, पहचानने के प्रयास एवं प्रयोग में व्यस्त है।
- एक से अधिक मानव एकत्र या संगठित होने को परिवार, समुदाय व अखण्ड समाज संज्ञा है। जागृत मानव परम्परा में सार्वभौम व्यवस्था पूर्वक अखण्ड समाज प्रमाणित होता है।
- संगठन के लिए कारण साम्यता लक्ष्य साम्यता आवश्यक है। इसके निर्वाह के लिए कार्यक्रम साम्यता भी आवश्यक है।

  ★ अकेले में मानव के जीवन में कोई कार्यक्रम, व्यवहार एवं उत्पादन सिद्ध नहीं होता है। इस पृथ्वी पर मानव अधिकतम विकसित इकाई है। इससे विकसित इकाई इस पृथ्वी पर परिलक्षित नहीं है। मानव इसीलिए विकसित इकाई सिद्ध हुआ है, क्योंकि :-

  1. वह मानवेतर सृष्टि के उपयोग, सदुपयोग, शोषण एवं पोषण में सक्षम है।
  2. मानव तथा मानवेतर तीनों सृष्टि में पाए जाने वाले गुण, स्वभाव एवं धर्म का ज्ञाता मानव ही है।
  3. मानवेत्तर सृष्टि में न पाये जाने वाले स्वभाव, व्यवहार एवं अनुभूति को मानव में पाया जाता है।

- सामाजिकता से आवश्यकता; आवश्यकता से प्रयोग एवं उत्पादन; प्रयोग एवं उत्पादन से अर्थोपार्जन; अर्थोपार्जन से उपयोग, सदुपयोग व प्रयोजनशीलता; उपयोग, सदुपयोग व प्रयोजनशीलता से व्यवहारिकता; व्यवहारिकता से मानवीयता तथा मानवीयता से अखण्ड सामाजिकता है। अखण्ड सामाजिकता के अर्थ में सार्थक है।

  :: अखण्डता :- अखण्डता सार्वभौमता सहज सूत्र व्याख्या रूप में मानव का प्रयोजन।

  :: सामाजिकता:- सम्पर्क एवं संबंध में निहित मूल्यों का निर्वाह ही सामाजिकता है।

  :: आवश्यकता :- निर्वाह के लिए समुचित साधनों के प्रति (जो समझदार परिवार में

निर्धारित होता है) तीव्र इच्छा ही आवश्यकता है। यह शरीर पोषण-संरक्षण समाज गति के अर्थ में।

:: समुचित साधन :- मानव की परस्परता में व्यवहार, प्रयोग एवं उत्पादन को संतुलित, समृद्ध एवं जागृति पूर्ण प्रमाण परंपरा के लिए प्रयुक्त आवश्यकीय साधनों की समुचित साधन संज्ञा है। शरीर पोषण, संरक्षण व समाज गति के लिए अर्पित, समर्पित वस्तुयें समुचित साधन हैं।

:: प्रयोग :- मानव की आवश्यकता के रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता मूल्य व कला मूल्य को स्थापित करने हेतु सफल होते तक प्रयास ही प्रयोग है।

:: उत्पादन :- प्रयोग को सामान्यीकृत करने हेतु विकसित क्रिया पद्धति में श्रम नियोजन प्रक्रिया की उत्पादन संज्ञा है जिसमें बहुतायत उत्पादन की अथवा निर्माण की कामना सन्निहित रहती ही है।

:: अर्थोपार्जन :- प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपाय पूर्वक श्रम नियोजन से कला एवं उपयोगिता की सिद्ध मात्रा की धनोपार्जन संज्ञा हैं।

:: उपयोग :- उत्पादन व सेवा के लिए प्रयुक्त अर्थ की उपयोग संज्ञा है।

:: उत्पादन :- उत्पादन दो भेद से होता है - सामान्य आकाँक्षा से अथवा महत्वाकाँक्षा से।

:: सामान्य आकाँक्षा :- आहार, आवास एवं अलंकार में प्रयुक्त वस्तुओं को सामान्य आकाँक्षा संज्ञा है।

:: महत्वाकाँक्षा :- दूरगमन, दूरदर्शन तथा दूरश्रवण के लिए प्रयुक्त वस्तुओं को महत्वाकाँक्षा संज्ञा है ।

:: सदुपयोग :- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करते हुए तन, मन, धन रूपी अर्थ का नियोजन सदुपयोग है।

:: प्रयोजन :- जागृति पूर्वक अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में तन, मन, धन का नियोजन प्रयोजन है।

:: व्यवहारिकता :-मानवीयता पूर्ण आचरण की व्यवहारिकता संज्ञा है ।

- अखण्ड सामाजिकता का अध्ययन मानवीय स्वभाव, विषय एवं दृष्टि के आधार पर ही है, जिसके संरक्षण हेतु सामाजिक व्यवस्था है।

- उपरिवर्णित आधार पर अध्ययन करने पर मानव प्रवृत्तियों की कुल तीन प्रकार से गणना होती है :-

1. अमानवीयता 2. मानवीयता 3. अतिमानवीयता।

:: अमानवीय स्वभाव, विषय एवं दृष्टि का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रोत्साहन देने हेतु की गई व्यवस्था अमानवीय अथवा पाशविक प्रवृत्ति व्यवस्था है।

:: अमानवीय स्वभाव :- दीनता, हीनता एवम् क्रूरता ही अमानवीय स्वभाव है।

:: अमानवीय विषय :- आहार, निद्रा, भय एवम् मैथुन ही अमानवीय विषय है।

:: अमानवीय दृष्टि :- प्रियाप्रिय, हिताहित एवम् लाभालाभ ही अमानवीय दृष्टि है।

:: प्रिय :- ऐन्द्रिय सुख सापेक्ष क्रिया की प्रिय संज्ञा है।

:: हित :- शरीर स्वास्थ्य वर्धन एवं पोषण क्रिया की हित संज्ञा है।

:: लाभ :- श्रम से अधिक द्रव्य पाने की क्रिया को लाभ अथवा लघु मूल्य के बदले गुरु मूल्य आदाय ही लाभ है।

:: दीनता :- अपने दु:ख को दूसरों से दूर कराने हेतु जो आश्रय प्रवृत्ति है, उसकी दीनता संज्ञा है।

★ दीनता अभावजन्य या अक्षमताजन्य दो प्रकार की होती है।

:: अभाव :- उत्पादन से अधिक उपभोग एवं उपयोग की इच्छा ही अभाव है। आलस्य, प्रमाद, अज्ञान, अप्राप्ति, प्राकृतिक प्रकोप तथा सामाजिक असहयोग अभाव के कारण हैं।

:: अक्षमता :- इच्छानुसार बौद्धिक एवं कार्य-व्यवहार क्रिया का संपादन न कर पाना ही अक्षमता है। अक्षमता का कारण अजागृति और रोग है।

:: हीनता :- विश्वासघात ही हीनता है।

:: विश्वासघात :- जिससे जिस क्रिया की अपेक्षा है, उसके विपरीत आचरण किया जाना ही विश्वासघात है।

:: छल :- विश्वासघात के अनन्तर भी उसका भास या प्रकट न हो ऐसे विश्वासघात की छल संज्ञा है।

:: कपट :- विश्वासघात के अनन्तर उसके प्रकट या स्पष्ट हो जाने की स्थिति में

विश्वासघात की कपट संज्ञा है।

:: दम्भ :- आश्वासन देने के पश्चात् भी किए गये विश्वासघात की दम्भ संज्ञा है।

:: पाखण्ड :- दिखावा पूर्वक किए गए विश्वासघात की पाखण्ड संज्ञा है।

:: क्रूरता :- स्व-अस्तित्व को बनाए रखने के लिए बलपूर्वक दूसरे के अस्तित्व को मिटाने में जो वैचारिक प्रयुक्ति तथा शोषण कार्य है, उसे क्रूरता कहते हैं।

★ अपराध एवं प्रतिकार क्रूरता के दो भेद हैं।

★ अपराध : परधन, परनारी/परपुरुष, परपीड़ात्मक कार्य व्यवहार ही अपराध है।

★ अपराधात्मक क्रूरता हिंसा के रूप में व्यक्त तथा प्रतिकारात्मक क्रूरता प्रतिहिंसा के रूप में व्यक्त है।

● मानवीय स्वभाव, विषय एवम् दृष्टि को संरक्षण, संवर्धन एवम् प्रोत्साहन देने वाली व्यवस्था मानवीय व्यवस्था है।

:: मानवीय स्वभाव :- धीरता, वीरता और उदारता ही मानवीय स्वभाव है।

:: मानवीय विषय :- पुत्रेषणा, वित्तेषणा एवं लोकेषणा मानवीय विषय है।

:: मानवीय दृष्टि :- न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य मानवीय दृष्टि है।

★ न्याय :- मानवीयता के संरक्षणात्मक नीतिपूर्वक किये जाने वाले व्यवहार व्यवस्था ही न्याय है।

● अतिमानवीय स्वभाव, विषय एवं दृष्टि की जागृति के लिए समुचित अवसर एवं साधन को नियोजित करने वाली व्यवस्था एवं वैयक्तिक प्रयास को अतिमानवीय सामाजिक व्यवस्था कहते हैं। अखण्ड समाज, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था व मानव सहज प्रमाण परम्परा ही अतिमानवीय सामाजिक व्यवस्था है।

:: अतिमानवीय स्वभाव :- दया, कृपा और करुणा ही अति-मानवीय स्वभाव है।

:: दया :- जिनमें पात्रता हो, परंतु उसके अनुरूप वस्तु उपलब्ध न हो, ऐसी स्थिति में उसे वस्तु उपलब्ध कराने हेतु की गयी प्रयुक्ति ही दया है।

:: कृपा :- वस्तु समीचीन है पर उसके अनुरूप पात्रता अर्थात् मानवीयतापूर्ण दृष्टि नहीं है, उनको पात्रता उपलब्ध कराने वाली प्रयुक्ति कृपा है।

:: करुणा :- जिनमें पात्रता न हो और वस्तु भी समीचीन न हों, उनको उसे उपलब्ध कराने वाली प्रयुक्ति ही करुणा है।

:: अतिमानवीय विषय :- सत्य (सह-अस्तित्व रूपी परम सत्य)

:: अतिमानवीय दृष्टि :- मात्र सत्य।

● न्याय व अन्याय सहित लक्ष्य भेद से संपर्क सफल एवं असफल सिद्ध होता है, जिससे सामाजिकता का विकास व ह्रास सिद्ध होता है।

:: सम्पर्क :- जिस परस्परता में प्रत्याशाएँ ऐच्छिक रूप में निहित है, ऐसे मिलन की संपर्क संज्ञा है ।

* ऐहिक उद्देश्य (जीव चेतना वश) से संबंध नहीं है। संबंध आमुष्मिक उद्देश्य (विकसित चेतना, मानव, देव मानव दिव्य मानव सहज प्रमाण) पूर्वक ही हैं, जिनका निर्वाह ही जागृति है।

:: संबंध :- जिस परस्परता में प्रत्याशाएँ पूर्णता के अर्थ में पूर्व निश्चित रहती हैं, ऐसे मिलन की संबंध संज्ञा है।

● सामाजिकता का निर्वाह कर्त्तव्य एवं निष्ठा से है, जिससे अखण्डता-सार्वभौमता रुप में सामाजिकता का विकास तथा अन्यथा से ह्रास है।

:: निर्वाह :- समाधान, समृद्धि सहित उपयोग, सद्उपयोग व प्रयोजनों को प्रमाणित करना अथवा परस्पर पूरक सिद्ध होना ।

:: कर्त्तव्य :-मानवीयता पूर्ण विधि से करने योग्य कार्य-व्यवहार एवं मूल्य निर्वाह क्रिया ही कर्त्तव्य है ।

:: निष्ठा :- कर्त्तव्य एवं दायित्व निर्वाह की निरंतरता ही निष्ठा है।

★ सामाजिकता के निर्वाह के लिये समाधान, समृद्धि आवश्यक है, इसके लिये बौद्धिक एवं भौतिक साधन है।

:: साधन :- साधक को अथवा साध्य केलिये आवश्यकीय वस्तु एवं पात्रता को साधन संज्ञा है, जो हर साधक में अपेक्षणीय है।

:: बौद्धिक साधन :- क्षमता, योग्यता एवं पात्रता के रूप में बौद्धिक साधन है ।

:: भौतिक साधन :- सामान्य एवं महत्वाकाँक्षाओं के लिये आवश्यकीय रचना एवं वस्तु उत्पादन के रूप में भौतिक साधन हैं।

★ उपरोक्तानुसार वर्णित साधनों को प्रयुक्त करने हेतु जो प्रयत्न, प्रयास एवं व्यवसाय (उत्पादन क्रिया) है, उसमें इच्छा का होना आवश्यक है।

- जो जिसको पाने के लिये तीव्र इच्छा से संवेगित होता है, वह उसे पाये बिना तृप्त नहीं होता है ।

  ★ बौद्धिक एवं भौतिक साधनों की प्रयुक्ति के लिए इच्छा, किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये ही होती है। यह आवश्यकता स्वार्थ, परार्थ अथवा परमार्थ भेद से होती है।

  :: **स्वार्थ :-** सीमित एवं संकीर्ण अर्थ नियोजन योजना की स्वार्थ संज्ञा है। जो एक मानव अथवा परिवार तक ही सीमित रहती है अथवा वैयक्तिक या पारिवारिक इन्द्रिय सुख-सुविधा के लिये जो विचार एवं व्यवहार है वह स्वार्थ है ।

  :: **परार्थ :-** दूसरों की सुविधा के लिये जो विचार एवं व्यवहार और इसकी पूर्ति के लिये अर्थ नियोजन की प्राथमिकता ही परार्थ है।

  :: **परमार्थ :-** जिस विचार एवं व्यवहार में समाधान सहित सर्वशुभ की उपलब्धि हो और समस्या का निराकरण हो और स्नेह का ही संबंध हो, इसे सर्व सुलभ कराने के लिये जो अर्थ नियोजन है, उसकी परमार्थ संज्ञा है।

  ❋ उपरोक्त नियम ही विभिन्न प्रकार की गठित सामाजिक इकाईयों के लिये भी लागू होगा। जिससे विभिन्नता समाप्त होकर, मानवीयता स्थापित होगी।

  ★ अर्थ मात्र तीन ही हैं :- मन, तन, धन।

- बौद्धिक प्रयोग एवं प्रयास से बौद्धिक समाधान तथा भौतिक प्रयोग, प्रयास एवं उत्पादन से भौतिक समृद्धि की उपलब्धि होती है । बौद्धिक समाधान और भौतिक समृद्धि सामाजिकता के विकास के लिये सहायक है।

  ★ भौतिक समृद्धि के लिये प्राकृतिक वैभव का उपयोग एवं सदुपयोग अनिवार्य है। खनिज, वनस्पति और पशु-पक्षी प्राकृतिक वैभव है ।

  ★ प्राकृतिक वैभव के उपयोग और सदुपयोग के लिये श्रम रूपी अर्थ का नियोजन आवश्यक है।

  ❋ अर्थ :- तन, मन एवं धन का नियोजन, मानवीय तथा अतिमानवीय भेद से प्रयुक्त करने से सामाजिकता का विकास है।

- अमानवीय समुदायों के गठन के मूल में भ्रमित मानवों व बलवान जीवों अर्थात् क्रूरता का भय है।

★ इसी प्रकार मानव समुदाय गठन के मूल में प्राकृतिक भय, पाशवीय भय तथा मानव में निहित अमानवीयता के भय से मुक्त होना लक्ष्य है।

● मानव मात्र द्वारा समस्त प्रयास एवं प्रयोग तृप्ति अथवा सुख के लिये है।

● ऐन्द्रिय (भौतिक), बौद्धिक (वैचारिक) एवं आध्यात्मिक (अनुभूति) भेद से तृप्तियाँ अथवा सुख है।

★ शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धेन्द्रियों द्वारा आहार, निद्रा, भय और मैथुन से होने वाली सभी तृप्तियाँ ऐन्द्रिय है जो सामयिक होती है।

★ वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा तथा समाधान से प्राप्त तृप्ति की बौद्धिक तृप्ति संज्ञा है जो दीर्घकालीन या दीर्घ परिणामी होती है।

★ ज्ञानानुभूति तथा पूर्ण विश्राम की आध्यात्मिक तृप्ति संज्ञा है जो अपरिणामी अथवा नित्य है।

:: वित्तेषणा :- सदुपयोग के अर्थ में न्याय दृष्टि पूर्वक धन बल कामना ही वित्तेषणा है।

:- धन : आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन संबंधी वस्तुएँ।

:: पुत्रेषणा :- परिवार एवं समाज व्यवस्था के अर्थ में जन-बल कामना एवं वंश वृद्धि में विश्वास की पुत्रेषणा संज्ञा है।

:: लोकेषणा :- अखण्ड समाज व्यवस्था के अर्थ में न्याय, धर्म दृष्टि पूर्वक यश-बल कामना ही लोकेषणा है।

:: समाधान:- कैसे और क्यों की पूर्ति (उत्तर) ही समाधान है।

:: विश्राम :- जिसमें श्रम नहीं समाधान है, जिसके द्वारा श्रम नहीं होता है वह अनुभूति ही विश्राम है।

★ इच्छानुसार द्रवित होने वाले अंग को **इन्द्रिय,** बोध करने-कराने वाले अंग को **बुद्धि,** सहअस्तित्व में अनुभूति अंग **आत्मा,** समस्त आत्माओं के आधारभूत सत्ता की **अध्यात्म** व **परमात्मा** संज्ञा है।

❋ आवश्यकता तथा उपयोगिता का निर्णय उपरोक्त तीन तृप्तिकारक अथवा सुखकारक लक्ष्य भेद से निर्णय किया जाता है।

- ऐन्द्रिक तृप्ति क्षणिक, बौद्धिक तृप्ति दीर्घ परिणामी तथा आध्यात्मिक (अनुभव) तृप्ति नित्य अथवा अपरिणामी सिद्ध होती है।

- प्रियाप्रिय, विषय सापेक्ष; हिताहित, शरीर सापेक्ष; लाभालाभ, वस्तु व सेवा सापेक्ष; न्यायान्याय, व्यवहार सापेक्ष; धर्माधर्म, समाधान सापेक्ष तथा सत्यासत्य, अस्तित्व में अनुभव सापेक्ष पद्धति से स्पष्ट होता है ।

    ★ प्रिय विषय प्राप्त होने पर इन्द्रिय तृप्ति होती है। अप्रिय विषय प्राप्त होने पर इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होती है।

    ★ हृदय के तृप्त होने पर हित तथा स्वास्थ्य लाभ होता है । हृदय के अतृप्त रहने पर अहित तथा स्वास्थ्य का लाभ नहीं होता है।

- इंद्रिय तृप्ति सामयिक प्रतिक्रिया है।

    :: तृप्ति :- आंदोलनों से मुक्त क्रिया ही तृप्ति है।

    :: आंदोलन :- हृदय के सम्वर्धन तथा संरक्षण की अक्षुण्णता इसके क्रिया एवं गति के संतुलन से बनी रहती है, इस क्रिया एवं गति का घट जाना या बढ़ जाना ही आंदोलन है । आंदोलन का संबंध मूलतः संवर्धन तथा संरक्षण से है।

    ★ इन्द्रिय तृप्ति से हृदय तृप्ति आवश्यक नहीं है, पर हृदय तृप्ति से इन्द्रिय तृप्ति होती है।

- लघु मूल्य के बदले गुरु मूल्य का आदाय (प्राप्ति) लाभ है।

- लघु मूल्य के बदले गुरु मूल्य का प्रदाय तीन परिस्थितियों में होता है :-

  (1) विवशता वश, (2) स्वेच्छा वश तथा (3) अज्ञान वश ।

- समस्त व्यवहार कुल छः दृष्टियों में परिलक्षित है :-

  (1) प्रियाप्रिय (2) हिताहित (3) लाभालाभ (4) न्यायान्याय (5) धर्माधर्म और (6) सत्यासत्य ।

    ★ अमानवीय दृष्टि से युक्त मानवों का व्यवहार मात्र तीन दृष्टियों यथा-प्रियाप्रिय, हिताहित और लाभालाभ के आश्रय में है। मानवीय दृष्टि से युक्त मानव का व्यवहार न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य के आश्रय में है।

- मानव के लिए आवश्यकीय व्यवहार न्यायपूर्ण नियमों का पालन है तथा आवश्यकीय

विचार धर्मपूर्ण नियमों का पालन है।

- ★ उपरोक्त सूत्र के विपरीत नियमों का पालन ही मानव के लिये अनावश्यकीय व्यवहार एवं विचार है।
- ★ उपरोक्तानुसार समस्त जीव अर्थात् पशु-पक्षी, वैषयिक-सामुदायिक प्राणी तथा मानव न्यायिक-सामाजिक इकाई सिद्ध होते हैं।
- ★ सामान्यत: पशुओं की सामुदायिकता का भास भय की अवस्था में परिलक्षित हुआ है। किसी भी स्थिति में पशुओं की सामुदायिकता का भास अध्ययन, उत्पादन तथा व्यवस्था कार्य में परिलक्षित नहीं हुआ है जबकि जागृत मानवों में सामाजिकता का मूल आधार समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में जीना है ।
- ★ पशुओं में आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये चार विषय ही प्रसिद्ध हैं, जबकि जागृत मानवों में सामान्यतः ऐषणात्रय अर्थात् पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा पाई जाती है तथा विश्राम सहज रूप में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में प्रमाण होना पाया जाता है।

- ● विश्राम ही दु:ख का उन्मूलन तथा भ्रम से मुक्ति ही मोक्ष है।
- ● सृष्टि का चरम लक्ष्य विश्राम है, इसका प्रमाण जागृत मानव परम्परा ही है । इसलिए हर भ्रमित मानव भी विश्राम के लिए व्याकुल रहता है। समाधान ही विश्राम है। यही अभ्युदय है।

    :: सह-अस्तित्व में चारों अवस्थाओं और चारों पदों का अपने-अपने लक्ष्य के लिए किया जाने वाला क्रियाकलाप ही सम्पूर्ण सृष्टि है।

- ● मानवेतर जीवों में जो ज्ञान उपयोग में आया है, उसे सामान्य ज्ञान संज्ञा है। मानव द्वारा जो व्यवहृत है, वह दो वर्ग में परिलक्षित है :-

    (1) ज्ञान सम्मत विवेक और (2) विज्ञान।

- ● विवेक और विज्ञान सम्पन्न होने के कारण ही मानव ने विश्राम को पहचाना है तथा इसके लिए समुचित प्रयोग भी किया है, जो सृष्टि के श्रम का उद्देश्य एवं फल भी है।
- ● भ्रमित मानव कर्म करते समय में स्वतंत्र तथा फल भोगते समय में परतंत्र है, जबकि पशु कर्म करते समय भी और फल भोगते समय भी परतंत्र है। जागृत मानव कर्म करते समय स्वतंत्र तथा फल भोगते समय भी स्वतंत्र है ।

- कर्म की स्वतंत्रता के फलस्वरूप ही मानव को जितना उन्नतावकाश है, उतना ही अवनतावकाश भी है । फलत: मानव ने सामान्यत: क्रमश: विषयों, ऐषाणाओं तथा मोक्ष के द्वारा विश्राम पाने का प्रयास किया है। मोक्ष का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान है, यही भ्रम मुक्ति है। इसे प्रमाणित करना ही जागृति है।

  ★ पूर्व में वर्णित किया जा चुका है कि विकसित इकाई में अविकसित इकाई के अथवा विकसित सृष्टि में अविकसित सृष्टि के सभी गुण, स्वभाव एवं धर्म विलय रुप में रहते ही हैं। तदनुसार मानव गलती करने का अधिकार लेकर तथा सही करने का अवसर एवं साधन लेकर जन्मता है। क्योंकि परम्परा में हर मानव, मानव चेतना को पाया नहीं इसलिए सन् 2000 तक जीव चेतना में जीया और जीव चेतना में गलती करता ही है। उदाहरणार्थ :-

  एक अध्यापक कक्षा में गणित पढ़ाता है। अध्यापक सही ही पढ़ाता है और सबको समान रूप से संबोधित भी करता है, फिर भी विद्यार्थी गलती करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि बालक के मन में भ्रमवश गलती करने की प्रवृत्ति है ही। इसी के साथ यह भी सिद्ध होता है कि मानवीय वातावरण व अध्यापन अर्थात् अध्यापक के बोध कराने की क्षमता के आधार पर वही विद्यार्थी पुन: सही करने में भी समर्थ होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वातावरण तथा अध्ययन प्रत्येक मानव को एक अवसर व आवश्यकता के रूप में मौलिकत: प्राप्त है एवं जीव चेतना में जीते हुए सही करने की प्रवृत्ति का साक्ष्य है।

- मानव ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही उत्पादन कार्य एवं प्रयोग किया है। उत्पादन एवं प्रयोग का फल ही अर्थोपार्जन है ।

  ✱ प्रत्येक मानव प्राप्त अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग चाहता है।

- अपने-अपने योग्यता, क्षमता एवं पात्रता अनुसार प्रत्येक भ्रमित मानव ने प्राप्त अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा की कामना से वैयक्तिक नीति निर्धारण किया जिससे मतभेद उत्पन्न हुआ। फलस्वरूप मानव ने सार्वभौम सिद्धांतपूर्ण व्यवस्था के संबंध में अन्वेषण किया जिससे एक मौलिक सिद्धांत उपस्थित हुआ, जो निम्नानुसार है :-

- ''मानव सही में एक तथा गलती में अनेक है।''

- सिद्धांत ही नियति, नियति ही नियम, नियम ही विज्ञान एवं विवेक, विज्ञान एवं विवेक ही ज्ञान तथा ज्ञान ही सिद्धांत है ।

:: सिद्धांत :- नियम, प्रक्रिया एवं उपलब्धि जिस समय भाषा के रूप में अवतरित होता है, उसे सिद्धांत कहते हैं। प्रक्रिया कार्य-व्यवहार के रूप में है जिसका फल-परिणाम फलित होता है।

:: नियम :- क्रिया के संरक्षण एवं अनुशासन रीति ही नियम है ।

- मानवीयता के संरक्षण हेतु ही मानव सामाजिकता यथा मानवीयतापूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि और व्यवस्था का अध्ययन, प्रयोग एवं पालन करना चाहता है, चूंकि यह चारों परस्पर पूरक हैं।

- विज्ञान एवं विवेकपूर्ण विचार, व्यवहार, अध्ययन, अध्यापन, उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग, वितरण, प्रचार, विधि एवं व्यवस्था ही मानवीयता के संरक्षण के लिए मानव द्वारा अनुभूत संपूर्ण कार्यक्रम है।

:: विचार :- प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म तथा सत्यासत्य तुलनात्मक वृत्ति की क्रिया के फलस्वरूप निश्चित विश्लेषण ही विचार है।

:: अध्ययन :- अधिष्ठान अर्थात् आत्मा की साक्षी और अनुभव की रौशनी में स्मरण सहित किये गये क्रिया, प्रक्रिया एवं प्रयास ही अध्ययन है ।

:- अधिष्ठान की साक्षी में बुद्धि द्वारा बोध पूर्वक स्मरण सहित की गयी स्वीकृति की अध्ययन संज्ञा है।

:: अध्यापन :- अनुभव मूलक विधि से अधिष्ठान की साक्षी में बोध और साक्षात्कार पूर्वक स्मरण सहित ग्रहण कराने योग्य सत्यतापूर्वक क्रियाओं को बोधगम्य बनाने योग्य प्रक्रिया ही अध्यापन है।

:: प्रचार एवं प्रदर्शन :- इच्छित वस्तु की सामान्य जन-जाति के मन-बुद्धि में अवगाहन कराने हेतु प्रस्तुत प्रक्रिया के भाषात्मक प्रयोग ही प्रचार है तथा कला एवं भाषा सहित प्रयुक्त प्रयास ही प्रदर्शन है।

:: विधि :- एक या अनेक व्यक्तियों द्वारा अखण्ड समाज व सार्वभौम व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से व्यवस्था प्रदान करने हेतु निर्णीत नियमपूर्ण पद्धतियों की विधि संज्ञा है।

:: व्यवस्था :- विधि के आशय को कार्यरूप प्रदान करने हेतु प्रस्तुत परंपरा ही व्यवस्था

है।

- सहअस्तित्व सहज परंपरा के बिना सामाजिकता का निर्वाह नहीं है ।
- सहअस्तित्व में निर्विरोध, निर्विरोध पूर्वक जागृति, जागृति पूर्वक समाधान-समृद्धि, समाधान-समृद्धि पूर्वक सुख-शांति, सुख-शांति पूर्वक स्नेह, स्नेह पूर्वक विश्वास, विश्वास पूर्वक सहअस्तित्व बोध होता है व सहअस्तित्व में बोध, अनुभव प्रमाणित होना ही जागृति है ।

:: सहअस्तित्व :- परस्परता में शोषण, संग्रह एवं द्वेष रहित तथा उदारता, स्नेह और सेवा सहित व्यवहार, संबंध व संपर्क का निर्वाह ही सहअस्तित्व है।

:: निर्विरोध :- न्याय एवं धर्म के प्रति निश्चय, निष्ठा एवं अभ्यास ही निर्विरोध है।

:: समृद्धि :- अभाव का अभाव ही समृद्धि है अथवा उत्पादन अधिक, अर्थात् आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही समृद्धि है।

:: सुख :- न्यायपूर्ण व्यवहार एवं धर्मपूर्ण विचार (समाधान) का फलन ही सुख है।

:: स्नेह :- न्यायपूर्ण व्यवहार में निर्विरोधिता का फलन ही स्नेह है। यह जागृत जीवन में वृत्ति से अनुरंजित मन की क्रिया है।

:: विश्वास :- परस्परता में निहित मूल्य प्रत्याशा के निर्वाह क्रिया ही विश्वास है।

:: सेवा :- उपकार कर संतुष्ट होने वाली प्रवृत्ति एवं प्रतिफल के आधार पर किया गया सहयोग सहकारिता सेवा है।

❋ उपकार प्रधान सेवा में उपकार करने की संतुष्टि मिलती है। प्रतिफल प्रधान सेवा में केवल प्रतिफल आंकलित होती है।

:: उपकार = समृद्धि एवं जागृति के लिए सहायता, प्रेरणा।

❋ जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, मानव ने प्रयोग एवं उत्पादन से प्राप्त अर्थ यथा तन, मन और धन के सदुपयोग एवं सुरक्षा की कामना किया है ।

❋ अर्थ का सदुपयोग एवं इसकी सुरक्षा केवल मानवीयता पूर्ण व्यवहार एवं विचार के आधार से ही संभव है। जिसके लिए मानव द्वारा विज्ञान एवं विवेक द्वारा व्यवस्था का निर्णय किया जाता है ।

❋ समस्त भ्रमित मानव परम्परा में दो प्रकार की व्यवस्थाएँ परिलक्षित होती हैं :-

(1) धर्मनैतिक व्यवस्था और (2) राज्यनैतिक व्यवस्था ।

- सामाजिकता के संरक्षण के लिये दोनों व्यवस्थाओं का परस्पर पूरक होना अत्यावश्यक है।

- जागृत मानव परंपरा में हर परिवार में प्राप्त अर्थ का सदुपयोग धर्मनीति के रूप में तथा सुरक्षा राज्यनीति के रूप में प्रमाणित होता है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का आधार है।

  ★ इस प्रकार धर्मनैतिक व्यवस्था तथा राज्यनैतिक व्यवस्था का क्षेत्र बिल्कुल ही स्पष्ट है। जब यह दोनों व्यवस्थाएँ एक दूसरे की पोषक अथवा पूरक न होकर, एक दूसरे की शोषक या एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने लगती है तभी सामाजिक असंतुलन उत्पन्न होता है और अमानवीयतावादी विचार एवं व्यवहार को पुष्टि मिलती है। विकल्प के रुप में मानवीयता की आवश्यकता उदय होती है।

- अर्थ की सुरक्षा के लिए विधि एवं व्यवस्था पक्ष है। विधि आचरण में एवं व्यवस्था परस्परता में स्पष्ट है।

  ❋ विधि पक्ष की उपादेयता विवेक सम्मत वैयक्तिक एवं अखण्ड समाज अर्थ का पोषण, सद्व्यय परस्परता में तृप्ति के रूप में प्रमाणित होती है। उपरोक्तानुसार व्यवस्था की उपादेयता विधि के आशय को कार्यरूप प्रदान करने हेतु समझदार परंपरा को स्थापित करना है। विधि पक्ष का वैभव जागृत परंपरा में प्रमाणित होता है।

- संपूर्ण सृष्टि जड़ एवं चैतन्य भेद से परिलक्षित है।

  ★ चैतन्य पक्ष के अभाव में शरीर द्वारा किसी भी क्रिया का संपादन संभव नहीं है। मानव चैतन्य सृष्टि की विकसित इकाई है।

- चेतना (ज्ञान) व्यापक है। चेतना पारगामी व पारदर्शी है, क्रिया शून्य है (तरंग व दबाव मुक्त है।) चेतना व्यापक होने के कारण इकाई सिद्ध नहीं होती। चेतना सृष्टि के उत्पत्ति का मूल कारण सिद्ध नहीं होती क्योंकि चेतना परिणाम रहित है। सहअस्तित्व ही सृष्टि का मूल कारण है। चेतना में सम्पृक्त प्रकृति में ही समस्त परिणाम है। साम्य ऊर्जा मानव में, से, के लिए चेतना रुप में है।

  समस्त जड़-चैतन्य वस्तु ऊर्जा संपन्न रहने के लिए चेतना ही मूल कारण है। फलस्वरूप पदार्थ में क्रियाशील श्रम, गति, परिणाम पूर्वक विकासक्रम में सृष्टि बीज अर्थात् जीव-जगत (मानवेतर प्रकृति) के रूप में स्पष्ट हो चुकी है। इससे पदार्थ जगत में जीव-जगत

का बीज रूप और फल रूप होना स्पष्ट हुआ । इसी के साथ मानव जीवन में जागृति बीज होना सुस्पष्ट हुआ, क्योंकि हर मानव जागृत होना चाहता है । यही सहअस्तित्व का प्रमाण है।

* सृष्टि की समस्त इकाईयाँ अपने पात्रता के अनुसार चेतना में प्रभावित है । इस प्रभाव का फल ही इकाईयों की अक्षुण्ण चेष्टा है । चेष्टा ही क्रिया के मूल में है और यही श्रम, गति और परिणाम का कारण है । श्रम, गति, परिणाम स्वरूप ही जड़ प्रकृति विकास क्रम में है और विकसित होकर चैतन्य प्रकृति (जीवन) के रूप में संक्रमित है । चैतन्य प्रकृति का मूल रूप गठनपूर्ण परमाणु है।

* मानव में बौद्धिक तथा भौतिक दोनों पक्षों का सम्मिलित रूप व्यवहार में पाया जाता है तथा शरीर के द्वारा सम्पन्न की जाने वाली सभी क्रियाओं में यह दोनों अर्थात् बौद्धिक और भौतिक क्रियाएँ सम्मिलित पाई जाती हैं ।

* भौतिक पक्ष से तात्पर्य शरीर तथा उसके द्वारा की गई उत्पादन क्रियाएँ हैं। बौद्धिक पक्ष से तात्पर्य आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा व प्रामाणिकता ज्ञान, विवेक, विज्ञान एवं इससे संबंधित प्रक्रिया है।

:: आशा :- आश्रयपूर्वक की गयी अपेक्षा की आशा संज्ञा है । शरीर के आश्रय पद्धति से और अनुभव के आश्रय पद्धति से आशयों का होना पाया जाता है।

:: विचार :- विश्लेषण पूर्वक किया गया स्वीकृतियाँ जो समाधान के अर्थ में प्रयोजन है।

:: इच्छा :- आकार-प्रकार, प्रयोजन एवं संभावना का चित्र ग्रहण एवं निर्माण करने तथा गुणों का गतिपूर्वक नियोजन करने वाली क्रिया की इच्छा संज्ञा है। जीवन शक्तियाँ गुण, स्वभाव, धर्म (समाधान) के रूप में व्याख्यायित होती हैं।

:: ऋतम्भरा :- सत्य सहज वैभव की अभिव्यक्ति करने की संपूर्ण पृष्ठभूमि। सत्य से परिपूर्ण संकल्प।

:: संकल्प :- सम्यक प्रकार से की गयी स्वीकृति (जिसको स्वीकार करना है उसकी निर्भ्रमता) को निरंतरता प्रदान करने वाली बौद्धिक क्रिया।

★ मानव ने सृष्टि में अपने महत्व को जानने और पहचानने के क्रम में हर इकाई के गठन, क्रिया और आचरण का अध्ययन करने का प्रयास किया है । साथ ही पूर्णता के लिए प्रयास एवं अभ्यास भी किया है।

- उपरोक्त अध्ययन के क्रम में यह अनुभव में आया कि मूल इकाई जड़ परमाणु ही है, जिसने विकास पूर्वक चैतन्यता को प्राप्त किया है, जो गठनपूर्णता का प्रमाण है। गठनपूर्णता के पश्चात् क्रियापूर्णता के लिए प्रयास है।

    :: गठन :- एक से अधिक अंश के पहचानने-निर्वाह करने के नियम द्वारा अनुशासित एवं सीमाबद्ध निश्चित क्रिया को अक्षुण्णता प्रदान करने वाली प्रक्रिया ही गठन है।

    :: आचरण :- जिस क्रिया से मौलिकता का प्रकाशन होता है, उसकी आचरण संज्ञा है, आचरण ही स्वभाव है। यही नियम है।

    :: जड़ :- विचार पक्ष से रहित इकाई, जिसका कार्य क्षेत्र उसके लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई तक ही सीमित है।

    :: चैतन्य :- जिस इकाई का कार्य क्षेत्र उसकी लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई से अधिक हो तथा जिसका विचार पक्ष सक्रिय हो ऐसी इकाई की चैतन्य संज्ञा है।

- ऐसी विशेष सक्रियता प्राप्त होते ही वह इकाई आशा के बंधन से युक्त हो जाती है। प्रमाण हर जीव में जीने की आशा है ही।

- जड़ एवं चैतन्य इकाईयों में गठन सिद्धांत में साम्यता पाई जाती है।

- आत्मा में अनुभूति; बुद्धि में उल्लास व आप्लावन; चित्त में आह्लाद; वृत्ति में उत्साह तथा मन में कौतूहल ही विकास की ओर सक्रिय होने की मूलभूत ऊर्जा नियोजन रीति है। इसके लिए ऊर्जा का अन्तर नियामन आवश्यक है।

    :: अनुभूति :- अनुक्रम से प्राप्त समझ, स्थिति-गति, प्रकटन व परिणाम ही अनुभूति है।

    :: आप्लावन :- निर्भ्रमता के प्रभाव की आप्लावन संज्ञा है। बुद्धि ही निर्भ्रमता को प्राप्त कर आप्लावित होती है।

    :: आह्लाद :- अभाव का अभाव ही आह्लाद है। चित्त में ही अभाव के अभाव की प्रतीति होकर आह्लाद होता है।

    :: उत्साह :- उत्थान या विकास की ओर जो साहस है, उसकी उत्साह संज्ञा है तथा यह वृत्ति में होता है।

    :: कौतूहल :- अज्ञात को ज्ञात करने, अप्राप्त को प्राप्त करने हेतु संवेग की क्रिया

कौतूहल है। जो मन में होता है।

- ★ प्रत्येक परमाणु में परमाणु अंशों की अवस्थिति मध्य में तथा परिवेशों में पायी जाती है। प्रथम परिवेश में एक या एक से अधिक अंश, उसी प्रकार द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आदि परिवेश में भी एक या एक से अधिक अंशों को पाया जाता है, जो मध्यांश के सभी ओर अविरत रूप से भ्रमणशील है। प्रत्येक परमाणु के सभी ओर तथा परमाणु के गठन में पाए जाने वाले अंशों के सभी ओर शून्य की स्थिति पाई जाती है। शून्य से रिक्त व मुक्त स्थान या वस्तु नहीं है।

- ● चैतन्य इकाई (गठनपूर्ण परमाणु) के मध्यांश को आत्मा, उसके प्रथम परिवेशीय अंशों को बुद्धि, द्वितीय परिवेशीय अंशों को चित्त, तृतीय परिवेशीय अंशों को वृत्ति तथा चतुर्थ परिवेशीय अंशों की मन संज्ञा है।

  - ★ इस पृथ्वी पर प्रत्यक्ष रूप में सृष्टि चार अवस्था में हैं। इन चारों अवस्थाओं में परमाणुओं का मध्यांश मध्यस्थ क्रिया है, क्योंकि उस पर सम या विषम का प्रभाव नहीं पड़ता है।
  - ★ गठनशील परमाणुओं में श्रम, गति एवं परिणाम घटित होता ही रहता है। परिणाम के अमरत्व के फलस्वरूप चैतन्य इकाई रूपी 'जीवन' में विश्रामानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता पर्यन्त श्रम का अभाव नहीं है।

- ● पदार्थावस्था में सभी प्रजाति के परमाणु के अंतिम परिवेशीय अंश ही श्रम पूर्वक सक्रिय रहते हैं अथवा अग्रेषण क्रिया में रत हैं।

  - :: क्षोभ :- क्षमता एवं योग्यता को श्रम में परिवर्तित करने पर जो ह्रास है उसकी क्षोभ संज्ञा है। यही पात्रता की अपूर्णता है।
  - :: अग्रेषण :- क्षमता एवं योग्यता को श्रम में परिवर्तित करने में जो संतुलन अथवा पात्रता का अर्जन है उसकी अग्रेषण संज्ञा है।

- ● जड़ परमाणुओं में अंतिम एवं उसके पहले परिवेशीय अंश ही सक्रिय होकर श्रम पूर्वक यौगिक क्रियाओं में संलग्न रहते हैं। अग्रिम रचना प्राणावस्था के लिये अग्रेषित रहते हैं।

- ● जीवावस्था में शरीर रचनाएँ प्राण कोषा से ही रचित है और जीवन में वंशानुषंगी कार्य प्रवृत्ति रहती है। चैतन्य परमाणु (जीवावस्था) में चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय परिवेशों के अंश आंशिक रूप में सक्रिय रहते हैं और इससे श्रेष्ठ अभिव्यक्ति के लिए अग्रेषित रहते हैं।

- ज्ञानावस्था में भी शरीर रचना प्राण कोषाओं से ही है और जीवन जागृति क्रम में चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय परिवेशों के क्रियाशीलता विधि से साढ़े चार (4½) क्रियाओं को शरीर मूलक विधि से व्यक्त करता है।

- जागृति पूर्वक अनुभव मूलक विधि से पूरे दस क्रियाओं को प्रमाणित करता है। मानव शरीर रचना मानव परंपरा में 'जीवन' में होने वाली दसों क्रियाओं को प्रमाणित करने योग्य रहता है।

- ज्ञानावस्था में ईष्ट सेवन का लक्ष्य ईष्ट से तादात्म्य, तद्रूप, तत्सान्निध्य एवं तदावलोकन है। ईष्ट के नाम रूप, गुण एवं स्वभाव तथा साधक की क्षमता, योग्यता तथा पात्रता के अनुपात में सफल होती है।

  :: ईष्ट :- निर्भ्रान्त ज्ञान सहित स्वेच्छापूर्वक सहअस्तित्व के प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं निष्ठा ही ईष्ट है।

  :: तादात्म्य, तद्रूप :- जागृति ही परम उपलब्धि होने के कारण तद्रूप, अनुभव बोध से तादात्म्य होना जीवन सहज तथा अनुभव सहज क्रिया है। सहअस्तित्व में अनुभव ही तद्रूप, तदाकार विधि है। क्योंकि नियम, नियन्त्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य, अनुभव के फलन में प्रमाणित होता है।

  :: तत्सान्निध्य :- तत्सान्निध्य का अर्थ सुख, शांति, संतोष, आनंद का सान्निध्य है।

  :: तदावलोकन :- सहअस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठा ही तदावलोकन क्रिया है। सहअस्तित्व का दृष्टा जागृत जीवन ही है।

  * जागृति को तत् शब्द से इंगित कराया है।

- ज्ञानावस्था की इकाई की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य निर्बीजन व्यवहार की उपलब्धि है। निर्बीजन का तात्पर्य भ्रम मुक्ति और प्रमाण रूप में जागृति है। यही आचरण पूर्णता है।

  :: **सबीजन होने का तात्पर्य :-** शरीर को 'जीवन' मान लेना जबकि 'शरीर' भौतिक-रासायनिक वस्तु की रचना है। 'जीवन' गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई है तथा रासायनिक-भौतिक संसार का दृष्टा है।

- निर्बीजन व्यवहार भ्रम-मुक्ति की स्थिति में होता है।

- निर्बीजन व्यवहार में अमानवीयता से मुक्ति, मानवीयता का पोषण तथा अतिमानवीयतापूर्ण स्थिति का प्रमाण है।

- शरीर की नश्वरता और 'जीवन' की अमरत्व व निरंतरता, कार्य-व्यवहार के नियमों की पूर्ण स्वीकृति व अनुभूति ही निर्बीज विचार है और तदनुसार व्यवहार ही निर्बीजन व्यवहार है। यही भ्रम मुक्ति है।

- निर्बीज विचार ही जीवन मुक्त की या दिव्यमानव की स्वभाव-सिद्ध वैचारिक प्रक्रिया है।

- जीवन-मुक्त अर्थात् जीव चेतना एवम् भ्रम मुक्त मानव अर्थात् सहअस्तित्व में अनुभव सम्पन्न मानव में भूतकाल के स्मरण से तथा भविष्य की आशा से पीड़ा नहीं होती व वर्तमान से विरोध नहीं होता।

- भ्रम मुक्ति अथवा जागृति ही मध्यस्थ स्थिति व गति है। मध्यस्थ स्थिति प्राप्त करने में सम-विषम क्रिया के क्षोभ से मुक्ति है। जीवन में जागृति पूर्वक उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशीलता, पूरकता विधियों से संतुष्ट होने की व्यवस्था है। जागृत जीवन में मध्यस्थ अर्थात् आत्मा अथवा अनुभव बोध विधि से ही संतुलित, संतुष्ट होना पाया जाता है।

  ★ जागृति क्रम में सर्वमानव रूप, बल, धन, पद के बढ़ने को सम क्रिया तथा इनके बने रहने को मध्यस्थ क्रिया व इनके घटने को विषम क्रिया के रूप में पहचाने रहते है। इस प्रकार जागृति क्रम में भ्रमवश सम व मध्यस्थ क्रियाएं सभी को स्वीकार रहती हैं तथा विषम अस्वीकार रहती हैं, इसलिए क्लेश में रहते हैं। जागृत मानव परंपरा में 'जीवन' का वैभव एवं महत्ता प्राथमिक हो जाते हैं तथा भौतिकताएँ द्वितीय हो जाते हैं तथा भौतिकता सहज सम, विषम, मध्यस्थ क्रियाएं नियंत्रित हो जाती हैं।

- क्षोभ ही दु:ख अथवा क्लेश है।

- क्षोभ या समस्या अथवा दु:ख के निवारण हेतु ही जीने की आशा जागृति पूर्वक प्रमाण आवश्यकता है।

- जीने की आशा में उद्भव, विभव एवं प्रलय समाविष्ट है। जीवावस्था के शरीर रचना, प्राणावस्था की रचना क्रिया है। इनमें विभव सबसे प्रिय है जो स्थायी नहीं है। भ्रमवश मानव विभव में ही बल, रूप, पद व धन के स्थायीकण के लिए प्रयास करता है, जो उसका स्थायी गुण न होने के कारण असफल है। उपरोक्तानुसार विभव काल की स्थिरता तथा इसमें की गई उपलब्धियों की स्थिरता सिद्ध नहीं होती। **मानव का विभव जागृत परम्परा ही है।**

- आकृति को रूप, प्रभाव को गुण, वस्तुस्थिति को तत्व तथा किसी रूप, क्रिया, वस्तु व स्थान को निर्देश करने हेतु प्रयुक्त शब्द की 'नाम' संज्ञा है ।
- रूप एवं गुण सापेक्ष और सामयिक तथ्य है।

:: सामयिक तथ्य :- किसी क्रिया या क्रिया समुच्चय का परिणाम भावी है, उसकी सामयिक तथ्य संज्ञा है।

- समस्त तत्व निरपेक्ष में संपृक्त कार्यरत है।
- भाषा के मूल में भाव; भाव के मूल में मौलिकता; मौलिकता के मूल में मूल्यांकन; मूल्यांकन के मूल में दर्शन; दर्शन के मूल में दर्शक; दर्शक के मूल में क्षमता, योग्यता एवं पात्रता; क्षमता, योग्यता एवं पात्रता के मूल में सत्य भास, आभास, प्रतीति; भास, आभास, प्रतीति के मूल में भाषा है । यह सब चित की क्रिया है जो दर्शक के जागृति के अनुसार सफल है अथवा असफल है।
- पदार्थावस्था एवं प्राणावस्था की सृष्टि मेधस रहित तथा जीवावस्था व ज्ञानावस्था की सृष्टि मेधस सम्पन्न है।

:: मेधस :- चैतन्य इकाई की इच्छाओं एवं आकाँक्षाओं के संकेत को ग्रहण करने योग्य क्षमता, योग्यता और पात्रता सहित सप्राण अंग ही मेधस है, जिसकी अवस्थिति साम्यत: मानव के शिरोभाग में पाई जाती है।

- 'जीवन पुंजस्थ' आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा तथा प्रमाणिकता (प्रमाण) का प्रसारण (संकेत ग्रहण) मेधस पर ही है, जिसके अनन्तर ही ज्ञानवाही एवं क्रियावाही प्रक्रियाएँ हर मानव शरीर में पाई जाती है जो मानव परंपरा में परावर्तित होता है।

:: पुंज :- चैतन्य इकाई सहज कार्य सीमा सहित जो आकार है, उसे पुंज की संज्ञा है । ऐसे पुंज के मूल में एक ही गठनपूर्ण परमाणु का अस्तित्व है जिसमें ही आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति तथा मन की क्रियाएँ दृष्टव्य हैं।

:: प्रसारण :- आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा एवं प्रमाणिकता सहज प्रमाणों के संकेत से मेधस तंत्र पर प्रभाव डालने हेतु प्रयुक्त तरंग की प्रसारण (संकेत ग्रहण) संज्ञा है, जिसमें प्रत्याशा का होना आवश्यक है।

- ग्रहण, विसर्जन, निग्रह, अनुग्रह, संग्रह एवं उदारता के भेद से ही समस्त सुखाकाँक्षाएं हैं।

:: ग्रहण :- उपयोगिता के मूल्यांकन की ग्रहण संज्ञा है।

:: विसर्जन :- अनुपयोगिता की विसर्जन संज्ञा है।

:: निग्रह :- स्वसंयमता के अर्थ में प्रवृत्ति।

- आशाएँ आस्वादन के रूप में; विचार प्रसारण के रूप में; इच्छाएँ (काँक्षाएं) प्रयोग एवं व्यवहार के रूप में तथा ऋतम्भरा दृढ़ता एवं निष्ठा के रूप में व्यक्त है। यह क्रम से मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि से प्रदर्शित होने वाले गुण, स्वभाव सहित क्रिया पक्ष है अर्थात् मन से आशा, वृत्ति से विचार, चित्त से इच्छा (काँक्षा) और बुद्धि में अनुभव प्रमाण ऋतम्भरा क्रियाएँ हैं।

- हर चैतन्य इकाई दृष्टि संपन्न है। जड़ परमाणु विकासपूर्वक चैतन्य (जीवन) परमाणु होते तक दृष्टि सम्पन्न नहीं है।

- अपने दृष्टि के द्वारा दृश्य को देखने हेतु दर्शक द्वारा प्रयुक्त क्रिया एवं प्रक्रिया ही **दर्शन** है, जिसकी उपलब्धि अर्थात् दर्शन की उपलब्धि समझ या ज्ञान है। ज्ञान से ही स्व एवं परस्परता का निर्णय तथा अनुभव एवं अभिव्यक्ति है। जागृत मानव में स्वयं होने का बोध व संपूर्ण अस्तित्व होने का बोध होता है। यही स्व एवं परस्परता है।

  ★ अपने वातावरण में स्थिति पूर्ण-अपूर्ण, रूप-गुण-स्वभाव-धर्म, योग-वियोग, क्रिया-प्रक्रिया, परिणाम-फल, ह्रास और विकास का संकेत ग्रहण दर्शन द्वारा ही दर्शक ने किया है।

- चैतन्य इकाई स्वयं जीवन पुंज-मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि व आत्मा का अध्ययन है।

  ❋ इसके पूर्व अमानवीयता और अतिमानवीयता का वर्गीकरण स्वभावात्मक व व्यवहारात्मक भेद से किया जा चुका है। मानव जाति पाँच श्रेणियों में परिलक्षित है, जो निम्नानुसार हैं:-

  ★ अमानवीय मानव के दो वर्ग हैं:- (एक) पशु मानव और (दो) राक्षस मानव।

- पशु मानव में दीनता प्रधान, हीनता एवं क्रूरता वादी कार्य व्यवहार होता है।

- राक्षस मानव में क्रूरता प्रधान, दीनता एवं हीनतावादी कार्य व्यवहार होता है।

  ★ (तीन) मानवीयतापूर्ण मानव एक वर्ग में है।

  मानवीय दृष्टि : न्याय, धर्म, सत्य।

  मानवीय विषय : पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा।

मानवीय स्वभाव : धीरता, वीरता, उदारता।

★ अतिमानवीयतापूर्ण मानव पुन: दो वर्ग में है :-
(चार) देव मानव और (पाँच) दिव्य मानव।

★ अतिमानवीयता पूर्ण मानव की दृष्टि, विषय और स्वभाव निम्नानुसार है :-

● देव मानव दृष्टि- धर्म प्रधान न्याय और सत्य।

विषय - लोकेषणा।

स्वभाव - धीरता, वीरता, उदारता तथा दया प्रधान कृपा, करूणा ।

● दिव्य मानव दृष्टि-परम सत्य।

विषय - सहअस्तित्व रूपी परम सत्य।

स्वभाव - करुणा प्रधान दया, कृपा।

★ उपरिवर्णित पाँच श्रेणी के मानव अपने से अविकसित पर निरीक्षण, परीक्षण एवं सर्वेक्षण पूर्वक व्यवहार एवं अधिकार करते हैं ।

:: अधिकार :- अपने सही मन्तव्य के अनुसार अन्य को गति एवं कला प्रदान करना और उसका उपयोग, सदुपयोग तथा पोषण करने की क्षमता, योग्यता एवं पात्रता होना ही अधिकार है।

❋ उपरोक्त विधि से जागृति पूर्वक ही मानव अखण्डता, सार्वभौमता सहज सूत्र व्याख्या सम्पन्न होता है क्योंकि विकसित द्वारा अविकसित को प्रेरित करने का अधिकार होता है जबकि अविकसित द्वारा विकसित का मात्र अध्ययन ही संभव है।

★ उपरोक्तानुसार विवेचना के आधार पर ही इस वैविध्यता से पीड़ित संसार के मूल में प्रत्येक मानव अपना भी मूल्यांकन करना चाहता है, क्योंकि स्वयं का मूल्यांकन यदि सही नहीं है तो उस स्थिति में अध्ययन के लिये आवश्यक सामर्थ्य को संजो लेना संभव नहीं है - जैसे एक रूपया के मौलिकता को पूरा-पूरा समझे बिना दो एवं उसके आगे वाले संख्या की गति एवं प्रयोग नहीं है। एक रूपया के मूल्य को 1 से 99 पैसे तक मूल्यांकन करने की स्थिति पर्यन्त उस एक रूपया का पूर्ण मूल्यांकित ज्ञान उस इकाई में प्रादुर्भूत नहीं हुआ।

❋ अत: मानव को अपने विकास की दृष्टि से स्वयम् का मूल्यांकन करना प्राथमिक

एवं महत्वपूर्ण कार्यक्रम सिद्ध है। यही ज्ञानावस्था की विशिष्टता है।

❋ अध्ययन यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता के अर्थ में ही संपन्न होता है। सर्वप्रथम व्यापक वस्तु में समाहित संपूर्ण एक-एक वस्तुओं का वर्गीकरण विधि से अध्ययन संभव हो गया है । यही चार अवस्था, चार पदों में अध्ययन गम्य है। क्रिया का अध्ययन विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति के रूप में बोधगम्य होने की व्यवस्था है। इसी के साथ-साथ रूप, गुण, स्वभाव व धर्म का अध्ययन होना आवश्यक है । चारों अवस्था, चारों पदों में स्पष्ट है । विकास का अध्ययन परमावश्यक है। विकसित इकाई के रूप में 'जीवन' का अध्ययन संपन्न होता है । और जीवन में ही जागृति क्रम, जागृति का स्पष्ट प्रमाण होता है ।

ऐसे विकासात्मक अध्ययन में मात्र तात्विकता का वर्णन बोधगम्य न होने के कारण (अनुमान करने योग्य स्वीकृति न होने के कारण) तर्क की सहायता आवश्यक है । यहाँ तर्क की आवश्यकता इसलिए प्रतीत होती है और नियोजित की गई है कि वांछित (जिसे सिद्ध करना है) की कल्पना पहले से साधक में (जिसे प्राप्त करना है) पूर्वाभ्यास रूप में प्रतिष्ठित करना है।

सर्वप्रथम अध्ययन; **द्वितीय** स्थिति में प्रयोग व अभ्यास; **तृतीय** स्थिति में अनुभव, प्रमाण प्रमाणित होना ही उपलब्धि और सार्थकता है। विकास और जागृति संबंधी अध्ययन मानव कुल के लिए अथवा मानव कुल सुरक्षित रहने के लिए परमावश्यक है। सर्वमानव में समझदारी की प्यास है ही। यही पात्रता सर्वमानव में होने का प्रमाण है इसे तर्क संगत विधि से, अर्थ बोध सहित स्थिति सत्य, वस्तुस्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य को बोधगम्य, अध्ययनगम्य, फलतः अनुभव गम्यता को प्रमाणित करने की स्थिति समीचीन है, यही अध्ययन का तात्पर्य है।

★ मानवीयता पूर्ण मानव व्यवस्था सहज रूप में होने के आधार पर निश्चयन और ध्रुवीकरण हुआ। मानवीयता पूर्ण मानव से कम विकसित पशु मानव व राक्षस मानव का व्यवस्था में जीना संभव नहीं हुआ, यह समीक्षित हो चुका है। मानव से श्रेष्ठ देव मानव व दिव्य मानव हैं, जो जागृति पूर्ण हैं। अनुभव प्रमाण के रूप में जागृत मानव परंपरा में सार्थक सिद्ध हुईं । जागृत परंपरा में मानवीयता पूर्ण कार्य-व्यवहार के रूप में स्पष्ट होता है, 'अनुभव प्रमाण' परिवार व्यवस्था और विश्व परिवार व्यवस्था में प्रमाणित होता है। यह परम आवश्यकता है ही। उक्त विधि से व्यवहार के सभी आयामों में मानवीयता को पहचानना, मूल्यांकित करना और

व्यवस्था में मानवीयता सहित अनुभव प्रमाणों को पहचानना और प्रमाणित करना सहअस्तित्व दृष्टिकोण से संभव हो गया है ।

★ दिव्य मानव का विषय (प्रवृत्ति) परम सत्य रूपी सहअस्तित्व है ।

● 1. सत्ता सर्वत्र एक सा विद्यमान है।

★ **संपूर्ण अस्तित्व में जड़-चैतन्य प्रकृति कार्यकलाप सदा-सदा है ही ।** इससे ज्ञात होता है कि हर क्रिया के मूल में प्राप्त सत्ता हर स्थान में विद्यमान है। इसीलिए दिव्य मानव भी अनेक संख्या में होने की संभावना है।

● 2. सत्ता सर्वत्र एक सा भासमान है।

● 3. सत्ता सर्वत्र एक सा बोधगम्य है।

★ इस पृथ्वी पर कहीं भी अर्थात् किसी स्थान पर भी स्थित मानव यदि दिव्य मानवीयता से संपन्न हो जाते हैं, उस स्थिति में उन सब में समान अनुभूति प्रमाणित होती है और वह अविकसित मानव के लिए समान रूप से प्रेरणा श्रोत होते हैं। इसी आधार पर सर्वमानव को सर्वत्र सहअस्तित्व समझ में आना अध्ययन विधि से स्पष्ट होता है।

★ ज्ञानावस्था में पाये जाने वाले भ्रमित मानव के मन में चयन व आस्वादन क्रिया, वृत्ति में विश्लेषण क्रिया और तुलन क्रिया (प्रिय, हित, लाभ के अर्थ में) तथा चित्त में चित्रण क्रिया संपादित होती रहती है यह शरीर मूलक विधि से संपादित होता है। यही भ्रमित विधि से होने वाली साढ़े चार (4½) क्रियाएं है।

दिव्य मानव, देव मानव एवं मानव में आत्मा में होने वाले अनुभव प्रमाण सहित प्रथम परिवेशीय क्रियाकलाप पूर्ण सक्रिय हो जाता है। जिसके फलस्वरूप जीवनगत सभी क्रियाऐं अनुभवमूलक क्रियाकलाप सहित प्रमाणित होते हैं ।

● प्रेरणा पाने की क्षमता हर परमाणु में निहित अंशों में है, क्योंकि संपूर्ण अंश सत्ता में सम्पृक्त हैं।

● ज्ञानावस्था की चैतन्य इकाई का जड़ शरीर प्रत्याशा के फल को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों द्वारा पाये जाने वाली प्रवृत्तियों में से पुष्टि पक्ष को ग्रहण करता है ।

● इन प्रवृत्तियों में जो कला पक्ष और ज्ञान पक्ष है, उसका आस्वादन सुख के रूप में चैतन्य पक्ष ही करता है।

● चैतन्य पक्ष के जागृति का जो कारण है, उसे संस्कार संज्ञा है।

- **जड़ पक्ष के परिणाम का जो कारण है, उसे अध्यास या वंशानुक्रम संज्ञा है जो गठनपूर्णता तक है।**

:: **संस्कार :-** 1. **पूर्णता के अर्थ में स्वीकृतियाँ ही संस्कार है। यही मानव का प्रारब्ध है।**

2. **प्रमाणित होने के लिए पहले से जो समाधान के अर्थ में प्राप्त है, वह संस्कार है। समाधान के अर्थ में ज्ञान-विज्ञान-विवेक ही प्राप्त रहता है।**

3. **पूर्णता के अर्थ में कृतियों को साकार करने में क्रियाकलाप सहित प्रवृत्तियाँ और समझदारी ही संस्कार है।**

4. **पूर्णता के अर्थ में कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत, कारित, अनुमोदित विधि से की गई कृतियाँ संस्कार है।**

:: **प्रारब्ध :- जो जितना जान पाता है उतना चाह नहीं पाता; जितना चाह पाता है उतना कर नहीं पाता; जितना कर पाता है उतना भोग नहीं पाता। जितना भोगा नहीं जाता वह प्रारब्ध है।**

गठनशील परमाणु अणुबंधन-भारबंधन सहित होता है। परमाणु में संकोचन - प्रसारण क्रिया में वृद्धि होने के फलन में परमाणु तत्काल समूह से मुक्त हो जाता है तथा गठनपूर्ण हो जाता है। यही जीवन परमाणु है। जीवन अणु बंधन, भार बंधन से मुक्त तथा आशा बन्धन से युक्त होना ही गठनपूर्णता का प्रमाण है। गठनपूर्णता का प्रमाण स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार के रूप में स्पष्ट हो जाता है। अस्तित्व में भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया, जीवन क्रिया ये तीनों प्रकार की क्रियाएं सदा-सदा वर्तमान हैं। इनके अन्तर्सम्बन्धों को पहचानने के क्रम में भौतिक, रासायनिक क्रिया से संक्रमित इकाई के रूप में चैतन्य इकाई, स्वयं को 'जीवन' के रूप में पहचानता है। इसको पहचान सहित प्रमाणित करने वाला मानव ही है। समूह से अलग होने का फल ही है कि परमाणु अपनी लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई से अधिक विस्तार में कार्य करने में सक्षम होता है। प्रत्येक 'जीवन' शरीर द्वारा ही आशानुरुप उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील है तथा इसी हेतु वह अणु समूह से पृथक है।

- **चैतन्य एवं जड़ का योग :- जड़ क्रियाओं में पाये गये क्षोभ का ही परिणाम चैतन्य अवस्था है क्योंकि श्रम का क्षोभ ही विकास के लिए कारण है, जिसके फलस्वरूप ही**

विश्राम की तृषा है।

★ उपरोक्त संबंध में अर्थात् जड़ परमाणु ही विकास के क्रम में संक्रमित होकर चैतन्यता प्राप्त करता है।

● चैतन्य में जो कुछ भी अध्यास की रेखाएं हैं, वह अपूर्ण हैं ही। चैतन्य इकाई अग्रिम विकास चाहती है। हर विकसित इकाई अविकसित इकाई का परस्पर जागृति के लिये पूरकता के अर्थ में उपयोग करती है। जागृति के मूल में मानव कुल के हर इकाई में, अपने शक्ति का अंतर्नियोजन आवश्यक है, क्योंकि इकाई की शक्ति के बर्हिगमन होने पर ह्रास परिलक्षित होता है तथा शक्ति के अंतर्निहित होने पर विकास परिलक्षित होती है। अंतर्नियोजन का तात्पर्य प्रत्यावर्तन व स्व में निरीक्षण-परीक्षण पूर्वक निष्कर्ष निकालना और प्रमाणित करना ही है।

:: अध्यास :- मानसिक स्वीकृति सहित संवेदनाओं के अनुकूलता में शारीरिक क्रिया से जो प्रक्रियाएं सम्पन्न होती है उसकी अध्यास संज्ञा है।

★ प्राणावस्था में अवस्थित रचना रुपी इकाईयाँ वनस्पति हैं। इसके मूल में प्राण कोशाएं हैं। प्राणावस्था की इकाईयों की संरचना पदार्थावस्था की वस्तुओं से ही है। प्राणकोशाओं की परंपरा बनी रहे, इसके लिये रचनाएँ सम्पन्न होती रहती हैं। निश्चित प्रयास की रचना किसी एक निश्चित अवधि तक पहुँचती ही है, जिसे हम पेड़-पौधों के रूप में देखते हैं। अब इनकी बीजावस्था आती है। अस्तित्व को बचाए रखने के क्रम में प्रयास में ही प्राणावस्था में बीजों का निर्माण हुआ। बीज में पूरे वृक्ष की रचना विधि सहित प्राण कोशाएं निहित रहती हैं। फलस्वरूप ही बीज में पूरे वृक्ष की रचना विधि धारित किये हुए प्राणकोशाएं अवस्थित रहते हैं। इसीलिए बीज पुन: उसी प्रकार की संरचना करने में समर्थ होते हैं। यही **बीज-वृक्ष न्याय** कहलाता है।

:: वनस्पतियों की जातियों की उत्पत्ति का कारण नैसर्गिक दबाव और संग्रहण प्रतिक्रिया के भेद से ही है।

● यह मानव शरीर रचना की निपुणता सूक्ष्म प्राणकोशाओं में प्राणावस्था की रचनाओं से लेकर ज्ञानावस्था के शरीर रचना तक संपन्न होती है। प्राण कोशाएं अपने स्वरूप में समान होती हैं तथा रचना विधियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। साथ ही प्राणावस्था की रचना में कुशलता के जितने भी वर्ग हैं उससे अधिक जीवावस्था में और इससे अधिक ज्ञानावस्था

में है, क्योंकि शरीर रचना में जो मौलिक विकास हुआ है उतने ही पक्ष की स्पष्टता इन रचना विधियों में समाविष्ट हो चुकी हैं। सर्वोच्च विकसित रचना मानव शरीर में 'मेधस' ही है । समृद्धि पूर्ण मेधस तन्त्र युक्त मानव शरीर ही है।

★ शरीर रचना के संबंध में वंश को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। बीज संयोजन क्रिया अर्थात् वंश परंपरा प्राणावस्था, जीवावस्था तथा ज्ञानावस्था में अपने-अपने मौलिकता के साथ हैं । रचना के आधार पर, बीज संयोजन के संबंध में सैद्धांतिक साम्यता पाते हुए प्राणावस्था की इकाई की स्थिति एवं व्यवहार, जीवावस्था की स्थिति एवं व्यवहार तथा ज्ञानावस्था की स्थिति एवं व्यवहार में मौलिक अंतर हैं। अत: स्पष्ट है कि रचना विधि के आधार पर विविधताएँ हैं। यह स्वयंस्फूर्त क्रिया है ।

★ ज्ञानावस्था में मानव ही चारों अवस्थाओं का दृष्टा है। चैतन्य इकाई (मानव) में एकरूपता, जागृति को पाने हेतु प्राप्त समझ ही संस्कार है। यह समझ ही मानव के लिए समाधान-समृद्धि पूर्वक जीने का कारण है। समझ के आधार पर व्यवहार-कार्य होता है । इससे सिद्ध होता है कि चैतन्य इकाई आशा, विचार, इच्छा एवं ऋतम्भरा व अनुभव का रूप ही हैं । उसी रूप की अभिव्यक्ति में जो सार्थकता है वह स्वयम् में अनुभव मूलक आशाओं, विचारों, इच्छाओं और ऋतम्भरा और अनुभव का बीज रूप और प्रमाण है। मानव तब तक जड़ पक्ष के अधिमूल्यन से मुक्त नहीं हो सकता है, जब तक अपने में निर्भ्रमता को संपन्न करने योग्य क्षमता, योग्यता और पात्रता को सिद्ध नहीं कर लेता है । यह केवल जागृति से ही संभव है । ऐसी क्षमता, योग्यता और पात्रता सिद्ध होने तक जड़ पक्ष एवं इन्द्रिय संवेदनाओं पर नियंत्रण व संतुलन पाना स्वभाव सिद्ध नहीं हुआ। क्योंकि भ्रमित विधि से मानव शरीर से सुख पाने की अपेक्षा में आशा, विचार, इच्छा को फैलाता है। ऐसे में भ्रमित कार्यकलाप करता है। जागृति विधि से स्पष्ट होता है कि मानव वंश और जाति एक ही है तथा वैचारिक वैविध्यता भ्रमवश है।

❋ जैसे 1- भ्रमित मानव कुछ समय तक उदार-चित्त रहता है परंतु कुछ काल के पश्चात् कृपण हो जाता है। इसी प्रकार विभिन्न दिशाओं में विपरीत कार्य संपन्न करता हुआ मानव-जीवन परिलक्षित होता है। मानव का इन्हीं साविपरीत क्रियाओं में ही अपनी मानसिकता प्रदर्शन, प्रतिदर्शन करना सिद्ध हुआ है। यही भ्रमित मानव का स्वरूप है । पुनर्विचार का भी प्रेरक है।

- ⁕ 2 - एक व्यक्ति अजागृत है, दूसरे जागृत व्यक्ति के संपर्क में आकर उसमें जागृति के लिए तृषा उत्पन्न होती है तथा उसमें जागृति प्रारंभ होती है । यह वातावरण के प्रेरणावश पाई जाने वाली जागृति क्रम और जागृति प्रक्रिया है।

● जागृति की निरंतरता ही मानव परंपरा सहज महिमा है।

● जागृति क्रम में संस्कार के दो भेद हैं :-

:: सुसंस्कार :- जागृति योग्य प्रवृत्तियाँ जो मानव द्वारा व्यवहृत हैं तथा विचार रूप में अवस्थित हैं। समृद्ध, समाधानित अथवा सार्थक प्रवृत्तियाँ सुसंस्कार हैं।

:: कुसंस्कार :- जीवों के सदृश्य जीने की प्रवृत्ति।

:- विकास की ओर कुण्ठित करने वाली प्रवृत्तियाँ जो मानव द्वारा व्यवहृत है तथा विचार रूप में अवस्थित है अर्थात् ह्रास की ओर गति योग्य प्रवृत्तियाँ एवं विचार कुसंस्कार है।

⁕ समस्त सुसंस्कार अन्ततोगत्वा प्रवृतियाँ एवं इच्छा के रूप में प्रवर्तित होकर समय, स्थान एवं अवसर पाकर कार्य, क्रिया, व्यवहार एवं अनुभूति के रूप में प्रमाणित होते हैं।

⁕ मानव ने जड़-चैतन्य एवं व्यापक के संबंध में अपने महत्व को पहचानने का प्रयास किया है। व्यापक सत्ता अथवा ज्ञान की अनुभूति के बिना पूर्ण विवेक एवं विज्ञान का उदय नहीं होता। पूर्ण विवेक एवं विज्ञान के अभाव में सामाजिकता के संरक्षण और संवर्धन संभव नहीं है। समुचित विधि एवं व्यवस्था के अभाव में मानव द्वारा मानव का शोषण होता है।

● पूर्ण विवेक एवं विज्ञान के उदय के अभाव के कारण जो जैसा है, उसे वैसा समझने में मानव असमर्थ होता है। यही भ्रम का कारण है ।

⁕ सर्वप्रथम मानव स्वयं को ही समझना चाहता है, पर उपरोक्त वर्णित असमर्थता के कारण स्वयं का सही-सही मूल्यांकन नहीं कर पाता । इसी स्थिति को पूर्व में 'भ्रान्त' के नाम से परिचित कराया गया है। शोषण क्रिया इसी भ्रांति स्थिति का परिणाम है ।

⁕ अत: जागृति की ओर प्रवृत्त होने के लिए एक मानव की सार्थक प्रयुक्ति यही है कि वह अपने से जागृत मानव के निर्देश, आदेश एवं संदेश की ओर अपनी ग्रहणशीलता

को अभिमुख बनाए रखे । केवल इसी प्रक्रिया से मानव सृष्टि में अपने महत्व को जानने व पहचानने में सफल होता है ।

- अपने महत्व को जानने व पहचानने पर ही विश्राम सहज उपलब्धि संभव है ।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - पाँच
निर्भ्रमता ही विश्राम

- अशेष मानव विश्राम की आशा एवं प्रतीक्षा में है।
- समाधान की ओर विश्राम का तथा समस्या की ओर श्रम का अनुभव है।
  - ❋ समाधान एवं समस्या मानव के लिये बौद्धिक एवं भौतिक भेद से है ।
- भौतिकता में समृद्धि ही समाधान अन्यथा समस्या है।
- बौद्धिकता में अनुभूति ही समाधान अन्यथा समस्या है।
  - ★ बौद्धिकता में अनुभूति का अर्थ है सहअस्तित्व रूपी परम सत्य का अनुभव तथा इसके अध्ययन पक्ष को समाधान और इसमें व्यवधान पक्ष को समस्या की संज्ञा है ।
  - ★ अनुभूति तथा समृद्धि दोनों क्रियाएं हैं। अनुभव क्रिया पूर्वक 'जीवन' विकसित चेतना स्वत्व रूप में है। जबकि समृद्धि के लिए कार्य क्रिया शरीर यात्रा पर्यन्त एक आवश्यकता है। शरीर यात्रा के समापन के साथ ही इसकी आवश्यकता भी समाप्त होती है। इसलिए यह सामयिक है। इस प्रकार अनुभव सहज निरंतरता सिद्ध हुई।
- सफलता केवल निर्भ्रम अथवा निर्भ्रान्त अवस्था में ही है।
- ज्ञानावस्था के संपूर्ण मानव ही निर्भ्रान्त अवस्था के निकटवर्ती हैं। जागृति का तात्पर्य सहअस्तित्व में अनुभूति सहज प्रमाण है। जागृत मानव के निकटवर्ती मानव जागृति क्रम में होना पाया जाता है। यही भ्रांत मानव है। यही पशु मानव व राक्षस मानव है। अत: यह सिद्ध होता है कि जागृति भ्रमहीनता अथवा निर्भ्रान्त स्थिति की उपलब्धि है।
- जो जैसा है उसको वैसा जानना, मानना एवं पहचानना ही निर्भ्रान्त स्थिति की उपलब्धि है अथवा निर्भ्रमता की स्थिति है क्योंकि 'है' का अध्ययन है।
  - ★ जो जैसा है उसको वैसा जानने का तात्पर्य है शब्द द्वारा इकाई के रूप, गुण, स्वभाव व धर्म इंगित हो जाना। सत्ता में सम्पूर्ण एक-एक है, सत्य व्यापक में समाहित जड़-चैतन्य प्रकृति है। यही परम सत्य है अत: सत्यता का ही- वस्तुस्थिति के रूप में अध्ययन है और इसी की समझ और प्रमाण उपलब्धि है। उपलब्धि मात्र सहअस्तित्व में, से, के लिए होती है। सत्यता सहअस्तित्व स्वरूप है क्योंकि नित्य

वर्तमान है।

- सत्यता का अध्ययन पूर्ण हो जाना ही निर्भ्रमता है।
- **सत्यानुभूति के लिये भ्रम का निवारण परमावश्यक है, जो मानवीयता पूर्ण जीवन से ही चरितार्थ होता है।**
- निर्भ्रमता के लिए विवेक एवं विज्ञान का अध्ययन व कर्माभ्यास, व्यवहाराभ्यास आवश्यक है। इसके द्वारा किये गये अनुभव, विचार तथा व्यवहार के समन्वय से ही क्रमश: अध्यात्मिक, बौद्धिक तथा भौतिक स्तर में अनुभूतियाँ एवं उपलब्धियाँ हैं।
- अनुभव मात्र सत्य सहज ही है क्योंकि यह अपरिवर्तनीय है, अनुभव यदि परिवर्तनशील हो तो वह अनुभव नहीं है।
- भौतिक क्रिया परिणामी है, अत: सामयिक सिद्ध है। समस्त क्रियाएं नियमों से अनुशासित तथा संरक्षित परिलक्षित होती हैं। नियम अपरिवर्तनीय है, इसलिये नियम सत्य एवं नित्य सिद्ध है।
- सत्य बोध से बौद्धिक समाधान अन्यथा में समस्या है। नियम बोध के बिना सत्य बोध सम्भव नहीं है।
- अनुभवगामी विधि से सत्यबोध के बिना सत्यानुभूति अभ्युदय, सर्वतोमुखी समाधान संभव नहीं है।

  ★ **अनुभवगामी बोध (अवधारणा) :-** आत्मा अथवा अनुभव की साक्षी में स्मरण पूर्वक बुद्धि में होने वाली स्वीकृति सहज क्रियाकलाप।

  गुरु द्वारा अनुभव मूलक विधि से कराये गये अध्ययन के फलस्वरूप शिष्य में न्याय, धर्म, सत्य का साक्षात्कार पूर्वक बुद्धि में स्वीकृत होना।

  ★ **अनुभव मूलक बोध :-** सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभव और उसकी निरन्तरता के फलस्वरूप अनुभव सहज प्रभाव ही अनुभव बोध है। ऐसे अनुभव बोध के अनन्तर सहज संकल्प की निरन्तरता है। ऐसे बोध और संकल्प का साक्षात्कार ही अनुभवमूलक चिन्तन है। ऐसे चिन्तन का चित्रण और तुलन क्रिया ही अनुभव मूलक विचार है। जागृति मूलक विचार के फलस्वरूप विवेक सम्मत विज्ञान एवं विज्ञान सम्मत विवेक प्रमाणित होता है। फलस्वरूप मूल्यों का आस्वादन सहित मानव परम्परा में संबंधों की पहचान, स्वीकृति, निर्वाह, निरन्तरता ही जागृति सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा एवं प्रमाण है।

:: बोध :- बुद्धि में अनुभव बोध व चित्त में अनुभव प्रतीति है।

:: प्रतीति, आभास, भास :- सहअस्तित्व सहज अनुभव आत्मा में होता है। जिसका अनुभवमूलक विधि से बोध बुद्धि में होता है। बुद्धि और चित्त के योग में अनुभव की 'प्रतीति' होती है, यही अनुभव का चिन्तन है। चित्त और वृत्ति के योग में अनुभव का 'आभास' होता है, जो स्वयं न्याय, धर्म, सत्य रूप में तुलन क्रिया है। वृत्ति और मन के योग में अनुभव का 'भास' होता है। जो मूल्यों का आस्वादन और संबंधों का चयन के रूप में प्रमाणित हो जाता है।

- जब तक 'जीवन' भ्रमित रहता है अथवा मानव भ्रमित रहता है, परंपरा में आत्मबोध रहित बुद्धि को अहंकार नाम दिया गया। भ्रम का अस्तित्व नहीं है। इससे स्पष्ट है कि भ्रम मानव के द्वारा किसी भय प्रलोभनवश स्वीकार की गई मान्याताएँ हैं। मान्यताएँ (भ्रम) चित्त में होने वाले चित्रण तक ही सीमित हैं। अत: बुद्धि भ्रमित नहीं होती। बुद्धि चुप रहती है। अध्ययन, बोध, अनुभव विधि से ही बुद्धि जागृत होती है।
- अहंकार एवं भ्रम यह दोनों सत्यता के प्रति अनर्हता के द्योतक हैं।
- सत्य-बोध अध्ययन सहज अंतिम उपलब्धि है तथा अनुभव स्वभाव है।
- सत्यबोध के बिना सत्यानुभूति तथा सत्यानुभूति के बिना विश्राम नहीं है।
- सत्य, मात्र सत्ता में सम्पृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति ही है। यही सह-अस्तित्व रूपी शाश्वत् सत्य है।
- सत्यानुभूति से अतिसंतृप्ति (परमानंद), सत्य बोध से तृप्ति (आंनद एवं समाधान), सत्यपूर्ण व्यवहार (मानवीयतापूर्ण व्यवहार) से एकसूत्रता (समाधान एवं सहअस्तित्व) की अनुभूति और उपलब्धि है।

:: **अतिसंतृप्त या परमानंद :-** आत्मा जब सहअस्तित्व में अनुभूत होती है, तब इसके नित्य प्रभाव को परमानन्द संज्ञा है।

- जब आत्मा की क्षमता, योग्यता और पात्रता व्यापकता की अनुभूति करने योग्य सिद्ध हो जाती है उसी समय से सत्य की अविरत अनुभूति बनी रहती है।
- सहअस्तित्व ही अनुभव में, से, के लिए वस्तु है।

:: आनंद :- सत्यानुभूत आत्मा का बुद्धि पर जो प्रभाव है वह आप्लावन है, यही आनंद है।

:: चिदानंद (संतोष) :- सत्यानुभूत आत्मा का चित्त पर जो प्रभाव पड़ता है। इसे आह्लाद या चिदानंद संज्ञा है।

:: शांति :- सत्यानुभूत आत्मा का वृत्ति पर जो प्रभाव पड़ता है, इसे उत्साह या शांति संज्ञा है।

:: सुख :- सत्यानुभूत आत्मा का मन पर जो प्रभाव पड़ता है इसे उल्लास या सुख संज्ञा है।

- मानव के लिये एकसूत्रता ही व्यवहारिक, समाधानकारक, संतुलनकारी तथा (सर्वोत्तम सुख) स्वर्गमय है।

  :: संतुलन :- नैतिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों का अतिरेक न होने देना ही संतुलन है।

- न्याय, धर्म एवं सत्यपूर्ण व्यवहार ही एकसूत्रता का सूत्र है।
- परधन, परनारी/परपुरुष, परपीड़ा से मुक्त व्यवहार तथा स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष तथा दया पूर्ण कार्य-व्यवहार में जो निष्ठा है यही समस्त व्यवहार एक से अनन्त तक न्याय पूर्ण व्यवहार है।
- जो आहार, विहार और व्यवहार (कायिक, वाचिक, और मानसिक) संग्रह, द्वेष, अभिमान, अज्ञान एवं भय से मुक्त तथा असंग्रह, स्नेह, सरलता, विद्या (विज्ञान एवं विवेक) और निर्भयता युक्त हो वह ही न्याय और धर्म की एकसूत्रता है। अन्यथा में न्याय और धर्म तथा सत्य की विश्रृंखलता है। भ्रमवश व्यक्तिवाद एवम् समुदायवाद है।
- धीरता, वीरता, उदारता सहित व्यवहार ही न्याय, धर्म, सत्य की एकसूत्रता है।

  ★ एकसूत्रता का अर्थ है, परस्पर जागृति के लिये पूरक तथा सहायक हो जाना।

  ★ उपरिवर्णित एकसूत्रता के अपेक्षाकृत अध्ययन के आधार पर मानव अपने ह्रास एवं जागृति के कारण भ्रांत, भ्रान्ताभ्रान्त तथा निर्भ्रान्त अवस्था में परिलक्षित होना समीचीन है।

- निर्भ्रान्त मानव से ही एकसूत्रता सफल है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि निर्भ्रान्त मानव बनने के लिए सामाजिकता की परमावश्यकता है।
- विवेक एवं विज्ञान के संतुलित अध्ययन तथा व्यवस्था के अभाव में मानव में एकसूत्रता नहीं पाई जाती है।

:: भौतिक रासायनिक प्रयोगों के अध्ययन को भौतिक विज्ञान संज्ञा एवं बौद्धिक अध्ययन को विवेक संज्ञा है। विवेक पूर्वक लक्ष्य का निर्धारण होता है तथा विज्ञान द्वारा लक्ष्य प्राप्ति के लिए दिशा का निर्धारण होता है।

- बौद्धिक अध्ययन की पूर्णता से ही व्यापकता का बोध है ।

- भौतिक समृद्धि के लिए भौतिकीय अध्ययन एवं कर्माभ्यास आवश्यक है, जो कि उपयोग और सदुपयोग दोनों में प्रयुक्त है। साथ ही समस्त अध्ययन कर्म आवश्यकता की पूर्ति हेतु उत्पादन, सदुपयोग क्रियाएँ जागृत बुद्धि के अभाव में सिद्ध नहीं है। अत: हम मानव बौद्धिक अध्ययन हेतु बाध्य हैं।

- अध्ययन के मूल में जड़-चैतन्य पक्ष का तथा जड़-चैतन्य पक्ष के मूल में ह्रास एवं विकास का; ह्रास एवं विकास के मूल में श्रम, गति व परिणाम का; विकास के अर्थ में परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गन्तव्य; श्रम, गति व परिणाम के मूल में इकाईत्व का, इकाईत्व के मूल में साम्य रूप से प्राप्त ऊर्जा रूपी सत्ता में अनुभव करने वाली विश्रामस्थ जीवन इकाई का अध्ययन आवश्यक है।

- प्रत्येक अवस्था के परमाणु क्रियाशील हैं। इन सबको सम्यक रूप से प्राप्त सत्ता शून्य, व्यापक ही है।

- अनंत इकाईयाँ व्यापक वस्तु में प्रेरणा पाते हुए क्रियाशील हैं, मानव व्यापक वस्तु में प्रेरणा पाते हुए अनुभव के लिए प्यासा है । अनुभव हेतु अर्हता के अभाव में ही इसके योग्य क्षमता योग्यता पात्रता के विकास के लिए मानव श्रमशील है अथवा श्रम में व्यस्त है।

- ज्ञान अनुभूति के बिना मानव में विश्राम नहीं है, इसीलिये जागृति का अभाव नहीं है क्योंकि श्रम का क्षोभ ही विश्राम की तृषा है।

- व्यवसाय, प्रयोग, व्यवहार, उपयोग व सदुपयोग की क्रिया, प्रक्रिया, पद्धति व उपलब्धियाँ प्रधानत: विवेक सम्मत विज्ञान के अध्ययन पर निर्भर हैं।

- अनुभव, प्रमाण, बोध की संप्रेषणा मेधसतंत्र के माध्यम से होता है । यह मानव परंपरा में ही होता है ।

- जागृत मानव एवं मनोवेग के बराबर में उपलब्धि मानवीय परंपरा है ।

  ★ श्रम, गति एवं परिणाम परस्पर निम्नानुसार परिलक्षित हैं - गति एवं परिणाम के

फलन में उपलब्धि श्रम है। श्रम एवं गति के फलन में उपलब्धि परिणाम है। परिणाम एवं श्रम के फलन में उपलब्धि गति है।

★ पूर्व में वर्णन किया जा चुका है कि विकसित इकाई में अविकसित और समान इकाई को पहचानने व समझने की प्रवृत्ति है। उसी के तारतम्य में यह परिलक्षित होता है कि ज्ञानावस्था की एक सामान्य इकाई ने जीवावस्था की अनेकानेक इकाईयों का उपयोग, सदुपयोग व भ्रमवश दुरूपयोग भी किया है। इसी क्रम में जीवावस्था की एक सामान्य इकाई प्राणावस्था की अनेकानेक तथा प्राणावस्था की एक सामान्य इकाई पदार्थवस्था की अनेकानेक इकाईयों के लिए पूरक होते हैं। जागृति के क्रम में प्राप्त क्षमता, योग्यता एवं पात्रता के आधार पर भी उक्त सिद्धांत ही परिलक्षित होता है।

★ ज्ञानावस्था की एक निर्भ्रान्त इकाई अनेक भ्रान्ताभ्रान्त तथा भ्रान्त इकाईयों के लिए अनुसरण योग्य तथा समाधान की ओर प्रेरक सिद्ध हुई है।

- पदार्थावस्था में अस्तित्व यथास्थिति में संतुलन क्रिया; प्राणावस्था में अस्तित्व एवं पुष्टि और यथास्थिति में संतुलन क्रिया; जीवावस्था में अस्तित्व, पुष्टि तथा जीने की आशा सहित उपभोग प्रवृत्ति और यथास्थिति में संतुलन क्रिया; ज्ञानावस्था में अस्तित्व, पुष्टि, जागृति पूर्वक जीने की आशा सहित समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करने के रूप में संतुलन क्रिया अध्ययन के लिए संपूर्ण वस्तु है।
- जागृति के मूल में सिद्धांत यह है कि 'मानव' सही में एक है तथा संघर्ष के मूल में कारण मानव गलती में अनेक है।
- यदि उपरोक्त सिद्धांत हृदयंगम हो जाये तो विश्व में सामाजिकता के लिए उपयुक्त वातावरण स्वयमेव उपस्थित हो जाये।
- मानव को पूर्ण सुखी (निर्भ्रम) होने का प्रमाण ही बौद्धिक समाधान और भौतिक समृद्धि सहज प्रमाण है।
- भौतिक समृद्धि 'आवश्यकता से अधिक उत्पादन' की नीति आचरित करने से ही सिद्ध होती है। पुन: सदुपयोगात्मक आचरण से ही जागृति प्रमाणित हुआ है अन्यथा ह्रास अवश्यम्भावी है।
- बौद्धिक समाधान हेतु व्यवहारिक सुगमता, सामाजिकता और मानवीयता से संपन्न अध्ययन की व्यवस्था चाहिये।

:: व्यवहारिक सुगमता = न्यायसम्मत नीति संपन्न आचरण ।

● बौद्धिक समाधान के लिए व्यवहारिक एकसूत्रता अनिवार्य है। एकसूत्रता अपने में ज्ञान-विज्ञान-विवेक में संगीत है अथवा पूरकता है।

● वैचारिक एवं व्यवहारिक संतुलन के लिए मानवीयता की सुरक्षा तथा संरक्षण की नीति एवं रीति आवश्यक है।

:: सुरक्षा :- जागृति सहज यथा स्थिति को बनाये रखना सुरक्षा है।

★ जागृत मानव परंपरा में मानवीयता ही यथा स्थिति है । मानवीयता की सुरक्षा में संस्कृति, सभ्यता, विधि (मानवीय आचार संहिता) एवं व्यवस्था चारों परस्पर पूरक तथ्य हैं। इन चारों पक्ष का अध्ययन पूर्ण हुए बिना मानवीयता का संरक्षण संभव नहीं है, क्योंकि गलती एवं अपराध प्रवृत्ति व कृत्य से अमानवीयता उजागर होती है। मानवीयता से पूर्ण होने के पूर्व मानव अमानवीयता के स्तर में अवस्थित है ही।

★ मानवीयता का अध्ययन अपेक्षाकृत रीति से तीन प्रकार से वर्णित किया जा चुका है, वह है- मानवीय स्वभाव, मानवीय दृष्टि एवं मानवीय विषय। इनके स्थापन, पोषण एवं वर्धन हेतु मानव को प्रयासरत रहना ही होगा।

★ मानवीयतापूर्ण समाज या व्यवस्था द्वारा, प्रत्येक संबंध एवं संपर्क का निर्वाह करते हुए, मानवीयता के संरक्षण के लिये किए गए समस्त अध्ययनात्मक प्रयास की संस्कार संज्ञा है तथा इसके आचरण, प्रचार और प्रदर्शन-पक्ष की संस्कृति संज्ञा है ।

● संस्कृति का पोषण सभ्यता से, सभ्यता का पोषण विधि (मानवीय आचार संहिता) से, विधि का पोषण व्यवस्था से, आचरण का पोषण संस्कृति से है, जो अन्योन्याश्रित व संबंधित है।

● मानव समाज के गठन का मूल उद्देश्य भय मुक्त होना तथा जागृत होना रहना है।

● मानव के लिए समस्त भय के तीन ही कारण परिलक्षित होते हैं :-

(1) प्राकृतिक भय

(2) पाशविक भय

(3) मानव में निहित अमानवीयता का भय ।

- विकास व ह्रास भेद से अवस्था, अवस्था भेद से आशा, आशा भेद से आकर्षण-प्रति आकर्षण, आकर्षण-प्रत्याकर्षण भेद से आसक्ति, आसक्ति भेद से विवशता, विवशता भेद से संवेग, संवेग भेद से कर्म, कर्म भेद से फल, फल भेद से समस्या एवं समाधान, समस्या एवं समाधान भेद से ही ह्रास-विकास-जागृति सहज गतियाँ हैं, जिससे मानवीयता, अमानवीयता एवं अतिमानवीयता का प्रादुर्भाव प्रमाण है।
- मानव की जागृति बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि के लिए ही है ।
- बौद्धिक समाधान तथा भौतिक समृद्धि की पुष्टि के लिए स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण भेद से दर्शन है।
- शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध की जानकारी को स्थूल मन, वृत्ति, चित्त एवं सापेक्ष शक्तियों की जानकारी को सूक्ष्म समझ और निरपेक्ष शक्ति एवं उसको अनुभव करने वाली आत्मा और बोध करने वाली बुद्धि की समझ को कारणात्मक समझ की संज्ञा है।
- संपूर्ण इकाईयों की अभिव्यक्तियाँ सत्ता में सम्पृक्त क्रिया के रूप में ही है तथा समस्त क्रियाएँ रूप और शब्द के भेद से है। यह समस्त क्रियाएँ मानव में स्फुरण, प्रेरणा, क्रांति, संवेग, आवेग तथा प्रयोग के रूप में परिलक्षित हैं।
- **रूप क्रिया का तात्पर्य :-** हर इकाई में निहित गुण, स्वभाव, धर्म से है। शब्द क्रिया का तात्पर्य-रूप क्रिया और उसमें निहित अर्थ को निर्देशित करने के रूप में है।

:: **निर्देशित करने का तात्पर्य :-** परस्परता में संप्रेषणा समझना-समझाना करना और संप्रेषित होना। यही शब्द क्रिया की सार्थकता है।

:: स्फुरण :- जागृति की ओर प्राप्त प्रेरणा की स्फुरण संज्ञा है।

:: प्रेरणा :- मिलन के अनंतर उभय सुकृति (जागृति) की ओर गति की प्रेरणा संज्ञा है।

★ उभय सुकृति :- गुरुमूल्यन एवं दीर्घ-परिणाम या अपरिणामता और जागृति की ओर गति ।

:: प्रतिक्रांति :- मिलन के अनंतर उभय विकृति (ह्रास) की ओर गति की प्रतिक्रांति संज्ञा है।

★ उभय विकृति :-अवमूल्यन एवं परिणाम या शीघ्र परिणाम एवं ह्रास की ओर गति ।

:: संवेग :- संयोग से प्राप्त वेग की संवेग संज्ञा है।

:: आवेग :- आवश्यकतानुसार प्राप्त वेग की आवेग संज्ञा है।

:: प्रयोग :- प्रयासपूर्वक प्राप्त वेग की प्रयोग संज्ञा है।

★ क्रिया को निर्देशित करने के लिये प्रयुक्त अक्षर या अक्षर समूह को **'शब्द'**, शब्द के अर्थ को व्यक्त करने हेतु प्रयुक्त शब्द या शब्द समूह को **'परिभाषा'** तथा परिभाषा सहज मौलिकता ही **'भाव'** है। अस्तित्व में भाव वस्तु के रूप में होता है। सभी भाव सहअस्तित्व में होने के रूप में है।

- शब्द केवल किसी क्रिया एवं वस्तु का नाम है, जबकि परिभाषा, शब्द एवं क्रिया की मौलिकता को स्पष्ट करती है, तत्पश्चात् भाषा का रूप धारण करती है।

- निश्चित क्रिया को निर्देश करने वाले शब्द की **सार्थक** और इसके विपरीत शब्द की **निरर्थक** संज्ञा है।

- मौलिकता का निर्णय रूप, गुण, स्वभाव तथा धर्म के निरीक्षण, परीक्षण तथा सर्वेक्षण से एवं अध्ययन के द्वारा होता है।

- आकार, आयतन एवं घनता से **'रूप'** का; सम, विषम और मध्यस्थ के भेद से **'गुण'** का; इकाई द्वारा गुण की उपयोगिता से **'स्वभाव'** का निर्णय होता है।

  ★ हर गुण की प्रयुक्ति केवल उद्भव, विभव या प्रलय में ही है। अत: हर इकाई का स्वभाव उद्भव वादी, विभव वादी या प्रलयवादी स्वभाव के प्रवृत्ति के रूप में प्रस्तुत है। यह क्रिया विकास या ह्रास के ओर ही है।

- जो जिसकी धारणा है, वह उस इकाई का धर्म है।

  ★ पदार्थावस्था का धर्म अस्तित्व; प्राणावस्था का धर्म अस्तित्व सहित पुष्टि; जीवावस्था का धर्म अस्तित्व, पुष्टि सहित जीने की आशा और ज्ञानावस्था का धर्म अस्तित्व, पुष्टि, जीने की आशा सहित सुख है।

- धारणा की अनुकूल चेष्टा को स्फुरण अथवा क्रांति तथा इसकी प्रतिकूल चेष्टा की प्रतिक्रांति संज्ञा है। स्फुरण से समाधान तथा प्रतिक्रांति से समस्या है।

- समाधान की ओर प्राप्त प्रेरणा की अनुकूल तथा समस्या की ओर प्राप्त विवशता की प्रतिकूल संज्ञा है।

- आत्मा की प्रेरणा से संपन्न संकल्प, इच्छा, विचार और आशा स्व-सापेक्ष हैं, स्फुरण है।

- चैतन्य पक्ष की एकसूत्रता के अभाव से उत्पन्न संकल्प के नाम से इच्छा, आशा एवं विचार पर-सापेक्ष है, जो प्रतिक्रांति हैं।
- स्व-सापेक्षता में विश्राम तथा पर-सापेक्षता में (जड़ पक्ष के साथ आसक्ति में) श्रम का प्रसव है।

  :: श्रम :-मानव इकाई की आशा और उपलब्धि के बीच में ऋणात्मक स्थितियाँ ही श्रम हैं तथा धनात्मक स्थितियाँ ही समाधान हैं ।

- मानव सुख धर्मी है। समाधान =सुख। समस्या =दु:ख।
- मानव द्वारा प्राप्त कर्तव्यों का, सुख के पोषणवादी रीति व नीति का पालन करना ही धर्म नीति है।
- मानव द्वारा सामाजिक एवं प्राकृतिक नियमों के अनुसार व्यवहार की ''पोषणवादी रीति'' तथा बौद्धिक नियमों के अनुसार विचार एवं आचरण की 'व्यवहार नीति' संज्ञा है।

  ★ व्यवहारिकता में रीति का पालन होते तो देखा जाता है, पर नीति का पालन होते हुये भी और नहीं होते हुए भी पाया जाता है।

- नीतिपूर्ण विचार का अभाव ही शोषण का कारण है, जो अंततोगत्वा स्व-पर दु:ख कारक होता है।
- परिवार, समाज तथा व्यवस्था दत्त भेद से कर्त्तव्य को स्वीकारने तथा इसे निष्ठा, नियम एवं सत्यतापूर्वक पालन करने पर ही मानव में विशेष प्रतिभा का विकास हर स्तर पर है अर्थात् पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यवस्था के साथ सफलताएँ इसके विपरीत स्थिति में प्राप्त प्रतिभा तथा सफलता भी निरस्त होती है।
- दूसरे का प्रभाव परस्परता की आवश्यकता तथा अवस्था पर निर्भर करता है। आवश्यकता तथा अवस्था का प्रादुर्भाव जागृति क्रम के अनुसार है।
- पदार्थ का विकास एवं उसकी अवस्था उस इकाई की गति, श्रम तथा परस्परता के दबाव पर निर्भर करती है जिससे संगठन, विघटन तथा परिणाम होता है।
- संगठन एवं विघटन भेद से रूप, रूप भेद से विकास, विकास भेद से क्षमता, क्षमता भेद से माध्यम, माध्यम भेद से अवस्था, अवस्था भेद से आवश्यकता, आवश्यकता भेद से चेष्टा, चेष्टा भेद से प्रगति, प्रगति भेद से फल-परिणाम, फल-परिणाम भेद से योग व वियोग और योग व वियोग भेद से ही संगठन एवं विघटन और समाधान एवं समस्या है।

- ❋ जीवन को जागृति के लिए माध्यम के रूप में मानव शरीर उपलब्ध है।
- ❋ चार अवस्थाओं की सृष्टि का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। इसमें पदार्थावस्था का धर्म अस्तित्व तथा ज्ञानावस्था में सुख धर्म सिद्ध हुआ है। अस्तित्व का अभाव किसी भी काल में नहीं है, ऐसा निरीक्षण, परीक्षण तथा सर्वेक्षण से सिद्ध हो चुका है। अस्तित्व की कल्पना पदार्थ के अभाव में सिद्ध नहीं होती। साथ ही पदार्थ के ससीमित होने के कारण इसकी सर्वव्यापकता भी सिद्ध नहीं होती।
- ★ सुख एक वैचारिक तथ्य है। बुद्धि के अभाव में विचार तथा ज्ञान के अभाव में बुद्धि की क्रियाशीलता सिद्ध नहीं है। सुख, सृष्टि सहज सर्वोत्कृष्ट सृजन मानव इकाई का धर्म है । जहाँ कहीं भी पदार्थ नहीं है, वहाँ मानव को ले जाने पर भी सुखधर्मिता का अभाव मानव में नहीं पाया गया। इसलिए सुख का आधार ज्ञान सम्पन्नता सार्वदेशिक सिद्ध हुआ, क्योंकि जो नहीं है, उसकी उपलब्धि संभव नहीं है। इस प्रकार ज्ञान सर्व-व्यापक सिद्ध हुआ । ज्ञान ज्ञाता द्वारा ज्ञेय सहित मानव परम्परा में प्रमाणित होता है। सर्वमानव ज्ञाता होने योग्य हैं ही।

● सहअस्तित्व में अनुभव ही पूर्ण ज्ञान है।

- ★ इस प्रकार अस्तित्व तथा ज्ञान (व्यापक) का अभाव किसी देश-काल में संभव नहीं पाया जाता है तथा ज्ञान का अभाव किसी भी देश व काल में भी नहीं पाया जाता। ज्ञान सर्वदेश काल में समीचीन है। अतः ज्ञान रहता ही है लेकिन ज्ञान का उद्‍घाटन जागृत मानव के द्वारा होता है ।

● इस रीति से पदार्थ अनादि तथा ज्ञान भी व्यापक सिद्ध है।

- ❋ उपरोक्त संदर्भ में यह स्पष्ट हो जाना आवश्यक है कि पदार्थावस्था में संगठन और विघटन की जो प्रक्रिया पाई जा रही है, वह संकेत देती है कि समूह का होना, समूह की ओर पदार्थों का आकर्षित होना, उनका घनीभूत होना इस प्रकार से आकर्षण का नियम सिद्ध है।
- ❋ ठीक इसी प्रकार प्राणावस्था में समूह के साथ-साथ पुष्टिकरण पूरकता के अर्थ में प्रक्रिया भी परिलक्षित हो रही है, यथा- एक प्राणकोशा अनेकानेक खनिज-द्रव्यों को एकत्रित कर देता है और साथ ही उनमें रचना भी सिद्ध कर देता है। इससे हमें यह प्रेरणा मिलती है कि अस्तित्व के लिए हर प्राणी अपने ढंग से पूरकता रचना एवं उपयोग में व्यस्त है तथा उसमें कुलीनता के प्रति तीव्र निष्ठा या अक्षुण्ण निष्ठा भी

सिद्ध होती है।

* अनंतर जैसे ही परमाणु विकसित होकर चैतन्य पद में संक्रमित होता है वह भारबंधन व अणु बंधन से (समूह बंधन) मुक्त हो जाता है पर तत्काल ही आशा के बंधन से युक्त हो जाता है। यह आशा मात्र जीने की ही रहती है।

* इससे ज्ञात होता है कि वर्तमान में मानव जिस समुदाय में सामाजिकता को पाना चाहता है उसके मूल में भय है ही। इसकी निवारण प्रक्रिया या आशय या प्रवृत्ति मानव में से, के लिए विकसित चेतना में संक्रमण है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मानव ज्ञान विवेक विज्ञान पूर्वक गुणों व स्वभावों के उपार्जन से अपनी मौलिकता सिद्ध करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में योजना एवं प्रक्रिया पूर्वक केवल मानवीयता, अतिमानवीयता और अमानवीयता का ही रेखाकरण सिद्ध होता है। इसके आधार पर ही सामाजिकता के सभी आयामों का अध्ययन है।

* इस प्रकार सम्पूर्ण मानव को एक जगह में पाने की तथा एक जगह में होने की इच्छा के मूल कारण में उसका 'सुखधर्मी' होना है।

* सभी मानव सुख के लिये प्रत्याशी हैं। सुख के लिये प्रयास कर रहे हैं। सर्वमानव सुख का अनुभव करना चाहते हैं। इसी केन्द्र बिन्दु के आधार पर सभी पक्षों का अध्ययन, नीति एवं व्यवहार में निष्ठान्वित होना एक आवश्यकता है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - छः
कर्म एवं फल

- संपूर्ण व्यवहार से मानव ने सुख की कामना की है।
- सर्वमानव सुख, समाधान एवं सदुपयोगिता को सिद्ध कराने वाली व्यवस्था एवं व्यवहार का समर्थन तथा अनुसरण ही सुखी होने का एकमात्र विधि है।
- प्रत्येक कर्म में कर्ता, उद्देश्य, कारण, प्रभाव और फल निहित है। प्रत्येक कर्ता के द्वारा कर्म, कर्म के लिए कारण एवं उद्देश्य, कर्म से फल एवं प्रभाव, फल एवं प्रभाव से आवश्यकता का निर्धारण सिद्ध है।

:: कर्ता :- जिस कार्य में जितना विचार पक्ष का नियोजन है, वह विचारपक्ष ही उस कार्य के कर्ता पद को स्पष्ट करता है ।

:: कर्म :- विचार पक्ष के आकार का अनुकरण करने के लिये श्रम की कर्म संज्ञा है।

:: कारण :- प्रत्येक सूक्ष्म क्रिया अर्थात् विचार के उद्‌गम के लिये प्रमुख स्पंदन ही समझदारी है । समझदारी का मूल स्पंदन सहअस्तित्व ही है। क्रिया की पृष्ठभूमि विचार ही है। क्रिया की पृष्ठभूमि ही कारण है। यही संस्कार का प्रमाण है।

:: प्रभाव :- किसी फल परिणाम को प्रकट करने के लिए पाये जाने वाले स्पष्ट प्रेरणा अथवा स्फुरण की प्रभाव संज्ञा है। हर घटना और फल परिणाम प्रेरणा और स्फुरण से ही प्रकट होता है ।

:- क्रिया की प्रतिक्रिया की प्रभाव संज्ञा है।

:: फल :-क्रिया प्रतिक्रिया के अंतिम परिणाम की फल संज्ञा है।

:: आवश्यकता :- संपर्क एवं संबंध के निर्वाह हेतु एवं उपयोग के लिये जो प्रवृत्तियाँ हैं, उनकी आवश्यकता संज्ञा है। सभी योगों में उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन निहित हैं।

- कर्त्ता द्वारा कार्य का सम्पादन आवश्यकता की पूर्ति हेतु अथवा दायित्व कर्त्तव्य के पालन हेतु किया जाता है ।
- संपूर्ण कृतियाँ ह्रास की ओर अथवा विकास की ओर ही हैं।

- कारण (क्रिया की पृष्ठभूमि) स्फुरण अथवा प्रेरणा भेद से है, जो संस्कार का रूप है।
- प्रभाव सम, विषम तथा मध्यस्थ तीन ही प्रकार के हैं, जो क्रिया-प्रतिक्रिया, फल-परिणाम के रूप में परिलक्षित होते हैं।
- फल के दो भेद हैं :- पूर्ण फल और न्यून फल। प्रत्येक क्रिया किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये ही संपन्न की जाती है। क्रिया की प्रतिक्रिया के अंतिम परिणाम में आशय की पूर्ति होने पर पूर्ण फल तथा अपूर्ति होने पर न्यून फल की संज्ञा है।
- साधक, साध्य तथा साधन समुच्चय की औचित्यता समन्वित होने पर पूर्ण फल होता है।
- मानव द्वारा मानवीयता के प्रति कर्त्तव्य-बुद्धि को अपनाये बिना जागृति, जागृति के बिना समाधान-समृद्धि, समाधान-समृद्धि के बिना मानवत्व-समत्व, मानवत्व-समत्व के बिना पूर्ण फल, पूर्ण फल के बिना परंपरा में स्फुरण या प्रेरणा और स्फुरण या प्रेरणा के बिना कर्त्तव्य बुद्धि प्राप्त नहीं होती है।
- मानवीयतापूर्ण बुद्धि द्वारा निश्चित कर्त्तव्य के परिपालन से मानव सफल एवं सुखी हुआ है।

:: कारण :-चेष्टा को आशा, विचार, इच्छा व संकल्प पूर्वक कार्य चेष्टा में प्रवृत्त करने हेतु प्राप्त पृष्ठभूमि की कारण संज्ञा है।

:: प्रभाव :-वातावरण, अध्ययन एवं अभ्यास पूर्वक पूर्ण संस्कार ही प्रभाव है।

:: फल :- संस्कार का प्रभाव ही फल है।

- मानव में अध्यास से वंशानुषंगिक शरीर संरचना तथा योग की घटना है। चैतन्य पक्ष में संस्कार मन, वृत्ति, चित्त एवं बुद्धि जागृत होने के रूप में उपलब्धि है, जो मानवीयता और अतिमानवीयता के रूप में परिलक्षित होती है। यह जागृत परंपरा की देन है।

:: अध्यास :-अध्यास का तात्पर्य प्राणावस्था में कार्यरत प्राणकोशाओं में स्पष्ट रहता है। इसका स्वरूप प्राणसूत्रों में निहित रचना विधि है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - सात
मानवीय व्यवहार

- व्यवहार के लौकिक एवं पारलौकिक दो भेद हैं।
- **लौकिक व्यवहार :-** भ्रमित मानव में कार्य-व्यवहार चार विषयों में ग्रसित रहना पाया गया है। भ्रमित कार्य-व्यवहार प्रवृत्ति ही लोक आसक्ति है।

:: **विषय चतुष्टय :-** आहार, निद्रा, भय और मैथुन।

* जागृत मानव में ऐषणा त्रय व्यवहार है। इसका तात्पर्य धरती पर व्यवस्था में भागीदारी, अनुभव मूलक विधि से जीना, आलोकित रहना, प्रकाशित रहने से है।

:: **ऐषणा त्रय :-** पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा।

- **पारलौकिक व्यवहार :-** अनुभव मूलक प्रमाण सहित जीना।

* ऐषणा मुक्त व्यवहार।

- जो जिसको लक्ष्य मानता है, वह उसको पाने के लिए प्रयासरत रहता है । मानवीय लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ही है।
- लक्ष्य भेद से प्रयास, प्रयास भेद से प्रगति, प्रगति भेद से फल, फल भेद से प्रभाव, प्रभाव भेद से अनुभव, अनुभव भेद से प्रतिभाव, प्रतिभाव भेद से स्वभाव, स्वभाव भेद से यर्थाथ, यर्थाथता ही मानव लक्ष्य सहज परंपरा है।

:: लक्ष्य :- जिसको पाना है वह लक्ष्य है। जागृति पूर्वक ही मानव लक्ष्य सुनिश्चित होता है। यह समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण है।

:: प्रयास :- लक्ष्य की उपलब्धि के लिये यत्नपूर्वक किए गए कार्य की प्रयास संज्ञा है ।

:: प्रगति :- पूर्व से भिन्न आगे गुणात्मक विकास की ओर गति को प्रगति संज्ञा है। श्रेष्ठता और गुरुमूल्य की ओर गति।

:: फल :- जिस अवधि के अनंतर क्रिया प्रणाली बदलती है, उस अवधि को फल संज्ञा है।

:: प्रभाव :- विकास के लिए जो स्वीकृति है, उसको प्रभाव संज्ञा है।

:: अनुभव :- अनुक्रम से प्राप्त समझ अथवा अनुक्रम में निहित प्रभावों की पूर्ण स्वीकृति ही अनुभव है अथवा जिसके आश्रित जो प्रभाव हो वह उस का अनुभव है।

:: अनुक्रम :- कड़ी से कड़ी अथवा सीढ़ी से सीढ़ी जुड़ी हुई विधि। सहअस्तित्व में ही अनुक्रम व अनुभव है।

:: प्रतिभाव :- अनुभव के अनंतर बोध, चिंतन के रूप में प्रमाणित करने हेतु प्रवृत्ति ही प्रतिभाव है।

:: स्वभाव :- प्रतिभाव से युक्त स्वमूल्यन की स्वभाव संज्ञा है।

:: आसक्ति :- ह्रास अथवा भ्रम की ओर होने वाली या की जाने वाली गलतियों को सही मान लेना आसक्ति है। यही अमानवीयता है।

:- ह्रास की ओर किया गया गलत मूल्यांकन ही आसक्ति है।

:: भाव :- मूल्यांकन एवं मौलिकता की भाव संज्ञा है। भाव मौलिकता है, यथा जिस अवस्था और पदों में जो अर्थ, स्वभाव और धर्म के रूप में होते हैं, वह उसकी मौलिकता है। मानव सुखधर्मी है। धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा स्वभाव है।

भाव = मौलिकता = मूल्य = जिम्मेदारी, भागीदारी = फल परिणाम = मूल्यांकन।

जबकि भ्रमित मानव में हीनता, दीनता, क्रूरता स्वभाव है । तथा आसक्ति और प्रलोभन को धर्म माने रहता है।

- लोक व लोकेश भेद से लक्ष्य, अंतरंग एवं बहिरंग भेद से यत्न, व्यष्टि एवं समष्टि भेद से प्रयास, ह्रास एवं विकास भेद से प्रगति, न्यून व पूर्ण भेद से फल, सम-विषम तथा मध्यस्थ भेद से प्रभाव, इंद्रिय एवं इंद्रियातीत भेद से अनुभव, सहज एवं असहज भेद से प्रतिभाव, विहित एवं अविहित भेद से प्रवृत्ति व आसक्ति तथा उच्च और नीच भेद से भाव की स्थिति मानव में है। जीवन ही लक्ष्य का धारक-वाहक है।

- परिणामवादी लक्ष्य को **लोक** तथा उससे मुक्त को **लोकेश;** मन, वृत्ति, चित्त एवं बुद्धि से किए गए कार्य को **अंतरंग** तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों द्वारा किए गए कार्य को **बहिरंग,** इकाईत्व को **व्यष्टि** तथा संपूर्ण को **समष्टि ,** अवनति की ओर **ह्रास**, उन्नति की ओर **विकास,** जिस प्राप्ति से वांछित आशय की पूर्ति हो उसे **पूर्णफल** तथा अन्यथा में **न्यून फल,** उद्भव वादी प्रभाव को **सम,** विभववादी प्रभाव को **मध्यस्थ** तथा

प्रलयवादी प्रभाव को **विषम;** शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों द्वारा किए गए व्यवहार मात्र से प्राप्त जानकारी को **इन्द्रियानुभव** तथा मन, वृत्ति, चित्त तथा बुद्धि द्वारा प्राप्त जानकारी को **अतीन्द्रियानुभव** या **इन्द्रियातीत अनुभव,** यथार्थ की ओर जो प्रेरणा है उसे **सहज प्रतिभाव** तथा उसके विपरीत में **असहज प्रतिभाव;** न्याय, धर्म तथा सत्य के प्रति जो निष्ठा है उसे **विहित स्वीकृति** तथा उसके विपरीत में **अविहित आसक्ति,** समाधानवादी भाव को **उच्च भाव** तथा समस्यावादी प्रवृत्ति को **नीच भाव** की संज्ञा है।

- अध्ययन विधि से सहअस्तित्व रूपी सत्य सहज मन में पुष्टि मनन (स्वीकारने के रूप में), वृत्ति में पुष्टि तुलन (गुणात्मक विधि से), चित्त में पुष्टि साक्षात्कार, बुद्धि में पुष्टि बोध संज्ञा है।

- अज्ञान के मूल में अहंकार (अबोधता) तथा ज्ञान के मूल में आत्मबोध तथा सहअस्तित्व रूपी परम सत्यबोध को पाया गया है।

- स्फुरण, प्रेरणा तथा क्रांति के भेद से **मनन,** संतुलन अथवा असंतुलन के भेद से **तुलन,** अर्थपूर्ण अथवा आरोप के भेद से **चित्रण** तथा अनुभवमूलक विधि से सत्य बोध है।

  :: संतुलन पूर्वक (श्रेय) प्राप्त सम्वेग को स्फुरण एवं प्रेरणा और असंतुलन पूर्वक (प्रेय) प्राप्त सम्वेग की प्रतिक्रांति संज्ञा है।

- न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्य दृष्टिकोण से की गयी तुलना को **संतुलित** तथा प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ दृष्टिकोण से की गयी तुलना को **असंतुलित वृत्ति** संज्ञा दी जाती है।

- न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्य दृष्टिकोण से किए गए चित्रण को **यथार्थ** तथा प्रियाप्रिय, हिताहित , लाभालाभ के दृष्टिकोण से किए गए चित्रण को **अयथार्थ** चित्रण संज्ञा है।

- स्वस्वरूप (आत्मा) की साक्षी में किए गए बोध की **सत्यबोध** तथा इसके विपरीत में आरोपित मानना ही भ्रम है जो असत्य है। आत्मबोध रहित बुद्धि की अहंकार संज्ञा है। भ्रमित (आरोपित) चित्रण की अभिमान संज्ञा है। जिस प्रकार असत्य का अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार अहंकार का भी अस्तित्व नहीं है।

- कर्त्तव्य की ओर अग्रेषित संवेग को **स्फुरण** तथा प्रेरणा एवं विवशता पूर्वक प्राप्त बौद्धिक प्रयास एवं शारीरिक चेष्टा को **प्रतिक्रान्ति** की संज्ञा है। श्रेष्ठता की ओर क्रांति और नेष्ठता की ओर प्रतिक्रांति संज्ञा है।

- समस्या रहित अथवा समस्या के समाधान का अनुभव करने को **संतुलन** और समस्या सहित अथवा समस्या को उत्पन्न करने वाली क्रिया को प्रतिक्रान्ति या **असंतुलन** के नाम से अंकित किया गया है।
- समस्या बौद्धिक तथ्य है तथा विवशता भौतिक तथ्य है।
- सर्वांगीण दर्शन सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को ही **यथार्थ ज्ञान** संज्ञा है और उसके विपरीत में आरोप संज्ञा है।
- अपरिणामवादी सत्ता सहज सहअस्तित्व की पहचान के सहित अनुभव सहज समझदारी को **सत्यबोध** और उसके विपरीत को भ्रम संज्ञा है।
- तीव्र सम्वेग वह है जो क्रिया के रूप में अवतरित होता है।
- सम्वेग का दबाव, उसकी गति एवम् पिपासा का निर्धारण इच्छा तथा प्रयोजन से नियंत्रित है।
- मानव की परस्परता में जो सम्पर्क एवं सम्बन्ध है वह निर्वाह के लिए, विकास (जागृति) के लिए, तथा भोग के भेद से है। जागृति के लिए जो सम्पर्क एवम् सम्बन्ध का प्रयास है, वह सामाजिकता के लिए है। निर्वाह के लिए जो सम्पर्क एवम् सम्बन्ध का प्रयास है, वह कर्त्तव्य पालन करते हुए वर्तमान को संतुलित रखने के लिए और भोगेच्छा से जो सम्पर्क एवम् सम्बन्ध का प्रयास है, वह मात्र इन्द्रिय लिप्सा एवम् शोषण के कारण है। जिससे असंतुलन और समस्या वश पीड़ा होता है।
- जागृति के लिये किये गये व्यवहार को **पुरुषार्थ,** निर्वाह के लिये किये गये प्रयास को **कर्त्तव्य** तथा भोग के लिये किये गये व्यवहार **को विवशता** के नाम से जाना गया है।
- कर्त्तव्य व आवश्यकता का भाव मानव में है।

  :: कर्त्तव्य :- संबंधों की पहचान सहित निर्वाह क्रिया, जिससे निष्ठा का बोध होता है।

  :: दायित्व :- संबंधों की पहचान सहित मूल्यों का निर्वाह सहित मूल्यांकन क्रिया जिससे तृप्ति का बोध होता है।
- कर्त्तव्य की पूर्ति है, भोगरूपी आवश्यकता की पूर्ति नहीं है।
- कर्त्तव्य की पूर्ति इसलिये सम्भव है कि वह निश्चित व सीमित है।

- भोगरूपी आवश्यकताओं (सुविधा-संग्रह) की पूर्ति इसलिये सम्भव नहीं है कि वह अनिश्चित एवम् असीमित है।
- यही कारण है कि कर्त्तव्यवादी प्रगति शान्ति की ओर तथा भोगवादी प्रवृत्ति अशान्ति की ओर उन्मुख है।
- समस्त कर्त्तव्य सम्बन्ध एवम् सम्पर्क की सीमा तक ही है।
- सम्वेग से ही चयन क्रिया है जो संग्रहवादी, पोषणवादी, दोहनवादी, त्यागवादी या शोषणवादी है। यह समस्त क्रियाएँ आशा की प्रक्रिया में है।
- कर्त्तव्य की पूर्ति के बिना मानव का जीवन सफल नहीं है।
- भौतिक समृद्धि तथा बौद्धिक समाधान से परिपूर्ण जीवन ही सफल जीवन है।
- आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा सहअस्तित्व में ही भौतिक समृद्धि है तथा अस्तित्व में अनुभव स्वयं निर्भ्रमता एवं बौद्धिक समाधान है।
- विज्ञान एवम् विवेक का समन्वित अध्ययन तथा कर्माभ्यास ही निर्भ्रमता सहज प्रमाण।
- मानवीयतापूर्ण जीवन में आवश्यकताएँ सीमित एवम् मर्यादित हो जाती हैं। अतिमानवीयतापूर्ण जीवन में तो आवश्यकताएँ और भी संयत हो जाती है।
- जो जितना भ्रम और भय का पात्र है, वह साधनों को सुखी होने के लिये उतना ही महत्वपूर्ण मानता है। जैसे भय त्रस्त मानव आयुध एवम् आश्रय पर, लोभ त्रस्त मानव संग्रह पर , द्वेष त्रस्त मानव नाश पर, अज्ञानी दूसरों को दोष देने पर, अभिमान त्रस्त दूसरों की उपेक्षा एवम् घृणा करने पर ही सुखी होने का प्रयास करता है, जबकि स्व-पात्रता ही सुखी एवम् दुःखी होने का कारण है।
- वातावरण एवम् अध्ययन सुपात्र अथवा कुपात्र बनाने में सहायक हैं।
- मानवीयता पूर्ण व्यवहार, उत्पादन, अध्ययन, कार्य व नीतियों में पारंगत होने पर ही मानव सुखी होता है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - आठ

पद एवं पदातीत

- पद एवम् पदातीत के भेद से अर्थ है।
- पदों का वर्गीकरण, अपेक्षाकृत ढंग से, रूप-गुण, स्वभाव-धर्म की अवस्था एवम् अनुपात के अध्ययन से सिद्ध है, इसलिए पद अनेक और पदातीत व्यापक है।
- पद का निर्णय रूप के अनुपात, उसकी अवस्था (स्वभाव) तथा उसमें निहित बल और शक्ति से होता है। यही स्थिति-गति है ।
- जो किसी पद में नहीं हो या सीमित न हो, जिसमें ही सभी पद निहित हों या जिसमें उनका समावेश भी हो, उसे **पदातीत** की संज्ञा है। यह व्यापक सत्ता ही है।
- आकार, आयतन और घनत्व के भेद से **रूप** का; नाद, गति, भाषा, परिभाषा के भेद से शब्द का तथा उद्‌भव, विभव एवम् प्रलय के भेद से गुण की अवस्था एवम् अनुपात है।
- नियम एवम् प्रक्रियापूर्वक सिद्ध सिद्धि की **'अर्थ'** संज्ञा है, आचरण ही नियम है।
- सर्वत्र प्राप्त साम्य सत्ता में अनुभूति (ज्ञान) की **'पदातीत अर्थ'** संज्ञा है, क्योंकि उसके अस्तित्व का अनुभव है। यह साम्य सत्ता सम्पूर्ण क्रिया के मूल रूप में है और मानव के द्वारा ज्ञान के रूप में प्राप्त है और स्पष्ट है।
- सर्वत्र एक ही प्रकार से स्थित होने के कारण साम्य सत्ता की ही व्यापक संज्ञा है। इसलिये पदातीत व्यापक और पद अनेक एवं सीमित है, क्योंकि इकाईयाँ अनन्त है।
- हर इकाई अपने ह्रास या विकास पूर्वक क्षमता, योग्यता, पात्रता के अनुसार अपने-अपने पद में अवस्थित है।
- पद का निर्णय इकाई के गठन, प्रक्रिया एवम् आचरण से होता है ।
- पद भेद से अर्थ भेद, अर्थ भेद से आचरण और व्यवहार भेद, आचरण और व्यवहार भेद से प्रक्रिया भेद तथा प्रक्रिया भेद से अर्थ भेद है।
- छः ओर से सीमित पिण्ड की **इकाई** तथा ऐसी ही अनेक इकाई अथवा इकाईयों के समूह को **अनन्त** एवम् असीम स्थिति को **निरपेक्ष ऊर्जा** संज्ञा है, यही व्यापक सत्ता है। व्यापक निरन्तर मानव के द्वारा आनन्द के अर्थ में अनुभूत है।

- सीमित अर्थ से मात्र सुख और दुःख भासता है। सुख और दुःख का मन वृत्ति में भास, वृत्ति चित्त में आभास होता है। सुख की निरन्तरता में चित्त बुद्धि में प्रतीति, आत्मा में अनुभूति होना पाया जाता है, जिसकी निरन्तरता होती है।

- इच्छानुसार द्रवित होने वाले और चेष्टा करने वाले अंग की **इन्द्रिय** संज्ञा है, जिनको शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंधेन्द्रियों के नाम से जाना जाता है।

- परिणामवादी फल की ओर की गई चेष्टा या प्रयास को **'अपूर्ण प्रयास'** एवम् अपरिणामवादी फल की ओर अर्थात् क्रिया पूर्णता और आचरणपूर्णता के अर्थ में की गई चेष्टा या प्रयास को **'पूर्ण प्रयास'** संज्ञा है।

- नित्य एवम् शाश्वत् सत्ता में सत्य प्रतीति, सत्य प्रतीति से सत्य बोध व अनुभूति, सत्य बोध व अनुभूति से संतुलन, संतुलन से स्फुरण, स्फुरण से जागृति, जागृति से समाधान, समाधान से व्यवहार शुद्धि, व्यवहार शुद्धि से सहअस्तित्व, सहअस्तित्व से स्वर्गीयता, स्वर्गीयता से निर्विरोध भाव तथा निर्विरोध भाव से नित्य एवम् शाश्वत् सत्य बोध है।

- आवश्यकता भेद से ही लक्ष्य भेद है, जिसमें (चैतन्य पक्ष की जागृति) पारलौकिक लक्ष्य से मानव जीवन सफल होता है, अन्यथा असफल ही है। विकृत विचार से मूलतः व्यवहारिक व्यवधान तथा सुसंस्कृत संस्कार से व्यवहार सुगमता पाई जाती है ।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - नौ
दर्शन-दृश्य-दृष्टि

- दर्शन के लिये दर्शक, दृश्य और दृष्टि का रहना अनिवार्य है।
- दर्शक की क्षमता, दृष्टि के परिमार्जन के योग से दृश्य के साथ दर्शन क्रिया है। जो जैसा है, उसको वैसा ही समझने की क्षमता, उसे वैसा ही देखने की प्रक्रिया के योग से दर्शन क्रिया है।
- दर्शन के भेद से लक्ष्य भेद है, क्योंकि जो जैसा जिसका दर्शन करता है, उसके अनुसार उसके साथ जो अर्थ है, उसको लक्ष्य स्वीकारता है। यह मूल्यांकन क्रिया भ्रम और जागृति को स्पष्ट करता है।
- वातावरण, अध्ययन, पूर्व संस्कारों के अनुबन्धानुक्रम विधि से दर्शन क्षमता, योग्यता एवम् पात्रता है। क्षमता, योग्यता एवम् पात्रता के अनुसार ही जागृति एवम् ह्रास की ओर गति है।
- दृष्टि द्वारा प्राप्त समझ (व्यंजना पूर्वक/स्वीकृति) को दर्शन संज्ञा है।

  :: दर्शन :-न्याय-धर्म-सत्य सहज दृष्टि द्वारा की गई क्रिया-प्रक्रिया की दर्शन संज्ञा है।
- प्राकृतिक एवम् मानवकृत भेद से वातावरण है।
- दर्शन, विचार, शास्त्र, इतिहास एवम् काव्य भेद से अध्ययन है।

  :: शास्त्र :- निर्दिष्ट लक्ष्योन्मुख सिद्धान्त-प्रक्रिया एवम् नियम तथा वस्तुस्थिति का निर्देशपूर्वक बोध कराने वाले शब्द व्यूह की शास्त्र संज्ञा है।

  :: काव्य :- जागृत मानव के भाव, विचार एवम् कल्पना-शीलता जो मानव लक्ष्य के अर्थ में हो, को दूसरों तक प्रसारित करने हेतु प्रयुक्त शब्द व्यूह की काव्य संज्ञा है।

  :: इतिहास :- विगत की मानवीयता की ओर कृतियों एवम् घटनाओं के श्रृंङ्खलाबद्ध क्रम के स्मरणार्थ प्रस्तुत भाषा या शब्द राशि की इतिहास संज्ञा है।
- वंशानुगत अध्यास, विधि विहित तथा विधि हीन भेद से प्रयोग है।
- रचना विरचना पर्यन्त जड़ **प्रकृति** संज्ञा है एवम् वर्तमान से पहले जिसका निर्माण हो

चुका है, उसका अध्ययन तथा भविष्य में जिसके निर्माण की सम्भावना है, उसका अनुमान मानव ने किया है। सम्पूर्ण रचना को जड़ प्रकृति संज्ञा है।

- नियम, प्रक्रिया और फल का संयुक्त प्रमाण ही **सिद्धान्त** है, क्योंकि समाधान पूर्वक नियम एवम् प्रक्रिया के अभाव में किसी भी क्रिया एवं फल का दर्शन सिद्ध नहीं है। क्रिया के नियम एवम् प्रक्रिया प्रयोजन के बोध से ही वैचारिक परिमार्जन अर्थात् समाधान सम्भव हो सका है।

  :: भूगोल :- मानव और मानवीयता के अर्थ में पृथ्वी का सर्वेक्षण, निरीक्षणपूर्वक मानचित्र सहित रचना (ज्ञान पाने) के लिये सम्पादित अध्ययन की भूगोल संज्ञा है।

  :: सुसंस्कृत संस्कार :- विधि मानव चेतना, देव चेतना एवम् दिव्य चेतना क्रम में है। विधि में जो विश्वास है, उसकी सुसंस्कृत सुसंस्कार संज्ञा है।

- मानवीयतापूर्ण प्रवृत्ति एवम् व्यवहार की **न्याय** तथा अमानवीय प्रवृत्ति एवम् व्यवहार की **अन्याय** संज्ञा है।

- यथार्थ बोध के पश्चात उसके प्रति उत्पन्न दृढ़ता की **विश्वास** संज्ञा है।

  :: न्यायपूर्वक की गई कृति की **सुकृति** तथा अन्यायपूर्वक की गई कृति की **दुष्कृति** संज्ञा है।

- मानवीयता के लिये आवश्यक नियम ही **न्याय** है, जिससे ही मानवीयता का संरक्षण एवम् संवर्धन सिद्ध है।

- मानव के व्यवहार का नियंत्रण न्याय से, वैचारिक संयमता धर्म से तथा अनुभव मात्र सत्य से सम्पन्न है।

- नियम से ही नियंत्रण है। स्वीकारने योग्य लक्ष्य से ही **धारणा** है एवम् जिसमें परिणाम नहीं है ही सत्य है।

- मानव ने स्वीकारने योग्य तथ्य एवम् लक्ष्य सुख को जन्म से ही स्वीकार कर लिया है।

- स्थूल व सूक्ष्म भेद से ही विकृति अथवा सुकृति है। विज्ञान व विवेक के अध्ययन एवम् प्रयोग से विकास (जागृति) तथा अज्ञान एवं अविवेक से ही ह्रास है।

- जागृति व ह्रास भेद से ही मानव का मनाकार भेद होता है।

- आसक्ति एवम् यथार्थ (अनासक्ति) भेद से ही मानव की मनः स्वस्थता की आशाएँ हैं।

- आशाएँ भ्रम मुक्ति पूर्वक सार्वभौम व्यवस्था अर्थ एवम् काम के रूप में प्रलोभन, प्रत्याशा भेद से दर्शन (शास्त्र); स्वीकृत व अनुकरण भेद से काव्य; जिस कार्य, विचार व व्यवहार से क्लेशोदय हो वह निषेध तथा जिससे सुखोदय होता है, यही विधि के रूप में स्वीकारी जाती है।
- प्राकृतिक एवम् कृत्रिम वातावरण मानव के लिए अनुकूल या प्रतिकूल होता है।
- मानव में आशाएँ अमानवीय, मानवीय व अतिमानवीय अवस्था भेद से हैं।
- प्रवृत्ति व निवृत्ति (बंधन एवम् मोक्ष के स्पष्टीकरण) भेद से शास्त्र, विहिताविहित भेद से आशाएँ, विचार, इच्छा एवम् ऋतम्भरा है, जिसकी विवेचना, अध्ययन व प्रयोग करने का अवकाश एवम् अवसर केवल मानव में है।
- जड़ वस्तु में मात्र स्थिति-गति होना रहना पाया जाता है।
- समस्त जड़ क्रिया में परमाणुओं को क्रियाशील रहना पाया जाता है। परमाणुएं समूह के रूप में अथवा संगठित रूप में क्रियाशील मध्यांश तथा आश्रित अंशों सहित क्रिया के रूप में परिलक्षित होता है। इसलिए ज्ञात होता है कि जड़ पदार्थ में क्रियाशीलता स्वतंत्र है।
- जब एक परमाणु विकासपूर्वक चैतन्य हो जाता है, उसी समय से जीने की आशा बन्धन स्वरूप पाई जाती है। यह इससे सिद्ध होता है कि हर **जीव** जीना चाहता है।
- मानव बुद्धिजीवी, विचारशील होने के कारण, विचार, इच्छा, अहंकार अथवा संकल्प का प्रयोग वृत्ति, चित्त तथा बुद्धि द्वारा करता है।
- वृत्ति का बंधन विचार का बन्धन है, जो स्वविचार को श्रेष्ठ मानने से है तथा इससे अमानवीय विचार का प्रसव होता है क्योंकि मानव कल्पनाशील है।
- न्याय पूर्ण विचार से आशा बन्धन एवं विचार बन्धन से मुक्ति होती है।
- **चित्त का बन्धन इच्छा का बन्धन है, जो स्वयं द्वारा किए गए चित्रण को श्रेष्ठ (भ्रमवश चिन्तन) मानने से होता है।** इससे अमानवीयता का पोषण तथा चिन्ता का जन्म होता है।
- धर्म पूर्ण चिन्तन से अथवा चित्रण से इच्छा बन्धन से मुक्ति होती है।
- भ्रमित मानव मान्यता पूर्वक चित्रण क्रिया से स्वयं को श्रेष्ठ मानने से इच्छा बन्धन होता है। यही अभिमान है।

- सत्य बोध से परिपूर्ण संकल्प से भ्रम मुक्ति होती है।
- लोकासक्ति से (जड़ पक्ष से) विषय सुख फलस्वरूप दुःख एवं समस्या तथा आत्मबोध से सहज सुख की निरन्तरता है।
- लोक परिणाम वादी है, अतः उसका सुख भी क्षणिक है। इसलिए लोकासक्ति बन्धन का कारण है ।
- आत्मबोध अमर है व अपरिणामी है, इसलिए आत्मबोध का सुख शाश्वत है। आत्मबोध का तात्पर्य अनुभव बोध से है।
- अतः यह सिद्ध होता है कि जिसमें सुख की निरन्तरता नहीं है, उसी में सुख पाने का प्रयास ही बन्धन है तथा जिसमें सुख स्वभाव है उसका अनुभव ही मोक्ष है।
- भ्रमित इच्छा की पूर्ति के लिए क्रिया तथा क्रिया की पूर्ति के लिए भ्रमित इच्छा निरंतर व्यस्त है, जिसकी पूर्ति नहीं है। इच्छा एवम् क्रिया के सम्मिलित स्वरूप की 'लोक' संज्ञा है ।
- जिसकी पूर्ति नहीं है, जो पूर्ण नहीं है, उसकी पूर्ति के प्रति और पूर्णता के प्रति जो हठवादी इच्छाएं हैं उसकी 'मृगतृष्णा' तथा भ्रान्ति संज्ञा है, जो बन्धन है।
- मृगतृष्णा अथवा भ्रान्ति का निराकरण सह अस्तित्ववादी दर्शन से ही संभव है।
- इकाई का ही दर्शन है और इसके लिए इकाई के रूप, गुण, स्वभाव और धर्म का अध्ययन अनिवार्य है ।
- संपूर्ण सृष्टि का कुल अध्ययन जड़, चैतन्य तथा व्यापकता के संदर्भ में ही है । यही भौतिक, रासायनिक एवं जीवन क्रिया के रूप में स्पष्ट है।
- संपूर्ण सृष्टि का अध्ययन मानव ने कुल छः दृष्टिकोणों से किया है :-

  (1) प्रियाप्रिय, (2) हिताहित, (3) लाभालाभ, (4) न्यायान्याय, (5) धर्माधर्म और (6) सत्यासत्य ।
- सुखाकाँक्षा से आशय, आशय से आवश्यकता, आवश्यकता से अध्ययन, अध्ययन से क्षमता, क्षमता से दृष्टि, दृष्टि से दर्शन तथा दर्शन से स्पष्टीकरण तथा स्पष्टीकरण से निश्चित योजना है।
- मानव में अर्थ तथा काम के प्रलोभन से ही प्रियाप्रिय, हिताहित तथा लाभालाभ दृष्टियाँ

क्रियाशील है, साथ ही धर्म तथा मोक्ष के संकल्पों से न्यायान्याय, धर्माधर्म तथा सत्यासत्य दृष्टियाँ क्रियाशील हैं। भ्रम मुक्ति ही मोक्ष है।

- मानवीयता तथा अतिमानवीयता से समृद्ध होने के लिए मोक्ष व धर्म के प्रति इच्छा एवं जिज्ञासा होना आवश्यक है।

- भ्रमवश सुविधा-संग्रह प्राप्ति के लिए की गई प्रारंभिक तैयारी ही प्रलोभन है। सार्थक प्राप्ति के सम्भावनात्मक विचारों की आशय, जिसकी उपलब्धि के बिना तृप्ति सम्भव न हो उसे आवश्यकता संज्ञा है ।

- अधिष्ठान (आत्मा) एवं अनुभव की साक्षी में स्मरणपूर्वक किए गए क्रिया, प्रक्रिया एवं प्रयास को अध्ययन संज्ञा है जो जितने पात्रता से सम्पन्न है, वह उसकी अर्हता, अर्हता द्वारा की गयी रीति को दृष्टि और दृष्टि द्वारा प्राप्त प्रतिबिंबन क्रिया की दर्शन संज्ञा है।

  क्रिया मात्र ही दृश्य है जिसकी लोक संज्ञा है। दृश्य का दर्शन तथा अदृश्य (व्यापकता) सहज अनुभव प्रसिद्ध है।

- सहअस्तित्व ही सम्पूर्ण दृश्य है।

- व्यापक वस्तु में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति सहज अनुभव ही ज्ञानावस्था की इकाई के पूर्ण जागृति का द्योतक है।

- लोक तृष्णा से त्रस्त एवम् इसमें व्यस्त समस्त प्रयत्नों में मानव को श्रम की पीड़ा ही है। इसीलिये मानव ने श्रम की पीड़ा से मुक्त होने का यत्न भी किया है, जो मानव की क्षमता, योग्यता एवम् पात्रता के अनुसार सफल अथवा असफल हुआ है।

- मानव ने अमानवीयता की समीक्षा तथा मानवीयता और अतिमानवीयता का अध्ययन करने का प्रयास किया है। उपरोक्त तीनों दृष्टि, स्वभाव एवम् विषय का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है ।

- शून्य (व्यापक) ही ज्ञान है। व्यापक ही सत्ता है। व्यापक सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति सहज आचरण ही नियम है जिसको अस्तित्व में पाया जाता है।

* हर क्रिया नियम से नियन्त्रित है।

- विषयी, विषय तथा विषय-वस्तु यह तीनों क्रियाएँ हैं।

- जड़ क्रिया को पाकर किए गए श्रम से, विश्राम की प्रतीक्षा एवम् प्रयास मानव ने किया है,

जो असफल सिद्ध हुआ है। इसके साथ ही व्यवहारिक एवम् वैचारिक एक-सूत्रता पूर्वक सहअस्तित्व भी सिद्ध हुआ है, जो नियम एवम् व्यापकता सहज महिमा है।

- समस्त क्रियाएं सत्ता में नियन्त्रित तथा संरक्षित है। क्योंकि इकाई और इकाई के बीच सत्ता का अभाव नहीं है। इसलिये सत्ता ही नियम एवम् नियंत्रण का कारण सिद्ध हुआ है। इसी के भास, आभास प्रतीति एवम् अनुभूति के योग्य क्षमता, योग्यता एवम् पात्रता से सम्पन्न होने के लिए ही मानव ने अनवरत प्रयास विभिन्न स्तरों पर किया है, कर रहा है और करता रहेगा।

- उक्त प्रयास के मूल में क्षमता; क्षमता के मूल में अध्ययन; अध्ययन के मूल में पात्रता; पात्रता के मूल में योग्यता; योग्यता के मूल में शास्त्राभ्यास, व्यवहाराभ्यास, कर्माभ्यास; अभ्यास के मूल में साधन; साधन के मूल में एकसूत्रता; एकसूत्रता के मूल में प्रयास हर मानव इकाई में अपनी-अपनी अवस्था और जागृति अनुसार होना पाया जाता है ।

- परस्पर समाधान के अर्थ में जीवन क्रिया व संकेत ग्रहण सहित अनुसरण क्रिया ही 'एकसूत्रता' है।

- स्पष्टतापूर्वक प्रसारित संकेतानुसरण से ही एकसूत्रता व जागृति है, अन्यथा भ्रम व ह्रास है।

- भ्रमित व्यक्ति के द्वारा, भ्रमित व्यक्ति को संबोधन एवं अमानवीय शिक्षापूर्वक जागृति को प्रमाणित करना संभव नहीं है। जागृत व्यक्ति के द्वारा ही भ्रमित व्यक्ति को जागृति के लिए मार्ग प्रशस्त करना प्रमाणित होता है और यही स्वयं में जागृति का प्रमाण है।

- हर इकाई अनन्त की तुलना में अंश ही है।

- हर इकाई का गठन अनेक अंशों से सम्पन्न है।

- विखण्डन पूर्वक एकसूत्रता की उपलब्धि सिद्ध नहीं है, क्योंकि क्रिया किसी गठन पर ही आधारित होती है। इसी आधार पर विखण्डन विधि में दाह (ताप या दुःख) पाया जाता है यह दाह, ताप या दुःख पुनः दूसरे के लिये विखण्डन क्रिया के लिए कारक बन जाता है।

- विखण्डन क्रिया से किसी का अस्तित्व मिटाया नहीं जा सकता है, क्योंकि गणितशः इकाई का विखण्डन करते-करते भी कुछ शेष रह ही जाता है। मानव परम्परा में विखण्डन को समुदायों के रूप में पहचाना जाता है और अखण्डता में एकसूत्रता पूर्वक सम्पूर्ण

मानव एक इकाई के रूप में पहचान में आता है।

- मानव लौकिक एवम् पारलौकिक भेद से व्यवहार करता है।
- समस्त लौकिक व्यवहार स्वार्थ या परार्थ भेद से है तथा पारलौकिक व्यवहार सबीज और निर्बीज भेद से हैं।
- स्वार्थ (प्रलोभन) अर्थ व काम के भेद से है।
- परार्थ व्यवहार धर्म और अर्थ के भेद से है।
- परमार्थ विचार एवम् व्यवहार धर्म तथा मोक्ष के भेद से है।
- मानवीयता के लिये आवश्यकीय नियमपूर्वक किये गये समस्त राज्यनीति एवम् धर्मनीति सम्मत व्यवहार को 'नैतिक' तथा भ्रमवश अमानवीयता पूर्वक किये गये व्यवहार को 'अनैतिक' संज्ञा है।
- नैतिक एवम् अनैतिक भेद से स्वार्थ वादी व्यवहार है। इसका सम्बन्ध स्वजन, स्ववर्ग, स्वजाति, स्वमन, स्वसम्प्रदाय, स्वपक्ष तथा स्वभाषा भेद से है, जबकि परार्थ व्यवहार सर्व जन, सर्व वर्ग, सर्व जाति, सर्व मन, सर्व सम्प्रदाय, सर्व पक्ष तथा सर्व भाषा भेद से है।
- स्वजन, वस्तु व सेवा को महत्वपूर्ण और अन्य को गौण समझने वाली प्रवृत्ति की स्वार्थ संज्ञा है। इसी प्रकार परजन, वस्तु व सेवा में अधिक महत्व का अनुमान करने वाली प्रवृत्ति व प्रयास को परार्थ संज्ञा दी जाती है।
- विषय चतुष्टय में आसक्ति सबीज है।
- ऐषणात्रय सहित किया गया व्यवहार अखण्ड समाज व्यवस्था केअर्थ में सबीज है।
- ऐषणा मुक्त विचार ही निर्बीज विचार है जो दिव्य मानव कोटि का स्वभाव है।
- व्यष्टि के अस्तित्व में पाया जाने वाला अभिमान व अहंकार ही संकीर्णता व क्लेश का मूल कारण है।
- समष्टि के अस्तित्व की यथार्थ समझ से उदारता एवम् कृतज्ञता की उपलब्धि होती है और व्यापक सत्ता में अनुभूति से भ्रान्ति का उन्मूलन होता है।
- यथार्थ दर्शन के बिना मानवीय विचार, मानवीय विचार के बिना मानवीय कार्य-व्यवहार में प्रवृत्ति, मानवीय कार्य-व्यवहार के बिना व्यवहार की एकसूत्रता, व्यवहार की एकसूत्रता के बिना निर्विरोधिता, निर्विरोधिता के बिना निर्विरोधिता पूर्ण समाज, निर्विरोधता पूर्ण

समाज के बिना सहअस्तित्व, सहअस्तित्व के बिना समाधान समृद्धि, समाधान समृद्धि के बिना स्वर्गीयता, स्वर्गीयता के बिना विवेक व विज्ञान पूर्ण अध्ययन, विवेक व विज्ञानपूर्ण अध्ययन के बिना यथार्थ दर्शन का प्रमाण नहीं है।

‘‘सर्व शुभ हो’’

अध्याय - दस
क्लेश मुक्ति

- मुक्ति की आशा सर्व मानव में पाई जाती है।
- **दुःख से मुक्ति तथा भ्रम से मुक्ति** - ऐसे भेद से ही मुक्ति के लिये प्रयास है, इसी के लिये समस्त अध्ययन, उपासना, प्रयोग, व्यवहार, व्यवसाय, अभ्यास और निष्ठा संपन्न हुई है। विगत परंपरा में मुक्ति का कोई प्रमाण अथवा उपाय अध्ययन गम्य नहीं हुआ है। इसीलिए भ्रम मुक्ति हेतु यह प्रस्ताव है।
- अध्ययन से हर इकाई की गठन, प्रक्रिया, आचरण परिणाम एवं उसका प्रयोजन स्पष्ट होता है।

  ★ रूप, गुण परिवर्तनशील है, जबकि तत्व शाश्वतवादी है क्योंकि तत्व चारों अवस्थाओं में पाया जाता है। सभी वृहत इकाईयों के गठन का मूल तत्व परमाणु है। सभी तत्वों के परमाणु का गठन सिद्धांत समान है। परमाणु का गठन भी मध्यांश तथा आश्रित अंशों से है। परमाणु में समाहित अंशों की सक्रियता एवं विकास क्रम भेद से ही सभी अवस्थाएँ हैं।

- अध्ययन ही उपासना है। प्रमाणित मानव ही अध्यापक है जिनके सान्निध्य में ही अध्ययन है। अध्ययनपूर्वक समझदारी से तदाकार तद्रूपता पूर्वक स्वत्व, स्वतंत्रता अधिकार होता है।

  :: अध्यापक :- अनुभव मूलक विधि से अनुभव गामी पद्धति पूर्वक सहअस्तित्व रूपी सत्य बोध कराने वाला।

- प्रयोग से उपयोगी साधनों की पहचान होता है।
- उत्पादन से उपयोगी सामग्रियों की उपलब्धि एवं विपुलीकरण होता है।
- अभ्यास से कुशलता-निपुणता-पाण्डित्य में पारंगत होना प्रमाणित होता है।
- निष्ठा से न्याय, धर्म एवं सत्य के प्रकाश में मानव लक्ष्य के लिये अध्ययन होता है। निष्ठा के फलस्वरूप अनुभूति होता है। अनुभूति मात्र सत्य में है। सहअस्तित्व रुपी परम सत्य में अनुभूति ही जीवन में भ्रम मुक्ति है।

- व्यापक सत्ता पारगामी-पारदर्शी रूप में और देवी-देवताएँ अनेक हैं।

:: ईष्टः- निर्भ्रमता पूर्वक श्रद्धा, विश्वास सहित श्रेष्ठता का पहचान होना सहअस्तित्व में ईष्ट है।

- जागृति रुपी ईष्ट में निष्ठा की निरंतरता से ही अनुभूति है।
- जीवन तत्व अमरत्ववादी है, इसीलिये नित्य सत्ता सहज अनुभव करने योग्य योग्यता को प्रमाणित करने का अवसर हर मानव इकाई में है।
- दूसरे के अस्तित्व के बिना जिसका अस्तित्व सिद्ध न होता हो उसको सापेक्ष की संज्ञा है ।
- असंग्रह से निर्बीज प्रवृत्ति का प्रसव है, जिसका फल प्रमाण सर्वतोमुखी समाधान से समझदारी एवं समृद्धि श्रम से प्रकट होता है ।
- असंग्रहः- व्यय के लिये की गई आय की **असंग्रह** संज्ञा है तथा इसका सद्व्यय अनिवार्य है। यह स्वधन विधि से सार्थक है।
- अकर्तृत्व व अकर्मणत्व के निश्चय से ही असंग्रह होता है।

:: अकर्तृत्व :- जो नहीं करना चाहिए उसे न करते हुए विधि विहित क्रियाकलापों को अपनाना ही अनावश्यक कार्यों से मुक्ति है। यही अकर्तृत्व हैं। भ्रमवश किये जाने वाले जितने भी क्रियाकलाप हैं, यही बंधन हैं, क्लेश कारी हैं। इसका निराकरण अनुभव सहज जागृति पूर्वक किये जाने वाले सभी क्रियाकलाप समाधान कारी, सुखकारी और शुभकारी होना ही अकर्तृत्व है। यही उपलब्धि और समृद्धि है।

- भ्रम से निराकर्षण ही अकर्तृत्व है। अमानवीयता ही हर मानव के लिए अकरणीय है। अकरणीय को न करना ही अकर्तृत्व है।

  निराकर्षण से अकर्तृत्व तथा अचेष्टा से अकर्मण्यता है।

- निराकर्षण अर्थात् आसक्ति से मुक्त अर्थात् अधिमूल्यन, अवमूल्यन व निर्मूल्यन से मुक्त होना निराकर्षण है।
- चेष्टा से मुक्त होने का अधिकार किसी इकाई में नहीं है अथवा किसी इकाई द्वारा सिद्ध नहीं हुआ है, इसीलिये चेष्टा से मुक्ति के प्रयास को अकर्मण्यता, आलस्य एवं प्रमादात्मक दोष निरुपित किया है ।

:: अकर्मणत्व :- आलस्य और प्रमाद के रूप में होना पाया जाता है। या कर्म से मुक्ति पाने की प्रयास की अकर्मण्यता संज्ञा है।

:: आलस्य :- किसी कार्य को सही मानते हुए, उसकी उपादेयता सिद्ध होते हुए भी उसे न करना आलस्य है।

:: प्रमाद :- जिस कार्य में उपादेयता सिद्ध होती हो, उस संबंध में ज्ञान के अभाव में वांछित क्रिया न संपन्न होने वाली स्थिति प्रमाद है।

- आंशिक एवं पूर्ण भेद से निराकर्षण है। मानव पद में आंशिक निराकर्षण तथा दिव्य मानव पद में पूर्ण निराकर्षण प्रमाणित है। यह उपकार प्रवृति सहज वरीयता क्रम में स्पष्ट है।
- अंतरंग और बहिरंग समस्त क्रियाएँ सकारात्मक रूप में सम एवं मध्यस्थ है।
- चैतन्य पक्ष की अंतरंग तथा जड़ पक्ष सहित शरीर की बहिरंग संज्ञा है।
- समातिरेक (सृजन) विषमता के लिए कारण, विषमातिरेक (विसर्जन) सम क्रिया सम्पन्न होने का कारण है। यही रचना-विरचना क्रम स्थूल क्रिया में स्पष्ट है।
- मानव जागृति पूर्वक यथास्थिति में ही मध्यस्थ है। यथास्थिति ही स्वभाव गति है।
- स्थिति ही मध्यस्थ है। यह सृजन से विसर्जन तक तथा विसर्जन से सृजन तक है। यह स्थूल क्रियाओं में भी प्रत्यक्ष है। क्रिया मात्र स्थिति नहीं है क्योंकि परिणाम से मुक्त क्रिया नहीं है। इसलिए सत्ता ही स्थिति है।
- हर परमाणु अपने में मध्यस्थ क्रिया है। सम, विषम रत आक्रमणों के मध्यस्थीकरण की क्रिया संपन्न करने योग्य क्षमता, योग्यता और पात्रता के उपार्जन पर्यन्त विकास है।
- पूर्ण विकसित जागृत इकाई में आत्मानुवर्ती बुद्धि, चित्त, वृत्ति एवं मन की क्रियाएं मध्यस्थीकरण प्रणाली से नियंत्रित होती हैं, जिसके फलस्वरूप ही सुख, शांति, संतोष एवं आनंद की प्रतिष्ठा होता है।
- क्रिया से मुक्त इकाई नहीं है। सम, विषम एवं मध्यस्थ क्रिया का होना पाया जाता है। जैसा कि उपरवर्णित है सम तथा विषम क्रियाओं में संतुलन नहीं है। इसलिये यह सिद्ध होता है कि मध्यस्थीकरण प्रणाली से इकाई को मध्यस्थ क्रिया से संतुलित किया जाता है। इस प्रकार मध्यस्थ की ही क्रियाशीलता प्रमाणित होती है तथा सम और विषम इसके नियंत्रित सिद्ध हैं।
- इकाई हो और निष्क्रिय हो ऐसी कोई संभावना नहीं है।
- मानव में व्यवहारिक मध्यस्थता न्याय से, वैचारिक मध्यस्थता समाधान (धर्म) से तथा

अनुभव की मध्यस्थता ज्ञान से है।

- समस्त व्यवहार नियम से नियंत्रित हैं। नियम मानव के आचरण के रूप में प्रमाण है।
- विचार मात्र समाधान से नियंत्रित है, जो जागृति का प्रमाण है।
- अनुभव मात्र व्यापकता में है, जो शून्य है।
- अत: यह सिद्ध होता है कि शून्य ही ज्ञान, ज्ञान ही व्यापक तथा व्यापक ही ज्ञान है। सहअस्तित्व में अनुभव ही ज्ञान सहज प्रमाण है । जो ज्ञान (व्यापक) में अनन्त इकाईयाँ सम्पृक्त होने की समझ ही है, व्यापक में अनंत प्रकृति की अविभाज्यता ही सहअस्तित्व है।
- जागृत मानव में न्याय पूर्ण व्यवहार तथा समाधान पूर्ण विचारों को पाया जाता है।
- अनुभूति मात्र सहअस्तित्व रूपी सत्य में ही है। सत्य में अनुभूति ज्ञानावस्था की निर्भ्रम इकाई द्वारा ही होती है तथा इसका प्रभाव बुद्धि, चित्त, वृत्ति तथा मन में आप्लावन होता है।
- अनुभव सहज व्यवहारिक मध्यस्थता जो वृत्ति की क्रिया है, न्याय और समाधान के रूप में परिलक्षित होती है।
- अनुभव सहज बोध की स्थिति में बुद्धि की क्रिया में आप्लावन होता है।
- उपरोक्तानुसार न्याय, धर्म या समाधान अनुभव के ही विविध स्तर हैं।
- इसलिए व्यवहार में अनुभव तथ्य न्याय है, विचार में अनुभव तथ्य धर्म है और आत्मानुभूत तथ्य सहअस्तित्व है। यही परम सत्य है।
- व्यवहारिक मध्यस्थता, सम-विषम व्यवहार के बीच मध्यस्थता करने की पात्रता से है जो न्याय के रूप में होता है। वैचारिक मध्यस्थता सम, विषम विचारों का समाधान प्रस्तुत करने योग्य योग्यता से है तथा अनुभव मध्यस्थ ही है ।
- आत्मा में जागृति व्यापक वस्तु में अनुभूति क्रिया संपन्न होने की क्षमता तक बुद्धि व चित्त की जागृति विचारों में समाधान प्रस्तुत करने योग्य क्षमता तक वृत्ति तथा मन की जागृति समस्त व्यवहार व क्रिया को न्याय से समन्वित व्यवहार को प्रस्तुत करने की क्षमता की सीमा तक है।
- आसक्ति रहित इकाई में अकर्तृत्व भ्रम मुक्ति रुप में होता है। अधिकाधिक उपकार करने के उपरांत भी और करने की स्वीकृति रहती है।

- आसक्ति भ्रम ही है।
- सम, विषम विचार तथा व्यवहार दोनों आस्वादन क्रियाएं हैं।

  :: आस्वादन :- समाधान सहज प्रयोजन के अर्थ में आशा एवं रुचि सहित ग्रहण क्रिया की ही आस्वादन संज्ञा है।

- ईष्ट दिशा में प्रवृत्ति हो तथा अन्य दिशाओं में प्रवृत्ति न हो, उसकी ऐच्छिक निराकर्षण संज्ञा है। संपूर्ण दिशाओं में प्रमाणित होने वाली ही पूर्ण निराकर्षण संज्ञा है।
- निराकर्षण ही अनासक्ति, यही जागृति है। अनासक्ति ही अकर्तृत्व, अकर्तृत्व ही असंचयता, असंचयता ही अभय समृद्धि, अभय समृद्धि ही स्वर्गीयता, स्वर्गीयता ही निराभिमानता, निराभिमानता ही पर-वैराग्य, पर-वैराग्य ही योग, योग ही व्यापकता में अनुभव, व्यापकता में अनुभव ही मध्यस्थता, मध्यस्थता ही प्रामाणिकता, प्रामाणिकता ही निराकर्षण अथवा भ्रममुक्ति है।
- मानव समाज का पोषण एवं सम्वर्धन जीवन मुक्त अथवा भ्रम मुक्त मानवों का स्वभाव है।

  ★ पर-वैराग्य का तात्पर्य :- जागृति के लिए सभी विरोधी (अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, अव्याप्ति) दोषों से मुक्त होना पर-वैराग्य संज्ञा है। पर का तात्पर्य ही जागृति प्रमाणित होना है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - ग्यारह
योग

- योग के प्राप्त एवं प्राप्य दो भेद हैं।
- जो प्राप्य है, उसमें आसक्ति ही संपूर्ण योग संयोग वियोग का कारण है।
- मध्यस्थ व्यवहार, विचार एवं अनुभव 'प्राप्त योग' है, जो अनवरत उपलब्ध है, वर्तमान है।
- एकत्व व निकटत्व के भेद से प्राप्य योग है।
- सजातीय मिलन की एकत्व तथा विजातीय मिलन की निकटत्व संज्ञा है। मानव का एकत्व केवल पाण्डित्य, कुशलता एवं निपुणता में है।
- इकाई का ह्रास व विकास प्राप्य योग पर ही है।
- विकास वादी योग की सुयोग तथा ह्रासवादी योग की कुयोग संज्ञा है।
- न्याय एवं धर्म-सम्मत विचार व व्यवहार सम्पन्न एवं सत्यानुभूति सहित मानव **जागृत या विकसित,** न्याय एवं धर्म सम्मत विचार व व्यवहार संपन्न अर्ध **विकसित,** न्याय-सम्मत विचार व व्यवहार संपन्न मानव अल्प विकसित **प्रगति** तथा अन्यायासक्त विचार तथा व्यवहार संपन्न मानव **ह्रास** की ओर गतिवान है जो पशु मानव व राक्षस मानव के रूप में हैं।
- जो जिसका अपव्यय करेगा वह उससे वंचित हो जाएगा।
- मानव ह्रास में आसक्ति के फलस्वरूप प्राप्त बल, बुद्धि, रूप, पद और धन का अपव्यय करता है। जड़ पक्ष को वरीय मान लेना ही ह्रास है।
- मानव के लिये आवश्यकीय नियम मानवीयता का संरक्षण ही है जो न्याय एवम् समाधान है, जिसके पालन से स्वर्गीयता का प्रसव है। इसके विपरीत मानव के लिए अनावश्यकीय नियम मानवीयता का शोषण ही है, जो अन्याय है, जिसमें विवशता से नारकीयता का प्रसव होता है।
- असंग्रह समाधान-समृद्धि, स्नेह, विद्या, निराभिमानता (सरलता), अभय एवं वाणी संयम से युक्त विचार मात्र से **वैचारिक स्वर्गीयता** की, स्वनारी/स्वपुरुष तथा स्वधन

एवं दया पूर्ण व्यवहार से **व्यवहारिक सुख** अथवा व्यवहारिक स्वर्गीयता की उपलब्धियाँ हैं। यही सर्वमानव के लिए आवश्यकीय नियम है।

- ★ इसके विपरीत संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान (दिखावा), भय तथा वाणी की असंयमता से युक्त विचार से वैचारिक नारकीयता का तथा परनारी/परपुरुष, परधन एवं परपीड़ा रत कार्य एवं व्यवहार से व्यवहारिक क्लेशों से पीड़ित होना होता है।

- मानव-मानव के लिए आवश्यकीय नियमानुक्रम, व्यतिक्रम भेद से ही सुख व दु:ख का, हर्ष एवं अमर्ष का कारण सिद्ध हुआ है।

- समस्त संबंधों एवं संपर्कों, वस्तु एवं विषय, रूप एवं आशय के पोषक एवं शोषक भेद से ही मानव ने नियम का पालन किया है। इनमें से मानवीयता के लिये आवश्यकीय तथा अनावश्यकीय नियमों को जान व समझ लेना ही अध्ययन है तथा इनमें से आवश्यकीय वर्गों को सभी स्तरों पर प्रयोग में लाना ही प्रमाण और उपलब्धि है।

- मानव जीने के सोपानों को व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र के परिप्रेक्ष्यों के रूप में पहचाना गया है। दूसरी विधि से व्यक्ति, परिवार, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था रूप में पहचान होती है। तीसरी विधि से हर व्यक्ति, समझदारी सहज विधि से जिम्मेदारी के रूप में व्यवस्था का आरंभिक स्वरूप परिवार है, इसी क्रम में दश सोपानीय परिवार सभाओं के रूप में पहचान होता है।

- मानव के लिये आवश्यकीय नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में समझ ही आनंद, आनंद ही जागृत जीवन तथा जागृत मानव जीवन ही मानव परंपरा के लिये आवश्यकीय नियम है, यह मानव जीवन का जागृत चक्र है। सर्व मानव जीवन के लिये यह सुचक्र है।

- जीने की आशा सहित चैतन्य इकाई को 'जीवन' तथा जीवन द्वारा लक्ष्य को पाने के क्रम में प्रयास की जो निरंतरता है, उसकी जीवन जागृति क्रम संज्ञा है।

- मानव के लिये अमानवीय नियम ही अन्याय, अन्याय ही अधर्म, अधर्म ही असत्य, असत्य ही अनीश्वरता, अनीश्वरता ही दु:ख, दु:ख ही जीवत्व (अमानवीयता), जीवत्व ही मानव के लिये अनावश्यकीय नियम है। यह जीव चक्र है, जो मानव के लिये कुचक्र है।

- सामाजिक स्तर पर सार्वभौमिक सिद्धांत के आविष्कार को **नियम** की, नियम को व्यवस्था के स्तर पर व्यवस्थापूर्वक व्यवहृत करते हुए **न्याय** की, न्याय को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर

परस्पर समाधानित विचार पूर्ण नीति द्वारा व्यवहृत करते समय **धर्म** की, धर्म को ब्रम्हांड के स्तर पर व्यवहृत करते समय **सत्य** की, अनंत ब्रम्हांड के स्तर पर व्यवहृत करते समय उसे **सहअस्तित्व** की, सहअस्तित्व में मानव द्वारा अनुभव की दशा में **आनंद** की तथा आनंद को व्यक्तिगत जीवन में आचरित करने की **जागृत जीवन** संज्ञा है जो दया, कृपा और करूणा है।

- सुख, संतोष, शांति एवं आनंद, यह सुख की चार अवस्थाएँ हैं।
- सुख की चार अवस्थाओं के पोषक नियमों को मानव के लिए आवश्यकीय नियम तथा इनके शोषक **नियमों** को अनावश्यकीय नियम संज्ञा है, क्योंकि समस्त मानव सुखानुभव की प्रतीक्षा, आशा, प्रयोग एवं प्रयास में रत हैं।
- मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी विधि की **न्याय,** समत्ववादी अथवा श्रेयवादी स्वभाव की **धर्म,** यथार्थता की **सत्य,** व्यापकता की **ईश्वर,** पूर्ण सर्वतोमुखी समाधान की **आनंद,** आवश्यकीय नियमाचरण की **जागृत जीवन,** निरपेक्ष शक्ति की **सत्ता** संज्ञा है ।
- लोकेशानुभव का अवसर आत्मा को, लोकदर्शन का अवसर बुद्धि व चित्त को तथा न्यायोचित व्यवहार का अवसर वृत्ति व मन को है ।
- संशय व विपर्यय (भ्रम) से मुक्त जो बौद्धिक स्थिति है उसकी **पूर्ण समाधान,** इच्छापूर्वक किए गए अंतरंग व बहिरंग व्यवहार की **आचरण** तथा सार्वभौमिक सिद्धांत की **नियम** संज्ञा है।
- अनिश्चयता की **संशय** एवं अयथार्थता अर्थात् अयथार्थ को यथार्थ मानना की **विपर्यय** संज्ञा है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - बारह
लक्षण, लोक, आलोक एवं लक्ष्य

- अवलोकन भेद से ही लक्षण, लोक, आलोक एवं लक्ष्य है।

  :: लक्षण :- रूप, गुण, स्वभाव व धर्म की लक्षण संज्ञा है।

  :: लोक :- इच्छा एवं क्रिया के सम्मिलित रूप की लोक संज्ञा है।

  :: आलोक :- ज्ञान-विवेक-विज्ञान ही आलोक है।

  :: लक्ष्य :- क्षमता, योग्यता एवं पात्रता अनुसार योगानुभूति योग्य विकास के लिये किए गये प्रयोग एवं प्रयास अनुभूति की लक्ष्य संज्ञा है।

- आलोक सहित (बोध पूर्वक) की गई दर्शन क्रिया की अवलोकन संज्ञा है।
- भोग, प्राप्य योग व प्राप्त योग के भेद से लक्ष्य का निर्धारण किया जाता है।
- भोगासक्ति का लक्ष्य विषय चतुष्टय (आहार, निद्रा, भय और मैथुन) है।
- प्राप्य योग का लक्ष्य लोकेषणा सहित किसी उपकार क्रिया के योग से प्राप्त विभूति अथवा सामर्थ्य द्वारा जन जाति को आप्लावित, प्रभावित करना है।
- विषयासक्त मानव क्रिया से क्रिया की तृप्ति चाहता है, जो संभव नहीं है। क्योंकि संवेदन क्रिया + संवेदन क्रिया से ह्रास अथवा विकास ही संभव है।
- सम्पूर्ण जड़ क्रिया मात्र अपूर्ण है। अर्पूण को पाकर अपूर्ण तृप्त नहीं हो सकता। तृप्ति की संभावना केवल न्याय, धर्म एवं सत्यानुभूति से ही है।
- प्राप्य योग विधि से सफलता पूर्वक किये गये प्रयास से ही विशुद्ध मानवीयता की उपलब्धि होती है, जिससे स्वतंत्र रूप से मानवीयता का संरक्षण होता है। प्राप्त योगानुभूति पूर्वक ही प्राप्य योग सार्थक होता है।
- प्राप्त योगानुभूति ही जागृति है। ऐसी इकाईयाँ ही अनवरत रूप से अन्य के जागृति के लिए समुचित प्रेरणा स्रोत हैं। जो जागृत परम्परा है।
- निरीक्षण, परीक्षण एवं सर्वेक्षण क्रिया द्वारा कारण, गुण व गणित के संयोग से की गयी अवलोकन क्रिया द्वारा ही सत्यता का परिचय होता है।

- उक्त संयोग की अपूर्णता में ही समस्त मतभेद हैं।
  - ★ मतभेद ही क्रम से विरोध, द्रोह, विद्रोह, द्वेष, विद्वेष, सशंकता, आतंक, दास्यता एवं दुष्टता, शोषण और युद्ध के कारण हैं।
  - ★ जनजाति के स्तर पर समस्त मतभेद के मूल में एक से अधिक पक्ष का होना अनिवार्य है। उसमें सभी गलत हों तब अथवा कोई एक पक्ष अवश्य गलत हो, तो संघर्ष अवश्य होता है। सब सही हों, ऐसी स्थिति में संघर्ष संभव नहीं है।
- लक्ष्य भेद से आचरण भेद एवं विचार में भी प्रभेद घटित होना पाया जाता है।
- स्व, पर, परिस्थितिवश होने वाले विवशताओं के भेद से ही लक्ष्य निर्णय है।
- स्व-कृत निर्णय, पूर्णता एवं अपूर्णता के दिशा-भेद से है। यथार्थता की ओर 'पूर्णता' तथा भ्रामकता की ओर 'अपूर्णता' संज्ञा है।
- ज्ञानमूलक विज्ञान एवं विवेक के विधिवत् अध्ययन से यथार्थता की ओर प्रयासोदय है, अन्यथा भ्रामकता की ओर प्रयास है।
- प्रयास ही क्रिया और कार्य व व्यवहार है।
- सुकर्म एवं दुष्कर्म के आशय भेद से वैयक्तिक जीवन व जीविका है, तदनुसार ही भावी घटनाएँ एवं कार्य संपन्न होते हैं।
- सच्चरित्र एवं दुष्चरित्र के भेद से कुटुम्ब है तथा तदनुरुप ही अग्रिम प्राप्तियाँ हैं।
- सिद्धांत, मत, संप्रदाय, वर्ग, भाषा व जाति के विचार व प्रचार भेद से सामुदायिक जीवन है तथा उसी के प्रतिरूप में उसके लिये भावी घटनाएँ है।
- न्याय व अवसरवादितापूर्ण नीति भेद से राष्ट्रीय जीवन है तथा तदनुसार ही उसका भावी मार्ग उत्थान एवं पतन के लिये प्रशस्त है।
- न्यायपूर्ण नीति वह है, जिससे मानवीयता का संरक्षण हो। अवसर वादी नीति वह है, जिससे मानवीयता का संरक्षण न होता हो।
- विवेक अथवा अविवेक, विज्ञान अथवा सामान्य ज्ञान संपन्न विचार व मर्यादा के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय जीवन की घटनाएँ मानव समुदाय के संगठन व विघटन के रूप में भावी क्षणों में प्रतिष्ठित हैं।
- मानव समुदाय रुप में जितना विघटन को प्राप्त करे उतना ही ह्रास है तथा जितना संगठन को प्राप्त करे उतना ही जागृत परंपरा की ओर उन्नति है।

- मानव समुदाय में गलती के बिना वैचारिक मतभेद सिद्ध नहीं है।
- नियमपूर्वक किये गये कार्य एवं विचार को 'सुकर्म' तथा इसके विपरीत 'दुष्कर्म' संज्ञा है।
- नैतिकता संपन्न (राज्यनीति तथा धर्म नीति संपन्न) कुशलता, निपुणता, पाण्डित्य सहित किये गये चरित्र चित्रण को 'सच्चरित्र' तथा उसके विपरीत को 'दुश्चरित्र' संज्ञा है।
- सिद्धांत मात्र सत्य ही है। सिद्धांत वैविध्यता का कारण नहीं है। सिद्धांत में वैविध्यता है भी नहीं। यदि है, तो सिद्धांत नहीं है।
- मानव लक्ष्य (समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व) को पहचानने के लिए प्राप्त ज्ञान ही विवेक है।

  :: विज्ञान :- भौतिक समृद्धि एवं मानव लक्ष्य जीवन लक्ष्य की सफलता के लिए दिशा निर्धारण ज्ञान ही विज्ञान है।

- अस्तु, अंतर्राष्ट्रीयता का मूल उद्देश्य बौद्धिक समाधान तथा भौतिक समृद्धि का संतुलन एवं संरक्षण बनाये रखना ही सिद्ध होता है, जिससे अखण्ड मानव समाज में सहअस्तित्व सिद्ध होता है, अन्यथा सहअस्तित्वविहीन मानव समुदाय विखंडन के रूप में है ही।
- अंतरंग (वैचारिक) एवं बहिरंग (व्यवहार) भेद से सुगमताएँ एवं दुर्गमताएँ हैं।
- आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में **समृद्धि** का, व्यक्तित्व के रूप में **चरित्र** का, प्रामाणिकता से सामाजिकता का; न्याय पालन, प्रबोधन तथा पोषण से राष्ट्रीयता का; विज्ञान व विवेक से प्राप्त समृद्धि, समाधान, अभय, सहअस्तित्व से अंतर्राष्ट्रीय जीवन का वैभव है, अन्यथा में ह्रास है।
- संग्रह कामना तृप्ति का पोषक नहीं है, क्योंकि संग्रह का पूर्ति नहीं है।
- मानव आकाँक्षाएं, सामान्य आकाँक्षाओं तथा महत्वाकाँक्षाओं के रूप में परिलक्षित हैं एवं मानव द्वारा तदनुसार ही उत्पादन व उपयोग-सदुपयोग विधि से अर्थ का नियोजन है।
- मानव की सामान्य आकाँक्षा आहार, आवास एवं अलंकार भेद से है, जिसकी पूर्ति के लिये वह उत्पादन एवं उपभोग, सदुपयोग में व्यस्त है।
- मानव की महत्वाकाँक्षाओं को मूलत: तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है - (1) दूर-गमन, (2) दूरश्रवण तथा (3) दूर-दर्शन। इनकी पूर्ति हेतु भी मानव उत्पादन एवं उपयोग

में व्यस्त है।

- सामान्य आकाँक्षा की अपूर्ति से असंतोष, पूर्ति से सशंकता तथा अधिकता से संतुष्टि होती है।
- महत्वाकाँक्षा की अपूर्ति से कौतूहल, पूर्ति से तृप्ति तथा अधिकता से असंतोष होता है।
- न्यायवादी तथा अवसरवादी नीति भेद से ही मानव ने दूसरों पर नियंत्रण पाने का प्रयास किया है, जो देश, भाषा, वर्ग, जाति व बल प्रभावी भेद से पाया जाता है, जो राष्ट्र के प्रति निष्ठा या विद्रोह के रूप में व्यक्त होता है।
- अन्यायवादी विधि (कानून), विधान व नीति से हिंसा, प्रतिहिंसा, सशंकता तथा आतंक का प्रसव होता है।
- हर मानव में न्याय की याचना जन्मजात स्वभाव के रूप में पायी जाती है, जिसका स्पष्टीकरण योग्य अध्ययन अति आवश्यक है।
- भ्रमवश माने हुए न्याय से अन्याय का और अन्याय से अन्याय दमन करने के लक्ष्य भेद के आशय से समस्त विधि, विधान एवं नीतियों का अनुमोदन मानव करता है। इसी आधार पर एक अथवा अनेक राष्ट्रों का जीवन असफल है।
- पूर्ण दर्शन लोक-व्याप्त है। अपूर्ण दर्शन मानव सम्पर्क की सीमा तक है।
- रहस्यों का उन्मूलन करने वाले दर्शन को 'पूर्ण' दर्शन संज्ञा है।
- रहस्यों का निवारण सहअस्तित्व में जागृति रूपी अध्यात्म ज्ञान, बौद्धिक ज्ञान तथा भौतिक विज्ञान के एकसूत्रात्मक अध्ययन से ही संभव है।
- लोक के प्रति अनासक्त मानवों ने ही ज्ञानानुभव किया है। ऐसे अनुभूत व्यक्तियों में व्यवहारिक संतुलन एवं वैचारिक समाधान सहज ही रहता है।
- इच्छा की अपेक्षा में संवेदन क्रिया अल्प है। इच्छा शक्ति अधिक से अधिक क्रिया में व्यस्त है। अनुपात से अधिक शक्ति नियोजन अपव्यय है। यह अपव्यय ही आसक्ति है। इसका निरोध तथा नियंत्रण ही अनासक्ति है।
- प्रधानत: कारणानुक्रम से अध्यात्म ज्ञान का, गुणानुक्रम न्याय से बौद्धिक ज्ञान का और गणितानुक्रम नियम से भौतिक विज्ञान का अनुसंधान, आविष्कार और उपलब्धियाँ सार्थक होती हैं।

- परस्पर अनुशासित (नियंत्रित) या अनुवर्तित लोक-व्यूह की ब्रम्हांड संज्ञा है, जिसमें अनेक सौर-व्यूह हैं।
- गणितानुक्रम नियम से क्रिया, प्रतिक्रिया एवं परिपाक (फल) का; गुणानुक्रम न्याय से ह्रास एवं जागृति का; कारणानुक्रम विधि से सापेक्ष एवं निरपेक्ष ऊर्जा (शक्ति) में संपूर्ण प्रकृति का अध्ययन आभास एवं अनुभव पूर्ण हुआ है।
- निरपेक्षता के बिना व्यापकता सिद्ध नहीं है, क्योंकि सापेक्ष मात्र ससीम ही है।
- व्यापक ही ज्ञान, ज्ञान में अनुभव ही **समझ** है; समझ ही ज्ञान, विज्ञान, विवेक के रूप में प्रमाण है; ज्ञान ही **नियम;** नियम ही **नियंत्रण;** नियंत्रण ही **संतुलन;** संतुलन पूर्वक जीना ही मानव में **न्याय;** सार्वभौम व्यवस्था में न्याय पूर्वक जीना ही **धर्म** अर्थात् समाधान; सहअस्तित्व में अनुभव ही धर्म और **सत्य** है। निरपेक्ष सत्ता में नियम पूर्ण ज्ञान की अभिव्यक्ति नित्य वर्तमान है।
- नियंत्रण महिमा व्यापक और नियंत्रित अनेक हैं।
- जो नियंत्रित है वह इकाई है, यही क्रिया है।
- क्रियाएं अनंत हैं तथा समस्त क्रियाएं सत्ता में ही ओतप्रोत व नियंत्रित है, जिससे हर इकाई शक्त है अर्थात् सत्ता में ही हर इकाई को शक्ति प्राप्त है।
- शक्त ही इकाई; इकाई ही स्पंदन; स्पंदन ही क्रिया; क्रिया ही अनेकता; अनेकता ही संपूर्णता; संपूर्णता ही परस्परता; परस्परता ही नियंत्रण; नियंत्रण ही परिणाम; परिणाम ही ह्रास एवं विकास; ह्रास एवं विकास ही अवस्था; विकसित अवस्था ही चैतन्य पद; चैतन्य पद ही स्फुरण; स्फुरण ही कंपन; कंपन ही प्रतिभा; प्रतिभा ही प्रतीति; प्रतीति ही भास; भास, आभास, प्रतीति ही अध्ययन; अध्ययन ही विज्ञान एवं विवेक; विज्ञान एवं विवेक ही दर्शन; दर्शन ही निर्भ्रमता; निर्भ्रमता ही समाधान; समाधान ही आनन्द; आनन्द ही पूर्णता; पूर्णता ही जागृति; पूर्ण जागृति ही विश्राम तथा विश्रामस्थ इकाई ही पूर्ण शक्त है।
- हर मानव; प्राप्त शक्ति की अनुभूति करने तक अविश्रान्त श्रृंखला में पाया जाता है।
- गठन रहित इकाई नहीं है। हर गठन में कई अंशों या अंगों एवं इकाईयों को पाया जाना अनिवार्य है।
- हर परमाणु किसी विकास क्रमांश में अवस्थित है।

- हर विकास क्रमांश में स्थित परमाणु के मध्यांश में मध्यस्थ क्रिया होती है जो मध्यस्थ होने के कारण अन्य अंशों से अधिक शक्त है अन्य अंशों को संतुलित किया रहता है। मध्यांश मध्यस्थ क्रिया है, जबकि आश्रितांश सम या विषम क्रिया हैं।

- मानव को पूर्ण पद या पूर्ण जागृति या पूर्ण विश्राम पाने का अवसर है। इसीलिये समस्त प्रयास भी है।

- ज्ञानावस्था की निर्भ्रान्त इकाई पूर्ण जागृत, भ्रान्ताभ्रान्त इकाई पूर्ण जागृति को प्रमाणित करने के अति निकट तथा भ्रान्त इकाईयाँ निकट है।

- रूप, बल, बुद्धि, पद एवं धन की विषमता से ही मानव में परस्पर स्पर्धा, प्रलोभन, आकाँक्षा, उत्साह, अध्ययन, अनुसंधान, संधान, प्रयोग,व्यवसाय और ईर्ष्या, द्वेष, आतंक, हिंसा, छल, कपट, दंभ तथा पाखंड का भी प्रसव है, जिससे मानव का विकास अथवा ह्रास सिद्ध है।

- सहअस्तित्व में विरोध का विजय अथवा शमन, विरोध शमन से जागृति, जागृति से सहज जीवन, सहज जीवन से स्वर्गीयता, स्वर्गीयता से सहअस्तित्व में अनुभव, अनुभव से कर्त्तव्य निष्ठा, कर्त्तव्य निष्ठा से सफलता, सफलता से विज्ञान एवं विवेक, विज्ञान एवं विवेक से स्वयंस्फूत जीवन और स्वयंस्फूत जीवन से ही सहअस्तित्व प्रमाणित होता है।

- स्वयं स्फूत जीवन मानवीयता का द्योतक है, जो एक स्वतंत्र जीवन है।

- सहअस्तित्व ही विरोधों से मुक्ति, विरोधों से मुक्ति ही विरोध का शमन है और विरोध का शमन ही सहअस्तित्व है।

- अज्ञान, मृत्यु, अंधकार और भ्रम यह चार प्रकार की मान्यताएँ मानव विचार में पाई जाती है। इन्हें माना जाता है अवश्य, पर इनका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता।

- मृत्यु,अंधकार और भ्रम के मूल कारण में भी अज्ञान ही है।

- जो जैसा है, उसको वैसा ही समझने योग्य विकासांश का अभाव ही **अज्ञान,** पिण्ड की विघटन क्रिया को **मृत्यु,** किसी इकाई के एक ओर प्रकाश पड़ने पर उसके दूसरी ओर जो उसकी छाया पड़ती है उसी को **अंधकार** संज्ञा है।

- अगोपनीयता एवं रहस्यहीनता ही यथार्थता है, जिससे ही सहजता की उपलब्धि है।

- गोपनीयता से संकीर्णता का तथा रहस्यता से भ्रामकता का प्रसव है।

- अज्ञान, मृत्यु, अंधकार एवं भय के वैकल्पिक रूप एवं गुण की कल्पना ही 'भ्रम' है।
- संकीर्णता तथा रहस्यता से मानव ह्रास की ओर गतिमान है, जिसके कारण विरोध, विद्रोह, आतंक आदि सभी अमानवीय गुण प्रभावी हैं।
- समष्टि (संपूर्ण मानव) के बल, बुद्धि, रूप, पद एवं धन से व्यष्टि का बल, बुद्धि, रूप, पद एवं धन अल्प है, क्योंकि समष्टि की आंशिकता की व्यष्टि संज्ञा है।
- मानव इकाई अभिमान ग्रस्त होने पर वंचना, परिवंचना, आतंक एवं विग्रह पूर्वक अनेक के शोषण में प्रवृत्त होती है। साथ ही, उस अभिमान से मुक्त होकर ही विवेक, विज्ञान, स्नेह, सहजता व सहअस्तित्व पूर्वक एक द्वारा अनेक के पोषण की प्रवृत्ति पाई जाती है तथा पोषण भी होता है।
- शोषणवादी प्रणाली में संघर्ष तथा पोषणवादी प्रणाली में शांति की उपलब्धि है।
- व्यवहारिक एकसूत्रता तथा वैचारिक एकसूत्रता ही पोषणवादी प्रणाली का मूल सूत्र है। अन्याय में शोषण है ही।
- समस्त मानव के लिये जागृति के अवसर समान हैं, जिनका सदुपयोग एवं दुरूपयोग वातावरण, अध्ययन तथा पूर्व-संस्काराधीन है।
- संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था, यह चार प्रकार से मानव-कृत वातावरण है, जिससे मानवीयता का पोषण अथवा शोषण होता है।
- बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि तथा विकल्पात्मक ज्ञान जिस प्रकार के मानवकृत वातावरण से बोधगम्य होता हो, इससे ही मानव के विकास व जागृति का मार्ग प्रशस्त होता है।
- वर्तमान के पूर्व में की गई क्रिया मात्र का फल परिणाम ही 'संस्कार' है, जो अमानवीयता, मानवीयता तथा अतिमानवीयतापूर्ण भेद से है, जिसके आधार पर ही इकाई की क्षमता, योग्यता एवं पात्रता है। जागृति के पक्ष में क्रिया ही सुसंस्कार है। सुसंस्कार के विपरीत जितने भी क्रियाकलाप हैं, वह अमानवीय जो कुसंस्कार है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - तेरह
मानवीयता

- मानव के लिये मानवीयता , देवमानवीयता, दिव्यमानवीयता ही एक मात्र सुख शांति संतोष आनन्द के लिए आधार है। सुख हर स्तर का लक्ष्य है अर्थात् सुख अमानवीयता, मानवीयता तथा अतिमानवीयता का भी लक्ष्य है।
- भ्रमवश मानव ने लाभ द्वारा सुखी होने की कामना की है।
- भाव से समाधान, समाधान से सदुपयोग, सदुपयोग से अधिकार, अधिकार से व्यवस्था, व्यवस्था से समाधान-समृद्धि-अभय-सहअस्तित्व, समाधान-समृद्धि-अभय-सहअस्तित्व से भाव होता है।
- शोषण पूर्वक प्राप्त आय से एक से अनेक तक सुखी नहीं है।
- शोषक का शुष्क होना अनिवार्य है, क्योंकि क्रिया की अनुवर्ती क्रिया समान होती है।
- जब कमाते हैं, तब गंवाते नहीं; जब गंवाते हैं, तब कमाते नहीं।
- सद्व्यय ही कमाई का प्रयोजन है और अपव्यय ही गंवाई है। इसीलिये सद्व्यय-पूर्वक ही मानव न्यायपूर्ण आय को पाकर सफल तथा सुखी है, अन्यथा असफल एवं दु:खी है।
- तन, मन तथा धन का ही व्यय किया जाता है।
- मानव परिवार, समाज, राष्ट्र एवं लोक क्रम से अन्योन्याश्रित है जिनका अध्ययन तथा अनुसरण करने का अवसर समस्त मानव को प्राप्त है।
- मानव परिवार, समाज, राष्ट्र तथा लोक, प्राप्त अवसर तथा अनुसरण क्रिया के आवश्यकीय नियमों के पालन द्वारा ही सफल हुए हैं। इसके विपरीत असफल हुए हैं।
- मानवीयतापूर्ण व्यवहार पक्ष का पूर्ण अध्ययन ही मानव-कुल के एकसूत्रता सहज सूत्र है।
- मानव कोटि तक ऐसी कोई इकाई नहीं हैं, जो किसी का आशय न हो, अथवा जो किसी का आश्रित न हो, इसीलिए समस्त क्रिया मात्र अन्योन्याश्रित सिद्ध है। मात्र विचार ही सत्यपूर्ण होने पर स्वतंत्र है, अन्यथा वह भी आसक्ति ही है। स्वतंत्र विचार परस्पर पूरक और उपयोगी सिद्ध है ही।
- मानव में परस्पर पूरकता व उपयोगिता व्यवहार की एकसूत्रता है। एकसूत्रता से सफलता

की ओर अन्यथा असफलता की ओर गति है।

- सहअस्तित्व में विरोध नहीं, एकसूत्रता है। अत: सहअस्तित्व मानव जीवन में व्यवहार का लक्ष्य सिद्ध हुआ।
- धर्मपूर्ण विचार तथा न्यायपूर्ण व्यवहार से ही सत्य में अनुभूति होना संभव होती है।
- उन्नति के लिए जो प्रवृत्ति एवं प्रयास है, उसे 'स्पर्धा' तथा इसके विरोध में प्राप्त प्रयास व प्रवृत्ति की 'ईर्ष्या' संज्ञा है। स्पर्धा से हर्ष एवं उत्साह व द्वेष तथा ईर्ष्या से अमर्ष का प्रसव होता है।
- स्वयं में पूर्ण होने के लिए मानव परंपरा में जिज्ञासा और निष्ठा उदय होने की स्थिति में सभी ईर्ष्या, द्वेष शमन होने लगते हैं। जागृत होने पर ईर्ष्या, द्वेष आदि समस्त भ्रमों से मुक्ति हो जाती है।
- संग्रह से लोभ, द्वेष से विरोध, अविद्या से अज्ञान, अभिमान से उद्दण्डता और भय से आतंक का जन्म होता है, जो वैचारिक क्लेश हैं।

  :: द्वेष :- दूसरों के नाश में ही स्व-सुख की कल्पना करना 'द्वेष' है।
- जो स्वयं क्लेशित रहेगा, वह दूसरों को क्लेश पहुँचायेगा ही, क्योंकि यह नियम है कि जिसके पास जो होगा, वह उसे बाँटेगा ही।
- उपरोक्त पाँच अपरिमार्जित प्रवृत्तियों के समाधान के रूप में पाँच परिमार्जित मूल प्रवृत्तियाँ भी हैं, जो असंग्रह (समृद्धि), स्नेह, विद्या, सरलता तथा अभय हैं। इन प्रवृत्तियों से उत्पन्न संपूर्ण संवेग और प्रवृत्ति क्रमश: उदारता, निर्विरोध, यर्थाथ ज्ञान, सहअस्तित्व तथा धैर्य उद्गमित होता है, जिससे हर्ष, प्रसन्नता, उत्साह, तृप्ति, उल्लास तथा आह्लाद की निरंतरता बनी रहती है, जिसकी अनवरत प्रतीक्षा में मानव है।
- अनुभव बोध (संकल्प) से इच्छा, इच्छा से विचार, विचार से आशा, आशा से संवेग, संवेग से क्रिया, क्रिया से अध्ययन तथा अध्ययन से बोध होता है। यह इच्छा तथा क्रिया की क्रम-गति है।
- संग्रह मात्र धन का ही है, जो प्रतीक मूल्य है।
- उत्पादित व संपादित भेद से वस्तुएं हैं।

  :: संपादन :- प्राकृतिक वस्तुओं से उपलब्धि की 'संपादन' संज्ञा है।

  :: उत्पादन :- प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम पूर्वक संपादित वस्तु को मनाकार (इच्छानुरूप आकार) प्रदान करना ही 'उत्पादन' है।

- वस्तु का संग्रह नहीं है, क्योंकि उसका उपयोग व परिणाम निश्चित है (रूपांतरण)।

★ स्व-श्रेष्ठता के मान्यता के आधार पर घृणा, दुर्बलता की तुलना में हिंसा तथा दूसरों के विकास के प्रति ईर्ष्या है, जबकि स्व-श्रेष्ठता के अनुरूप असक्षम को समुचित सहयोग देना ही घृणा के स्थान पर उदारता, अपने को पर-विकासानुरूप, जागृति अनुरूप पाने का प्रयास ही स्पर्धा है तथा दुर्बल की रक्षा करना ही दया है।

- हिंसात्मक कार्य व्यक्ति, परिवार, समाज, वर्ग, जाति, मत, सम्प्रदाय, भाषा तथा राष्ट्र के स्तर-भेद से है, जो द्वन्द्व एवं प्रतिद्वन्द्व के रूप में परिलक्षित होता है।
- हिंसा की प्रतिहिंसा, द्वन्द्व का प्रतिद्वन्द्व, अपराध का प्रतिकार अवश्यम्भावी है। अत: द्वेष कामना किसी भी देश व काल में मानव के जागृति के लिये सहायक नहीं सिद्ध हुई है।

:: अविद्या अथवा अज्ञान - जैसा जिसका रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म है, उसको उसी प्रकार समझने योग्य जागृति के अभाव की 'अविद्या' अथवा 'अज्ञान' संज्ञा है।

:: अभिमान :- स्व-बल, बुद्धि, रूप, पद व धन को श्रेष्ठ तथा अन्य को नेष्ट मानने वाली प्रवृत्ति की 'अभिमान' संज्ञा है । आरोपित मान ही अभिमान है।

- इकाई समष्टि में अंश के रूप में है।
- प्राणभय, पदभय, मानभय तथा धनभय यह भय के चार कारण भेद हैं। प्राण, पद, मान तथा धन यह स्थानांतरण तथा परिवर्तन से मुक्त नहीं है।

  :: प्राणभय :- शरीर के अस्तित्व (जीवन्तता) के विपरीत में जो मृत्यु की कल्पना है, वह 'प्राणभय' है।

  :: पदभय :- एक से अनेक तक पाये जाने वाले अधिकार की 'पद' संज्ञा है तथा इसके विरोध में 'पदभय' संज्ञा है।

  :: मानभय :- यश के विपरीत में या विरोध में 'मानभय' संज्ञा है ।

  :: धनभय :- धन के विरोध की संभावना अथवा स्थिति को 'धनभय' संज्ञा है।

  :: उपरोक्त वर्णित चारों उपलब्धियाँ अर्थात् प्राण, पद, मान और धन सामयिक हैं, जिन्हें स्थायी समझ लेना ही संकट का कारण है । क्योंकि प्राण का हरण, पद का पतन या वियोग, मान का भंग तथा धन का व्यय, यह नियति क्रम सिद्धियाँ हैं।

- अत: मानव के लिये परम लाभ मानवीयता का उपार्जन ही है, जिससे मानव सुखी होता है।

"सर्व शुभ हो"

अध्याय - चौदह

मानव व्यवहार सहज नियम

- मानव व्यवहार में प्रवर्तनशील है। मानव के जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्तावस्था के समस्त व्यवहार में चैतन्य का रहना अनिवार्य है।
- चैतन्य :- आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अस्तित्व की स्वीकृति के साथ इन पाँचों क्रियाओं सहित गठित इकाई की चैतन्य संज्ञा है ।
- चैतन्य पक्ष के अर्थात् जीवन के विकास और जागृति का कारण संस्कार, गुण व स्वभाव है।
- संस्कार अध्ययन, व्यवहाराभ्यास और कर्माभ्यास से है।
- अध्ययन जड़-चैतन्य एवं व्यापक का ही है और यह ज्ञान, विवेक-विज्ञान विधि से ही संपन्न होता है।
- विवेकात्मक अध्ययन से जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व और व्यवहार के नियमों का बोध होता है, साथ ही मानव लक्ष्य व जीवन मूल्य स्पष्ट होता है। इस बोध से उत्तरोत्तर सुसंस्कार परिष्कृत होता है।
- व्यवहारिक नियम मानवीयता के संरक्षण के लक्ष्य से हैं।
    - ★ मानवीयता के संरक्षण का लक्ष्य मानवीय दृष्टि विषय, प्रवृत्ति, मानवीय गुण, स्वभाव और मानवीय व्यवहार में स्पष्ट है, जिससे मानवीयतापूर्ण व्यवहार संपन्न व्यक्ति द्वारा प्रचार, प्रदर्शन तथा प्रेरणा, समर्थ समाज से मानवीयतापूर्ण सामाजिक कार्यक्रम, संरक्षण तथा प्रोत्साहन, नीतिपूर्ण व्यवस्था से ही मानवीयता का समग्र संरक्षणात्मक लक्ष्य पूरा होता है।
- मानव के बहिरंग व्यवहार के लिये सांस्कृतिक व प्राकृतिक भेद से साधन उपलब्ध हैं। मानव द्वारा की जाने वाली कृति (रीति सहित कार्य) का पूर्व-रूप (विचार की स्थिति) ही संस्कार व संस्कृति का स्वरूप है।
- मानवीय संस्कृति रूप, बल, धन एवं पद अनुभव प्रमाण रुप में प्रस्तुत होता है।
- प्राकृतिक साधन खनिज, वनस्पति तथा मानवेतर जीव के जाति-भेद से हैं।

- मानव चैतन्य वर्ग की विकसित इकाई है, इसीलिये इन्हें प्राकृतिक संपदा के सदुपयोग सुरक्षा करने का अथवा भ्रमवश दुरूपयोग करने का अवसर प्राप्त है। क्योंकि विकसित के द्वारा अविकसित का उपयोग सदुपयोग, प्रयोजन सहज प्रमाणित होना और भ्रमवश दुरूपयोग करने की संभावना रहती है। जिसमें मानव उपयोग, सदुपयोग पूर्वक ही सुखी होता है।

- प्राकृतिक संपदा का सदुपयोग से अथवा दुरूपयोग से ऋतु-संतुलन अथवा असंतुलन सिद्ध होता है।

- हर भूमि पर पाया जाने वाला- ऋतुमान, शीतमान, तापमान और वर्षामान-उस भूमि पर स्थित खनिज एवं वनस्पति के अनुपात पर निर्भर करता है, जिसका निर्णय परीक्षण एवं सर्वेक्षण पूर्वक गणित से सिद्ध होता है।

- सामाजिक संतुलन अथवा असंतुलन स्व-धन/पर-धन, स्व-नारी/पर-नारी तथा दया/द्वेष-युक्त विचार सहित किये गये व्यवहार से सिद्ध होता है।

  :: स्व-धन :- प्रतिफल, पारितोषिक तथा पुरस्कार के रूप में प्राप्त धन 'स्व-धन' अन्यथा 'पर-धन' संज्ञा है।

  :: स्व-नारी/स्व-पुरुष :- भौगोलिक स्थिति के अनुसार समाज निर्णीत निर्णय के अनुसार ही 'स्व-नारी तथा स्व-पुरुष' संज्ञा है, अन्यथा 'पर-नारी/पर-पुरुष' संज्ञा है।

  :: दया :- दूसरों के विकास के लिये यथा-संभव सहायक होना तथा उनके विकास में हस्तक्षेप न करना ही 'दया' है। इसके विपरीत में आचरण की 'द्वेष' संज्ञा है।

- जन्म-सिद्ध अधिकार, प्रदत्त अधिकार तथा समयोचित अधिकार भेद से मानव कर्त्तव्य पालन के लिये अधिकार प्राप्त करता है।

- जन्म-सिद्ध अधिकार संबंध के अर्थ में, प्रदत्त अधिकार व्यवस्था-गत सीमा के अर्थ में तथा समयोचित अधिकार संपर्क के अर्थ में है।

  :: संबंध :- माता-पिता एवं पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, पति-पत्नी, साथी-सहयोगी, गुरु-शिष्य तथा मित्र तथा व्यवस्था संबंध के रूप में है।

- प्रदत्त अधिकार :- कुटुंब, समाज तथा व्यवस्था-दत्त भेद से है।

  :: कुटुंब-दत्त अधिकार कुटुंब में कर्तव्यों-दायित्वों के पालन, चरित्र-संरक्षण, प्राण-

पोषण व अर्थोपार्जन के लक्ष्य भेद से है।

:: समाज-दत्त अधिकार समाज-दत्त कर्तव्यों के पालन, गरिमापूर्ण व्यक्तित्व एवम् सार्थक शास्त्र प्रचार तथा सिद्धान्तों के शोध के आशय भेद से है।

:: व्यवस्था-दत्त अधिकार व्यवस्था-दत्त कर्तव्यों का पालन, शास्त्र सिद्धांतों का कुशलता, निपुणता, पाण्डित्य पूर्वक अध्ययन, व्यवहार व कर्माभ्यास में परिपूर्णता और अधिकार पूर्ण व्यक्तित्व पर निर्भर करता है, जिससे सफलता है, अन्यथा में असफलता है ।

- समयोचित अधिकार समय व समीचीन मिलन के अनुसार व्यवहार में संपन्न होता है।
- मानव मात्र में सुख की आशा अपरिवर्तनीय है, जिसकी अपेक्षा में ही चेतना विकास मूल्य शिक्षा से विधि व निषेध स्वीकार होता है।
- सुख एवं दु:ख वैयक्तिक, कौटुंबिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार-नीति पर ही आधारित है।
- मानव में व्यवहार नीति के निर्वाह के लिये छ: दृष्टियाँ पूर्व में वर्णित की गई हैं, जिनमें से मानवीय दृष्टि सम्पन्न व्यवहार से ही एक से अनेक तक सुखी है।
- भ्रमित मानव कर्म करते समय स्वतंत्र और फल भोगते समय परतंत्र होने के कारण ही अमानवीय दृष्टि से भय व प्रलोभन पूर्वक व्यवहार कार्य करता है, फलत: दु:ख भोगता है और स्वयं के जागृति को अवरुद्ध करता है।
- मानव इस सृष्टि में सर्वोच्च विकसित, जागृतिशील व जागृत रूप में प्रमाणित होने योग्य इकाई है। इसीलिये मानव में तीनों इतर सृष्टि यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था एवं जीवावस्था के गुण, स्वभाव एवं धर्म समाविष्ट रहते ही हैं।
- मानव ने बौद्धिक समाधान तथा भौतिक समृद्धि द्वारा सुखी होने की कामना की है।
- भौतिक समृद्धि वैज्ञानिक नियमों के अध्ययन और तदनुसार कर्माभ्यास से ही संभव है तथा बौद्धिक समाधान विवेकपूर्ण नियमों के अध्ययन एवं तदनुसार नियंत्रण से ही संभव है।
- स्वस्थ व्यवहार के लिए स्वस्थ शरीर का भी महत्वपूर्ण स्थान है, जो प्राण के विधिवत् नियन्त्रण से ही संभव है।
- अन्न से प्राण-पोषण, व्यवसाय से समृद्धि, संयम से अपव्यय का निरोध, वैज्ञानिक समझ

से भौतिक दर्शन, विवेकात्मक समझ से बौद्धिक दर्शन, व्यवहारिक समझ से समाज दर्शन, अर्थशास्त्र की समझ से व्यवस्था का दर्शन तथा पूर्ण समाधान से व्यापकता में अनुभूति एवं दर्शन है।

- प्राण एक वायु विशेष है, जिससे हृदय क्रिया के लिये प्रेरणा पाता है। वायु एक से अधिक विरल पदार्थों के उत्सव अथवा संघर्ष से उत्पन्न, वेग व तरंग सहित पदार्थ-राशि है। प्राण के पाँच भेद हैं:- (1) प्राण, (2) अपान, (3) व्यान, (4) उदान और (5) समान।

- **प्राणवायु** शरीर व प्राणकोशा के लिये प्रेरणापूर्वक बल-पोषक, **अपान वायु** अनावश्यक व बल-शोषक, **व्यान वायु** शरीर के लिये उपयोगात्मक, **उदानवायु** शरीरके लिये संचालनात्मक तथा **समानवायु** शरीर के लिये विकासात्मक है। इन पाँचों वायु का संतुलन संबंधित चैतन्य इकाई के विचार, आहार, विहार व व्यवहार की रीति, नीति एवं परिस्थिति पर निर्भर करता है।

- अन्न-आहार एवं औषधि के रूप में है।

  :: आहार :- ग्रहण कर लेने योग्य तत्व जिसमें हों, उसकी 'आहार' संज्ञा है।

  :: औषधि :- शारीरिक व मानसिक विकृति (रोग) के निराकरण (उपचार) हेतु प्रयुक्त पदार्थ की 'औषधि' संज्ञा है।

  :: अन्न :- शारीरिक पोषण एवं परिवर्धन हेतु प्रयुक्त पदार्थ की 'अन्न' संज्ञा है।

- प्राप्त कर्त्तव्य; वांछित, प्रेरित व सूचित भेद से हैं।

- प्राप्त कर्त्तव्य का निश्चयपूर्वक किया गया मनन, चिंतन, विचार, चेष्टा, प्रयोग, प्रयास, व्यवसाय व अनुसंधान क्रिया ही 'निष्ठा' है। अन्य शब्दों में निश्चित क्रिया की पूर्णता के लिये पाये जाने वाले वैचारिक व शारीरिक योग की निरंतरता ही निष्ठा है।

- निष्ठा के फलस्वरूप ही सामान्याकाँक्षा, महत्वाकाँक्षा संबंधी वस्तुएँ; व्यक्ति के रूप में समाधान व अनुभूति के अर्थ में उपलब्धियों हैं। सामान्याकाँक्षा, महत्वाकाँक्षा संबंधी वस्तुएं ही धन है। धन समाज की संपत्ति है। संपत्ति जड़ पक्ष ही है और जड़ पक्ष के लिए ही है तथा समाधान और अनुभूति चैतन्य की एवं चैतन्य के लिए ही है।

  * **धन समाज की संपत्ति का तात्पर्य :-** सामान्य आकाँक्षा और महत्वाकाँक्षा संबंधी वस्तुएं होना स्पष्ट है। यही उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशील होने के लिये संपूर्ण द्रव्य है। उपयोग परस्परता में होता है। एक से अधिक एकत्रित हुए बिना

परस्परता होती नहीं। यही एक से अधिक होना परिवार (कुटुम्ब) अथवा समाज है। यही विशाल होते-होते संपूर्ण मानव एक इकाई के रूप में होना अखंड समाज है। इस प्रकार अखंड समाज के अंगभूत एक परिवार व एक परिवार के अंगभूत एक व्यक्ति होना पाया जाता है। कोई भी वस्तु का उत्पादन और उपयोग, सदुपयोग कार्य में एक से अधिक व्यक्ति का होना आवश्यक है। इस प्रकार संपूर्ण धन समाज में है, समाज से है, समाज के लिए है। भ्रम वश ही तेरा, मेरा, व्यैक्तिक, एकान्तिक ये सब परिकल्पनाओं में मानव सुख पाने की कल्पना व प्रयत्न करता है। यह सार्थक नहीं हुआ। इसे हर विवेकशील व्यक्ति सर्वेक्षण कर सकता है।

:: विकार :- आवेशित गति

:: विपाक :-आवेशित गति का परिणाम

:: व्यंजना :- प्रभावित होना

- कारण, गुण और गणितानुक्रम न्याय से प्राप्त निर्णय की 'सिद्धांत' संज्ञा है तथा सिद्धांत से ही किसी भी क्रिया का बोध होता है।
- काल, विस्तार तथा रचना-भेद की गणना गणित से है।
- सम,विषम तथा मध्यस्थ भेद से गुण की प्रक्रिया है।
- घटना के पूर्व-रूप को 'सापेक्ष-कारण' संज्ञा है।

:: काल :- क्रिया की अवधि की 'काल' संज्ञा है।

:: रचना :- पदार्थ की अवधि की 'रचना या वस्तु' संज्ञा है, जिसकी गणना की जाती है।

:: विस्तार :- रचना की अवधि की 'विस्तार'संज्ञा है।

:: सम :- उद्भववादी गुणों की 'सम' संज्ञा है।

:: विषम :- प्रलयवादी गुणों की 'विषम' संज्ञा है।

:: मध्यस्थ :- विभववादी गुणों की 'मध्यस्थ' संज्ञा है।

★ सम, विषम तथा मध्यस्थ गुणों को ही क्रमशः रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण संज्ञा से भी जाना जाता है।

- संपूर्ण परमाणुओं में पाई जाने वाली क्रिया के लिए प्राप्त ऊर्जा रूपी सत्ता की निरपेक्ष कारण संज्ञा है। निरपेक्ष सत्ता का तात्पर्य जिसका उत्पत्ति क्रम का कारण न हो और नित्य

स्थिति में हो।

- परमाणु-व्यूहों में सहवास से जो प्रभाव-विशेष है, क्रिया, प्रतिक्रिया एवं परिपाक है उसे 'सापेक्ष कारण' संज्ञा है।
- अनेक अणु-परमाणुओं से संगठित पिण्ड व उनकी क्रिया को 'स्थूल-क्रिया' और परमाण्विक क्रिया को 'सूक्ष्म-क्रिया' संज्ञा है ।
- गति, कंपन और तरंग भेद से सूक्ष्म गतियाँ तथा क्रियाएँ हैं।
- इकाई में कंपन क्रिया का बढ़ जाना ही विकास की घटना है, तथा इसके विपरीत में ह्रास की घटना है।
- चैतन्य इकाई में कम्पन की अधिकता ही विशेषता है।
- ज्ञान में पारदर्शकता के अंशानुसार चैतन्य इकाई भ्रांत, भ्रांताभ्रान्त तथा निर्भ्रान्त स्थिति में है।
- जड़ता में पारदर्शकता से **अंधकार** का अभाव, पारभासिकता से **अंधकार** का आंशिकता में अभाव तथा अपारदर्शकता से **अंधकार** है। अंधकार मूलतः छाया ही है।
- चैतन्य इकाई में ज्ञान पारदर्शी होने के फलस्वरूप अज्ञान का अभाव हो जाता है, जिससे यथार्थ दर्शन होता है, तथा सर्वत्र ज्ञान ही प्रतिष्ठित परिलक्षित होता है। चैतन्य इकाई के विकास एवं जागृति की यह सीमा 'निर्भ्रान्त अवस्था' है।
- भ्रमित चैतन्य इकाई ज्ञान में पारभासी होने के फलस्वरूप अज्ञान का पूर्ण अभाव नहीं होता, पर साथ ही साथ ज्ञान का भास होने लगता है, जिससे कभी-कभी यथार्थ का भास भी होता है, तथा कभी-कभी अतिव्याप्ति, अव्याप्ति अथवा अनाव्याप्ति दोष सहित दर्शन होने लगता है। यही 'भ्रान्त' अवस्था है।

  अनुभव सम्पन्नता के अनंतर जब तक वित्तेषणा पुत्रेषणा में जीता है, तब तक भ्रांताभ्रांत अवस्था है।
- भ्रमित चैतन्य इकाई में ज्ञान के अपारदर्शी होने के फलस्वरूप ही अज्ञान विवशता के रूप में बना रहता है, अर्थात् अतिव्याप्ति, अव्याप्ति या अनाव्याप्ति दोष सहित ही स्वीकृति होती है, यही 'भ्रान्त' अवस्था है।

  :: अतिव्याप्ति :- जो जैसा है, उससे अधिक समझना।

:: अव्याप्ति :- जो जैसा है, उसे वैसा न समझना।

:: अनाव्याप्ति :- जो जैसा है, उसे उससे कम समझना।

- जागृति की परिपूर्णता पारदर्शकता से ही सिद्ध होती है। मानव के लिए यह जागृति ज्ञान की पारदर्शकता से सिद्ध होती है।
- आकार, प्रकार, श्वास, प्रश्वास, आस्वादन तथा उत्पादन के एक-सूत्रात्मक तथा विश्रृंखलात्मक भेद से ही क्रियायें परिलक्षित हैं।
- भ्रमित मानव में मनाकृति तथा कल्पनात्मक गति की सम्मिलित क्रिया 'आसक्ति' है, जिसमें आकर्षण या प्रतिकर्षण समाविष्ट रहता है ।
- जड़-चैतन्य परमाणु में आकर्षण तथा प्रत्याकर्षण से कंपन है। जड़ प्रकृति में आकर्षण गठन और परमाणु संगठन और अणुरचना के रूप में देखने को मिलता है। आकर्षण-प्रत्याकर्षण विधि से कम्पन होना स्वाभाविक है। भ्रमित चैतन्य प्रकृति में आकर्षण प्रलोभन के रूप में, प्रत्याकर्षण भय के रूप में होता है। जागृत जीवन में आकर्षण समाधान के अर्थ में और विकर्षण समस्या के साथ होता है। आकर्षण, प्रत्याकर्षण क्रिया के साथ जीवन में कम्पनात्मक गति वर्तमान रहती ही है। जीवन परमाणु में कम्पनात्मक गति पाँच अक्षय बल एवं शक्ति के रूप में प्रकट रहती है।
- प्रत्याकर्षण और आकर्षण से वर्तुलात्मक गति है। जड़-चैतन्य परमाणुओं में परिवेशों में घूर्णन व वर्तुलात्मक गति बनी रहती है। मध्यांश में केवल घूर्णन गति बनी रहती है।
- मेधस पर कंपन-प्रदत्त तरंग से ज्ञान का उद्घाटन ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है।
- जीवन द्वारा संकेत रूपी गति-प्रदत्त तरंग से संवेदनशीलता और संज्ञानशीलताएँ व्यवहार में स्पष्ट होते हैं।
- प्राण और मन के संयुक्त (विवशतापूर्ण आघात) प्रेरणा रूपी कंपन से संवेग है, अथवा इसे ऐसा समझें कि संवेग मन के प्रभाव से संपन्न प्राणवायु-तरंग है, जिससे इंद्रिय-ज्ञान या क्रियाएँ संपन्न होती हैं।
- हर जड़ क्रिया से प्राप्त जो स्वीकृति पक्ष है, वह मन का है, जिसके लिए विह्वलता-पूर्वक की गई क्रिया के बदले में पाई गई उपलब्धियाँ सुख एवं दु:ख हैं।
- जागृत मानव के मनाकृति से उत्पादन रूपी कृतियाँ, कृतियों से उपयोगी आकृति, उपयोगी आकृतियों से कुशलता/निपुणता का प्रमाण, कुशलता/निपुणता से सम्वेग, सम्वेग से

समाधान, समाधान से परिस्थितियाँ, परिस्थिति से अभ्युदय, अभ्युदय से योग, योग से सुख, शांति, संतोष; सुख, शांति, संतोष ही रत्यात्मक रति, रत्यात्मक रति ही मन: स्वस्थता तथा मन:स्वस्थता ही निर्भ्रमता है। जागृत मानव उपरोक्त क्रम विधि से प्रमाणित होता है ।

:: कृति :- विचारानुरूप की गई क्रिया की 'कृति' संज्ञा है।

:: आकृति :- क्रिया द्वारा अनेक अणु-परमाणु समूहों के संगठित रूप की 'आकृति' संज्ञा है।

:: मानवीयतापूर्ण तथा अतिमानवीयतापूर्ण विचारों के अनुरूप कार्य की 'सुकृति' तथा अमानवीयतावादी विचारों के अनुरूप किये गये कार्य की 'दुष्कृति' संज्ञा है ।

:: आसक्ति:- क्रिया के लिये जो आकर्षण है, उसकी 'आसक्ति' संज्ञा है।

:: सम्वेग :- जागृति के प्रति उत्कण्ठा की 'सम्वेग' संज्ञा है।

:: परिस्थिति :- समाधान से युक्त मानसिक तथा शारीरिक अवस्था की 'परिस्थिति' संज्ञा है।

:: योग :- स्वयम् में जिसका अभाव हो या अभाव प्रतीत होता हो, दूसरें में उसी की समृद्धि (स्वभाव) हो, ऐसे उभय-सान्निध्य की 'योग' संज्ञा है।

:: रति :- उपरोक्तानुसार प्राप्त उभय-सान्निध्य, मध्यस्थ-आकर्षण एवं प्रत्याकर्षण के प्रबल वेग की 'रति' संज्ञा है।

:: रत्यात्मक रति :- रति की निरंतरता से 'रत्यात्मक रति' है।

:: विरत्यात्मक रति :- रति की निरंतरता जिसमें नहीं है।

:: वियोग :- रति खंडन की 'वियोग' संज्ञा है।

:: मनाकृति :- योग वियोग से प्राप्त जानकारी सहित पुनर्कल्पना की 'मनाकृति' संज्ञा है।

- विचार के अभाव में रति क्रिया सिद्ध नहीं है।
- जड़ के साथ रति क्रिया क्षणिक तथा अस्थाई, वैचारिक रति दीर्घकालिक तथा सत्य रति नित्यकालिक है जो केवल अनुभव और अनुभव की निरंतरता है।
- मृद, पाषाण, मणि और धातु व उसके विकार को 'पदार्थाकार', वनस्पति में पाई जाने वाली प्राण कोषाओं से रचित रचनाओं को 'प्राणाकार', पशु-पक्षी में पाई जाने वाली

आशा को 'जीवाकार' और मानव में पाई जाने वाली क्रिया मात्र के प्रति दर्शन योग्य क्षमता सम्पन्न मन, वृत्ति, चित्त व बुद्धि को 'ज्ञानाकार' संज्ञा है।

- मूल्य और मूल्यांकन प्रक्रिया की 'भाव-क्रिया' संज्ञा है, जो यथार्थ एवं अयथार्थ भेद से व्यवहृत है, जिसका कारण मूल्यांकन करने वाली इकाई के जागृति एवं भ्रम रूप में भेद है।
- जागृति से ही पूर्ण समझ सहित सही मूल्यांकन होता है अन्यथा अवमूल्यन या अधिमूल्यन होता है ।
- मानव अपने जागृति के स्तर से तथा उसके अनुरूप ही मूल्यांकन क्रिया करता है।
- हृदय और पाँच इन्द्रियों से संबंधित विषयों के प्रति जो आसक्ति या अनासक्ति है, उसी के आधार पर ही मानव जीवन की जागृत अवस्था का निर्णय है। मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा के संयुक्त क्रियाकलाप में जागृति प्रमाणित होती है।
- आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन यह चार विषय हृदय का; स्वागत भाव एवं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होने वाले आस्वादन में जो सुख एवं दुःख पक्ष है वह मन का; न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्य निर्णय वृत्ति का; रूप, गुण, स्वभाव मात्र का तथा सम, विषम, मध्यस्थ ज्ञान का चित्र रचना चित्त का और काल, क्रिया तथा सत्य का बोध बुद्धि का और सहअस्तित्व में अनुभव आत्मा का स्वत्व है।
- शरीर की हर क्रिया और व्यवहार-समुच्चय विचार-पक्ष के योग से ही है, जिसके लिये पंचेन्द्रियाँ माध्यम हैं।
- मानव ने अपनी सफलता का प्रयास स्वार्थ, परार्थ तथा परमार्थ मात्र से किया है।
- प्राण का विषय हृदय, हृदय का विषय इंद्रिय तथा इंद्रिय का विषय व्यवहार (कर्म) व भोग है। प्राण, हृदय को; हृदय, इंद्रियों को; इंद्रियाँ, व्यवहार व भोग को प्रेरित करते हैं।
- शरीर, हृदय एवं प्राण समूह को 'स्थूल पिण्ड' या 'स्थूल शरीर', मन, वृत्ति एवं चित्त को 'सूक्ष्म शरीर' और बुद्धि एवं आत्मा को 'कारण शरीर' संज्ञा है। यहाँ शरीर का तात्पर्य क्रिया से है।
- बुद्धि द्वारा बोध की क्रिया आत्माभिमुख विधि से जागृति को और भ्रमवश विमुख रह कर समस्या का कारण बना रहता है। इसी को जागृति व भ्रम संज्ञा है।
- आत्मा से विमुख बुद्धि ही 'अहंकार' है।

- आत्मा के संकेत-ग्रहण से वंचित रहना ही 'आत्मा विमुखता' है ।
- कारण एवं सूक्ष्म शरीर के अनुसार इच्छाएँ हैं, कारण और सूक्ष्म क्रिया अविभाज्य है। तथा सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर के अनुसार व्यवहार कार्य है ।
- स्थूल पिण्ड का योग सूक्ष्म से प्राण के द्वारा है।
- सूक्ष्म एवं कारण शरीर का योग चित्त के द्वारा है। कारण एवं सूक्ष्म शरीर (क्रिया) अविभाज्य है।
- जागृत जीवन में आत्मा अनवरत ज्ञान में ओतप्रोत है।
- विषय-वासनावश मानव में संघर्ष है। ईषणात्रय में जन बल व धनबल आवश्यकतावश व्यवस्था में प्रवृत्ति स्पष्ट है। व्यवस्था के मूल में अध्ययन व प्रयोग है, जिससे ही विकास और जागृति का प्रमाण संभव हुआ है।
- ईर्ष्या तथा द्वेष के मूल में भ्रम ही है और ह्रास की ओर गति है।
- संकीर्णता में प्रयुक्त अर्थ की **स्वार्थ,** विशालता में प्रयोजित अर्थ की **परार्थ** तथा सार्वभौमिकता के अर्थ में प्रयुक्त अर्थ **परमार्थ** है ।
- बल, धन, पद तथा यश के भेद से उपलब्धियाँ (लाभ) हैं। विज्ञान एवं विवेक के भेद से अध्ययन है, जो बुद्धि की क्रिया है। रूप जन्म-सिद्ध है ही।
- पात्र एवं कुपात्र को प्रदत्त पद एवं अधिकार-भेद से नियोजन है।
- संघर्ष व उत्पादन-भेद से बल की प्रयुक्ति है।
- उपभोग, सदुपयोग तथा उत्पादन-भेद से अर्थ का नियोजन है।
- लोक एवं लोकेश भेद से लक्ष्य है।
- एक मानव से अनंत मानव तक किए गए समस्त व्यवहारों व कार्यों से समस्या या समाधान की ही उपलब्धि है।
- हृदय तृप्ति के लिए; प्राण बल के लिए; मन सुख के लिए; वृत्ति शांति के लिए; चित्त संतोष के लिए; बुद्धि आंनद के लिये; आत्मा अनुभव परमानन्द के लिए आतुर, कातुर आकांक्षित एवं प्रतीक्षित हैं।
- बुद्धि में पूर्ण बोध होने के साथ-साथ ही आत्मा में अनुभव होना पाया जाता है।

- आत्मा (स्व-स्वरूप) पूर्ण, मध्यस्थ, व नित्य शांत है, इसीलिए उसमें या उस पर सम या विषम का आक्रमण सिद्ध नहीं होता है।

- आत्म-तत्व (स्व-स्वरूप) को भी साम्य-सत्ता अनवरत सुलभ एवं एक सी प्राप्त है, जिसको वह अनुभव करने में सक्षम है, इसीलिए आत्मा में विकार अर्थात्, सम-विषमात्मक क्रियाएं नहीं पाई जाती। विकार और विषमता अपेक्षाकृत परिमाण, क्रिया एवं सम, विषम शक्ति में ही पाए जाते हैं।

- मन के पूर्वापरानुषंगी प्रभाव एवं दबाव भेद से आसक्ति, विवशता एवं प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, जिसके अनुसार ही क्रिया फल परिणाम सम्पन्न होता है।

- अनुक्रम से प्राप्त समझदारी की 'अनुभव' संज्ञा है।

  :: पूर्वापर :- पर का तात्पर्य शरीरमूलक, पूर्व अर्थात् अनुभव मूलक आत्मानुषंगी।

  :: अनुक्रम :- क्रिया-प्रक्रिया परिणाम, परिवर्तन, परिमार्जन के पूर्ण चक्र को 'अनुक्रम' संज्ञा है।

- मन से पूर्व अर्थात् वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा से प्राप्त प्रेरणा को न्याय सहज 'पूर्वानुक्रम' तथा संवेदना (प्राण) से प्राप्त दबाव विवशता और प्रवृत्ति को 'परानुक्रम' संज्ञा है। पूर्वानुक्रम एवं आसक्ति रूपी परानुक्रम भेद के आधार पर ही मानवीय एवं अमानवीय व्यवहार का वर्गीकरण है।

- मन जब क्रम से प्राण, हृदय, शरीर तथा व्यवहार से दबाव पाता है, तब इसे 'परानुक्रम' संज्ञा है। परानुक्रम से प्राप्त दबाव के कारण चयन भी तदनुसार होता है।

- मन प्राण से मिलकर बल का; प्राण, हृदय से मिलकर तृप्ति का; हृदय शरीर के द्वारा मिलकर विषयों का सेवन करने में व्यस्त है, जिसकी पूर्ति नहीं है। इसीलिये मानव ने वर्णित क्रिया-सीमांत तक व्यस्तता एवं श्रम का आभास किया है।

- पूर्वानुशासित स्थिति में मन एवं वृत्ति की निर्विरोधिता के फलस्वरूप ही **सुख** की अनुभूति उपलब्ध होती है। वृत्ति व चित्त की निर्विरोधिता में **शांति** की, चित्त व बुद्धि की निर्विरोधिता में **संतोष,** बुद्धि और आत्मा में निर्विरोधिता **आनंद** के रूप में अनुभूत होता है। सुख, शांति, संतोष, आनंद की अनुभूति ही मन:स्वस्थता है।

- मन: स्वस्थता सहित किया गया मनाकार साकार, सार्थक और प्रयोजनशील होना पाया जाता है। अस्तु मनाकार भेद से प्रवृत्ति, प्रवृत्ति भेद से भ्रांत निर्भ्रांत अवस्था, अवस्था भेद

से लक्ष्य, लक्ष्य भेद से नियंत्रण, नियंत्रण भेद से नीति, नीति भेद से निष्ठा, निष्ठा भेद से आशय तथा आशय भेद से मन: स्वस्थता के आधार पर मनाकार साकार होता है।

- स्थिति व क्रिया मात्र को जानने में जो अपूर्णता है, वह रहस्य है।
- रहस्यता का निवारण मात्र यथार्थ दर्शन से ही है।
- यथार्थ दर्शन से 'निश्चय' है, अन्यथा अनिश्चयवादी प्रवृत्ति के कारण संशय बना ही रहता है।
- विवेक व विज्ञान सम्मत विचार तथा क्रिया का परिपूर्ण ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है।

:: परिपूर्ण ज्ञान :- क्रिया के नियम एवं प्रक्रिया की समझ, विचार के कारण तथा नियम की समझ को 'परिपूर्ण ज्ञान' संज्ञा है।

:- परिपूर्ण ज्ञान मात्र विज्ञान एवं विवेक के अध्ययन से सम्पन्न होता है जिसमें पारंगत होने पर एक से अधिक तक का जीवन सफल होता है।

- सह-अस्तित्व ज्ञान सम्मत विज्ञान एवं विवेक के अध्ययन से ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होता है।

:: परिपाक :- किसी घटना के लिए की गई विविध प्रक्रिया का संयुक्त परिणाम फल ही परिपाक है।

- पदार्थ, वनस्पति, जीव एवं मानवों में पाई जाने वाली घटनाएं क्रमश: परिणामकृत, ऋतुक्रम, विषयक्रम तथा ईषणाक्रम से ही होती है।
- सापेक्षता; दृष्टि, दृश्य और दर्शन के भेद से है।
- दृष्टा, महत्तत्व, पुरुष, केन्द्रीय, स्वस्वरूप, अधिष्ठान, सहज, सर्वज्ञ, आत्मा यह सब एक ही की पर्यायवाची संज्ञाएं हैं। इन सब संज्ञाओं से संबोधित या निर्देशित एक ही तत्व है, वह चैतन्य परमाणु सहज मध्यांश है।
- प्रकृति में ही भौतिक रासायनिक वस्तु, वनस्पति तथा संवेदना व संज्ञानीयता की प्रेरणा, कल्पना, क्रिया-प्रतिक्रिया, प्रभाव,व्यंजना, क्रांति तथा समाधान जैसी परिपाकात्मक प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।
- समस्त पदार्थ परिणाम-घटना-क्रम से, समस्त वनस्पति ऋतु-घटना-क्रम से, समस्त

जीव विषय-घटना-क्रम से तथा समस्त मानव जीवन संस्कार-घटना-क्रम से व्यस्त है।

- प्रतिक्रांति से भ्रांति तथा कर्त्तव्य से शांति है।
- मध्यस्थ, केन्द्रीय होने के कारण ही ज्ञान का स्पर्श सर्वतोमुखी समाधान रूप में प्राप्त करता है। आत्मा की मध्यस्थता, मात्र व्यवहारिक व वैचारिक एकसूत्रता से प्रमाणित है।
- विहित प्रवृत्तियों से समाधान तथा अविहित प्रवृत्तियों से समस्या का प्रसव होता है।

:: समाधान से तात्पर्य है विवेक विज्ञान सम्मत विचार व प्रवृत्तियाँ। विषमता सहित विचार समस्या है, यही क्षोभ है। क्षोभ का तात्पर्य दूसरों के प्रभाव से क्षुब्ध हो जाना ही है अथवा अपने व्यवहार से दूसरों को क्षुब्ध करना ही है।

:: मोह का तात्पर्य है दूसरों के प्रभाव में स्वयं का खो जाना।

- रूप, बल एवं बुद्धि का विकास आहार, विहार व व्यवहार की संयमता पर है।
- लोक सेवन से 'प्रेय' और लोकेशानुभूति (सहअस्तित्व में अनुभूति) से 'श्रेय' सिद्धियाँ उपलब्ध होती है।
- बदलने वाली दृष्टि की 'अनित्य दृष्टि' संज्ञा है। ये प्रियाप्रिय, हिताहित व लाभालाभ दृष्टियाँ हैं। न बदलने वाली दृष्टि की 'नित्य दृष्टि' संज्ञा है। ये न्याय, धर्म व सत्य दृष्टियाँ हैं। बदलने वाली दृष्टि से क्षोभ होना अनिवार्य एवं स्वाभाविक है।
- सत्य निरूपण कला की 'पूर्ण कला' तथा इससे भिन्न की 'अपूर्ण कला' संज्ञा है।
- न्याय से पद, उदारता से धन, दया पूर्वक बल, सच्चरित्रता से रूप तथा विज्ञान व विवेक से बुद्धि, निष्ठा से अध्ययन, कर्त्तव्य से सेवा, संतोष से तप, स्नेह से लोक, प्रेम से लोकेश, आज्ञा पालन से रोगी एवं बालक की सफलता एवं कल्याण सिद्ध है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - पंद्रह
मानव सहज न्याय

- मानव समुदाय न्याय तथा अवसर भेद से प्रवृत्त रहना स्पष्ट है।

  :: आश्रय:- जिससे जिसका अस्तित्व या व्यवहार नियंत्रित है, वह उसका 'आश्रय' है।

- आश्रित के आश्रय पाने के नियम की 'नियंत्रण' संज्ञा है।

- न्यायाश्रित मानव मात्र सत्यासत्य, धर्माधर्म तथा न्यायान्याय के ज्ञाता, व्यवहारिक एकसूत्रता स्थापित करने में कुशल व निर्दोष जीवन में रत रहते हैं, जिससे ही मानवीयता संरक्षित है।

- अवसरवादी मानव प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ से ग्रसित तथा व्यवहार में दिखावा करते हैं। जिनसे असंतुष्टि, व्याकुलता व अनिश्चयता की पीड़ा ही उपलब्ध होती है, क्योंकि अज्ञान की मान्यताएँ शीघ्र परिवर्तनशील है। अवसरवादी मानव के कर्त्तव्य का लक्ष्य भी सुख है, पर वह इस प्रणाली से सफल नहीं होता।

- व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय जीवन में क्लेश, कलह व आतंक उत्पन्न करने वाली समस्त प्रवृत्ति को 'सदोष विचार' या 'अवसरवादी विचार' और हर्ष, उत्साह, सहअस्तित्व, निर्भ्रमता को उत्पन्न करने वाले कार्य एवं विचार को 'निर्दोष विचार' या 'न्यायवादी विचार' की संज्ञा है।

- क्लेश, कलह व आतंक का कारण केवल संग्रह, द्वेष, अज्ञान अभिमान एवं भय है।

- अवसरवादी विचार या सदोष विचार - व्यवहार, हृदय, प्राण, मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि के परस्पर विरोधी विचार हैं, जिससे क्षोभ, खेद, तृष्णा, दु:ख, अशांति तथा असंतोष की पीड़ा होती है।

- व्यवहार व हृदय के परस्पर विरोध से **क्षोभ,** हृदय व प्राण के परस्पर विरोध से **खेद,** प्राण व मन के परस्पर विरोध से **तृषा,** मन व वृत्ति के परस्पर विरोध से **दु:ख** का, वृत्ति व चित्त के परस्पर विरोध से **अशांति,** चित्त व बुद्धि के परस्पर विरोध से **असंतोष** तथा बुद्धि के आत्मविमुख होने से अहंकार है।

- व्यवहार; शरीर, हृदय, प्राण व मनाश्रित हैं। फलत: मन: स्थिति क्रम से प्राण, हृदय व कर्म के आकार से कृति-आकृति होती है। मन ही मेधस पर प्रभावपूर्वक आशानुरूप आकार का संकेत करता है तथा बदले में सुखास्वादन चाहता है।

- व्यवहार व हृदय, हृदय व प्राण, प्राण व मन, वृत्ति व मन तथा विरोध व निर्विरोध का प्रभाव मन पर ही है, क्योंकि मन ही रसास्वादन करने वाली जीवन क्रिया है। फलत: मन ही व्यवहार, हृदय, प्राण, वृत्ति, विरोधवश या निर्विरोध से प्राप्त दु:ख व सुख का भोक्ता है।

- कारण क्रिया के अनुकूल सूक्ष्म, सूक्ष्म क्रिया के अनुकूल स्थूल व्यवहार क्रम से जागृति तथा फलस्वरूप समृद्धि व समाधान तथा इसके विपरीत क्रम से ह्रास तथा फलस्वरूप असमृद्धि व समस्या है ।

    :: कारण क्रिया :- आत्मा एवं बुद्धि का सम्मिलित क्रिया की 'कारण' क्रिया संज्ञा है।

    :: सूक्ष्म क्रिया :- चित्त, वृत्ति व मन के सम्मिलित क्रिया की 'सूक्ष्म क्रिया' संज्ञा है।

    :: स्थूल शरीर पिण्ड :- पँचेन्द्रियों से युक्त काया (शरीर) की 'स्थूल पिण्ड' संज्ञा है।

- कारण क्रिया के बिना सूक्ष्म क्रिया तथा कारण व सूक्ष्म क्रिया के बिना स्थूल पिण्ड रूपी शरीर का क्रिया कलाप नहीं है।

* मानव सम्पर्क व संबंध में निहित मूल्यों का निर्वाह न होने से ही क्षोभ, विरोध व कठोरता का प्रसव; भौतिक क्रिया में क्षोभ से असमृद्धि व अभाव का प्रसव; शरीर क्षोभ से रोग व क्षीणता का प्रसव; प्राण क्षोभ से उद्विगनता व निरुत्साह का प्रसव; मन:क्षोभ से असहअस्तित्व व दु:ख का प्रसव; वृति क्षोभ से आलस्य प्रमाद व अशांति का प्रसव; चित क्षोभ से कृत्रिमता (दिखावा), रहस्यता व असंतोष का प्रसव; बोध रहित बुद्धि से भ्रांति, अज्ञान, अभिमान व कृतघ्नता का प्रसव होता है। अवसादवादी व्यवहार ही क्षोभ का कारण है जो गलती और अपराध से मुक्त नहीं है।

- अवसरवादिता के शीघ्र परिणामवादी होने के कारण इसके व्यवहार में एकसूत्रता का अभाव रहता है । एकसूत्रता के अभाव में आत्मोन्मुख बुद्धि न होने से बुद्धि क्षोभ, बुद्धि अनुयायी चित्त न होने से चित्त क्षोभ, चित्त अनुयायी वृत्ति न होने वृत्ति क्षोभ, वृत्ति अनुयायी मन न होने से मन: क्षोभ; मनोनुकूल प्राण, हृदय, शरीर व क्रिया न होने से संपर्कात्मक व संबंधात्मक व्यवहार में मन: क्षोभ होता है।

- **बुद्धि क्षुब्ध (अहंकार)** मानव अपने ज्ञान को श्रेष्ठ, चित्त क्षुब्ध मानव अपने तर्क को श्रेष्ठ, वृत्ति क्षुब्ध मानव विचार व कार्य योजना को श्रेष्ठ मन क्षुब्ध विषय भोग को श्रेष्ठ समझता है। फलस्वरूप ही वादविवाद उत्पन्न होता है। अत: यह सिद्ध होता है कि अवसरवादिता ही वाद-विवाद का मूल कारण है क्योंकि यह अपराध से मुक्त नहीं है।
- सत्य बोध न हो पाना ही बुद्धि क्षोभ है।
- वाद-विवाद के लिए दोनों पक्षों का अथवा एक पक्ष का गलत (भ्रम में) रहना आवश्यक है, क्योंकि दोनों पक्ष सही हों और वादविवाद हो ऐसा संभव नहीं है।
- अवसरवादी व्यवहार का मूल कारण बुद्धि का अथवा विज्ञानमय कोष व जागृति का पूर्ण विकसित न होना है।
    - ★ विज्ञानमय कोष के विकसित नहीं होने से ही भ्रम तथा अज्ञान है जो अवसरवादिता का द्योतक है। भ्रम तथा अज्ञान के बिना गलती संभव नहीं है। चैतन्य इकाई की अपारदर्शकता अपूर्ण विकास ही अज्ञान है। अपारदर्शकता का फल ही है विकासवादी नियमों की समझ न होना तथा फलस्वरूप ही अवसरवादिता है।
    - ★ कार्य करने की स्वतंत्रता के कारण ही मानव को न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्यात्मक विचार, इच्छा, संकल्पपूर्वक व्यवहार, विचार एवं अनुभव करने का अवसर प्राप्त है।
    - ★ जड़ सृष्टि में बीज, परिणाम एवं प्राण के भेद से और चैतन्य जीवन में बीज, आशा व इच्छा के रूप में वंशानुषंगी, संस्कारानुषंगी भेद से है। मानव में बीज संस्कारों के रूप में मन, वृत्ति, चित्त व बुद्धि में स्थापित होना पाया जाता है, क्योंकि हर भ्रमित व्यक्ति के बौद्धिक स्तर में अंतर है। बौद्धिक क्षमता का भेद ही मानव क्रियाकलाप में वैविध्यता का मूल कारण है। बौद्धिक वैविध्यता के कारण ही मानव न्यायवादी तथा अवसरवादी व्यवहार अपने जागृति के अनुसार अपनाता है।
- बीज मात्र उद्‌भव के अनंतर प्रलय (बीज) की ओर तथा प्रलय (बीज) के अनंतर उद्‌भव की ओर गतिमान है।
- बुद्धि में प्राप्त अनुभवगामी अवधारणाएं (संस्कार) क्रम से विचार व क्रिया में अभिव्यक्ति होती है और क्रिया से प्राप्त विचार पुन: अनुमान सहित अवधारणा (संस्कार) में स्थित होते हैं।

★ अनुभव मूलक बोध ही धारणा है। यही संस्कार है।

- समस्त मानव की धारणा मात्र 'विश्राम' ही है। समस्त श्रम जो है, वह विश्राम के लिए ही है।
- विश्राम योग्य अवधारणा मात्र न्याय पूर्ण व्यवहार से, धर्म पूर्ण विचार से तथा सत्य में अनुभूति सहित सम्भव होता है।
- सत्य के आश्रय में धर्म तथा न्याय है ही।
- न्यायाश्रित मानवीय इकाई (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व) द्वारा संपादित समस्त क्रिया तथा व्यवहार मात्र सुकृत परिणाम, परिपाक फल हेतुक (कारण) ही है, जिससे ही समाधान एवं सहअस्तित्व सिद्ध होता है।
- न्यायाश्रित व्यवहार सम्पन्न समाज में मानवीयता तथा अतिमानवीयता की प्रतिष्ठा स्पष्ट है।
- उसके विपरीत अवसरवादी व्यवहार से भ्रम एवं अज्ञान से पीड़ित होता है जिससे अमानवीयता का प्रादुर्भाव होता है।
- लघु मौलिकता से गुरु मौलिकता की ओर प्रगति की 'सुकृत' और गुरु मौलिकता से लघु मौलिकता की ओर गति को **'विकृत'** परिणाम, परिपाक एवं फल की **'हेतुक'** संज्ञा है।
- मानवीय व्यवहार की दृष्टि, स्वभाव एवं विषय के आधार पर सामाजिकता का निम्नानुसार वर्गीकरण किया गया है :-

  (1) मानवीयता,

  (2) अतिमानवीयता,

  (3) अमानवीयता।

★ मानवीयता की पोषक दृष्टि, गुण, स्वभाव व विषय वाली इकाई को 'मानव' की संज्ञा है। अतिमानवीयता की पोषक दृष्टि, गुण, स्वभाव व विषय वाली इकाई को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है - (1) देव मानव और (2) दिव्य मानव। अमानवीयता की पोषक दृष्टि, गुण, स्वभाव व विषय वाली इकाईयों को भी दो श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है - (1) पशु मानव और (2) राक्षस मानव।

- मानव जागृत; अतिमानव पूर्ण जागृत तथा अमानव अजागृत इकाई है।
- शोषण तथा पोषण भेद से ही मानव गुरु-मूल्यन व लघु-मूल्यन प्रक्रिया को संपन्न करता है, जो विकास तथा ह्रास के रूप में परिलक्षित होता है।
- लघुत्व का गुरुत्व पर, संकीर्णत्व का व्यापकत्व पर, अल्पत्व का वृहदत्व पर, व्यष्टित्व का समष्टित्व पर, दुर्बल का सबल पर, अक्षम का सक्षम पर, अनाधिकारी का अधिकारी पर आक्रमण पूर्वक अधिकार पाने का प्रयास सफल नहीं होता। तदनुसार अवसरवादिता, न्यायवादिता पर सफल और सिद्ध नहीं है और न होगा।
- एक का अनेक द्वारा तथा अनेक का एक द्वारा अनुसरण एवं अनुकूलता केवल न्याय पूर्वक किए गए व्यवहार से ही सफल है, अन्यथा असफल है।
- उपरोक्तानुसार ही एक व्यक्ति द्वारा कुटुंब के, एक कुटुंब द्वारा समाज के, एक समाज द्वारा राष्ट्र के, एक राष्ट्र द्वारा विश्व के साथ न्यायसम्मत व्यवहार तथा अनुसरण-प्रणाली है। अनुसरण-प्रणाली से स्वर्गीयता का अनुभव जागृत मानव परंपरा में ही है। इसके विपरीत क्रम से नारकीयता है। यह इसलिए भी सिद्ध है कि गुरुमूल्य को लघुमूल्य में नहीं समाहित किया जा सकता।
- मानवोचित नियम पालन प्रकिया व नीति को अनुकूल तथा इसके विपरीत को प्रतिकूल आचरण की संज्ञा है।
- नियम ही **न्याय** है, न्याय ही **ज्ञान** है, ज्ञान ही **विज्ञान व विवेक** है, विवेक एवं विज्ञान ही **समाधान** है, समाधान ही नित्य **सुख** एवं पूर्ण है । सत्य ही **नियंत्रण** है, नियंत्रण ही **नियम** है।
- रूप, बल, पद एवं बुद्धि **वैयक्तिक संपत्ति** है। इनकी सफलता इनके सदुपयोग से ही है, जो सामाजिक तथा बौद्धिक नियम पालन से ही संभव है। ये निम्नानुसार है :-
    - ★ रूप का व्यवहार सच्चरित्रता के साथ, बल का व्यवहार दया के साथ एवं बुद्धि का व्यवहार विवेक एवं विज्ञान के साथ संतुलित रूप में प्रतिष्ठित है। यही नियम व न्याय है।
- उक्त व्यवहार न्यायाश्रित होने पर ही सफल है, अन्यथा अवसरवादिता है, जो क्लेश का कारण है।
- जन, धन एवं यश यह कौटुंबिक और अखंड समाज की संपत्ति है । न्याय सम्मत संबंध निर्वाह की नीति व रीति से, विधि विहित किए गए व्यवसाय, प्रयोग व आविष्कार से

तथा अनुसंधान और प्रयोजनार्थ से ही इन संपत्तियों का सदुपयोग सिद्ध हुआ है तथा सफलता मिली है, अर्थात् जन, धन एवं यश का उपयोग कौटुंबिक और अखंड समाज समृद्धि के लिये होना चाहिए, न कि वैयक्तिक। इस प्रकार के न्यायपूर्ण व्यवहार से ही कुटुंब में परस्पर सहयोग, सहकार्य तथा सहअस्तित्व की भावना का विकास संभव है, जिससे परस्परता में विश्वास के प्रति दृढ़ता बनेगी। इस प्रकार अवसरवादी मनोवृत्ति का नाश होगा।

- न्यायवादी व्यवहार से सामाजिक स्तर पर **नैतिक मार्ग दर्शन,** वैचारिक समाधान योग्य प्रेरणा तथा व्यापक सत्तानुभूति योग्य अध्ययन से **अर्थ की सुरक्षा तथा सदुपयोगात्मक नीति** का उद्घाटन है। मानवीयता व अतिमानवीयता को बोधगम्य कराने हेतु योग्य अध्यापन और सत्यानुभूति योग्य समाधान व समृद्धि योग्य कर्माभ्यास व परंपरा के पालन हेतु निष्ठा के उद्भव व विकास से सामाजिक जीवन की सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है।
- सफल सामाजिक जीवन व व्यवस्था से व्यक्तियों को अपने विकास हेतु प्रेरणा पाने की अधिक संभावनाएं हैं। लघु मूल्य का गुरु मूल्य की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही है और सफल समाज में इस ओर उन्मुख होने के लिए तथा तद्नुसार प्रयोग, प्रयास एवं व्यवसाय तथा अध्ययन के लिए उपयुक्त वातावरण, अवसर व साधन उपलब्ध रहता ही है।
- न्याय ही विधान, विधान ही व्यवस्था, व्यवस्था ही ज्ञान, विवेक, विज्ञान व ज्ञान, विवेक, विज्ञान ही नियम, नियम ही नियंत्रण, नियंत्रण ही न्याय है।
- न्याय, विधान, व्यवस्था, ज्ञान व नियम के लिये प्रेरणा देने तथा इसमें निष्ठा उत्पन्न करने के लिये क्रम से व्यवस्थापक, विधायक, विद्वान, विचारक तथा प्रचारक की उपादेयता अपरिहार्य है।

:: व्यवस्थापक :- विधि विधान में पारंगत, नैतिकता का आचरण करने-कराने वाले तथा विपरीत आचरण करने वाले को समझदारी पूर्वक सुधार कर सकने वाले व्यक्ति की व्यवस्थापक संज्ञा है।

:: विधायक :- विधि विधान में पारंगत वर्तमान वातावरण एवं पर्यावरण व संतुलन के योग्य स्पष्ट नीति-निर्णय करने वाले विद्वान एवं व्यक्तित्व-संपन्न व्यक्ति की 'विधायक' संज्ञा है।

:: विद्वान :- मानवीयतापूर्ण आचरण सहित, मानव की परस्परता के मध्य में पाये जाने

वाली विषमता को समापहरण करने योग्य समाधान का निर्भ्रान्त स्वरूप में अध्ययन कराने वाले व्यक्ति की 'विद्वान' संज्ञा है।

:: विचारक :- मानवीयतापूर्ण आचरण सहित मानव की परस्परता के मध्य में पाये जाने वाली विषमता को समापहरण करने योग्य समाधान को प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति को 'विचारक' की संज्ञा है ।

:: प्रचारक :- नैतिकता चरित्र एवं मूल्य का, कलापूर्ण ढंग से लोक जन-मानस में, विश्वास उत्पन्न करने वाले को 'प्रचारक' की संज्ञा है।

:: प्रजा :- नियम सहित मानवीयता पूर्ण आचरण का पालन करने वाले प्रत्येक मानव की प्रजा संज्ञा है।

:: विचारक तथा विद्वान ही प्रचारक हो सकते हैं।

- शासन और शासक भ्रमित मानव प्रवृत्ति की उपज है। शासक के विचारक तथा विचारक के शासक बनने की संभावना नहीं है क्योंकि शासन करते समय मानव को व्यापक विचार करने का तथा व्यापक विचार करते समय शासन करने का अवकाश व अवसर उपलब्ध नहीं है। विचारक सदा-सदा व्यवस्था का पोषक है। शासक सदा-सदा व्यवस्था का शोषक है।

- जब व्यक्ति व्यवस्था अर्थात् अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में समाधान पूर्ण विधि से अपने वैचारिक जीवन की प्रतिष्ठा योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता को अर्जित कर लेता है; तब वह व्यवहार पक्ष की समस्याओं के समाधान से युक्त हो जाता है तथा यही इनकी तृप्ति भी है। ऐसे व्यक्ति में क्षोभ का अभाव हो जाता है । यही मानवीयता का वैभव है।

  ★ न्याय पूर्ण व्यवहार को स्वीकारने का अर्थ ही समाधान की उपलब्धि के लिए प्रयास एवं प्रयोगरत होना है। न्यायपूर्ण व्यवहार से समाधान की उपलब्धि निम्न क्रम से होती है।

  ❋ मानव द्वारा की जाने वाली समस्त क्रियाएं विचार आश्रित है। अत: वैचारिक कुशलता से ही क्रिया की निपुणता वैचारिक शिष्टता से ही व्यवहारिक कुशलता, व्यवहारिक कुशलता से ही वैचारिक पारंगत्व, वैचारिक पारंगत्व से ही भाव का शिष्ट भाषाकरण संभव है। यथार्थता का अध्ययन ही वैचारिक समाधान है तथा सत्यानुभूति ही आनंद है, जो सफलता की पराकाष्ठा है।

- समस्त व्यवसाय मात्र समृद्धि की वांछा से, समस्त व्यवहार परिमार्जित मानव समाज

न्याय के पोषण की मूल भावना से, मानवीयता-संपन्न समस्त भावपूर्ण भाषा-प्रसारण-क्रिया को मानव के अभ्युदय एवं विकास की कामना से सत्यता में 'अनुभूति व अध्ययन' मानव ने विश्राम की आकाँक्षा से किया है। विश्राम ही समाधान है।

- उत्पादन से अधिक उपभोग, प्रयास एवं प्रवृत्ति समाज शोषक सिद्ध है तथा मात्र अवसरवादिता ही है। न्यायवादी व्यवहार से आवश्यकता से अधिक उत्पादन व समाज न्याय पोषक होना सिद्ध है। अवसरवादी व्यवहार में परधन, परनारी तथा परपीड़ा का समाविष्ट होना आवश्यक है, जिसके लिए अमानवीयतावादी मानसिकता, भाषा, प्रसारण, प्रकाशन तथा प्रदर्शन अनिवार्य है, जिससे भ्रामकता का तथा विलासिता का ही प्रचार होता है, जो मानव कुल को असंतुलित, व्याकुल तथा त्रस्त किये हुए हैं।
- मानव गलती करने का अधिकार लेकर तथा सही करने का अवसर एवं साधन लेकर जन्मता है।
- उपरोक्तानुसार मानव को न्यायवादी बनाने हेतु तथा न्याय में निष्ठा उत्पन्न करने हेतु उसे स्वभाववादी बनाने के लिए व्यवस्था व शिक्षा संस्कार का योगदान आवश्यक है।
- भ्रांति ही अवसरवादिता में आसक्ति का कारण है। भ्रांति मात्र आरोप ही है।
- भ्रांति के विपरीत में निर्भ्रमता है। निर्भ्रमता ही न्याय का कारण है। निर्भ्रमता के फलस्वरूप समाधान, मनोबल, सुख, कर्त्तव्य में निष्ठा, स्नेह, अनुराग, शांति, संतोष, प्रेम, सहजता, सरलता, उत्साह, आह्लाद तथा आनंद सहज उपलब्धि है। यह सब अनन्य रूप में संबद्ध हैं।

:: समाधान :- क्यों, कैसे की पूर्ति अथवा क्रिया से अधिक ज्ञान की 'समाधान' संज्ञा है।

:: मनोबल :- केन्द्रीकृत मन:स्थिति अर्थात् समझदारी को प्रमाणित करने में मनोयोग स्थिति की 'मनोबल' संज्ञा है।

:: सुख :- न्याय में दृढ़ता की 'सुख' संज्ञा है।

:: कर्त्तव्य में निष्ठा :- उत्तरदायित्व का वहन ही कर्त्तव्य में निष्ठा है।

:: स्नेह :- न्याय, धर्म एवं सत्य की निर्विरोधिता ही 'स्नेह' है।

:: अनुराग :- निर्भ्रमता से प्राप्त आप्लावन की 'अनुराग' संज्ञा है।

:: शांति :- वेदना विहीन वैचारिक स्थिति।

:: संतोष :- अभाव का अभाव (समृद्धि, समाधान) अथवा अभाव से अभावित

चित्रण विचार सम्पन्नता।

:: प्रेम :- दिव्य मानव, देव मानव की सान्निध्यता, सामीप्यता, सारुप्यता तथा सालोक्यता प्राप्त करने हेतु अंतिम संकल्प की 'प्रेम' संज्ञा है। दया, कृपा, करूणा की संयुक्त अभिव्यक्ति ही प्रेम है।

:: सहजता :- जागृति सहज मानसिक, वैचारिक, चिंतन स्थिति में संगीत है, उसकी 'सहजता' संज्ञा है।

:- रहस्यता से रहित जो मानसिक स्थिति है उसकी सहजता संज्ञा है।

:: सरलता :- जागृति सहज स्वभावपूर्ण व्यवहार की 'सरलता' संज्ञा है। कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में नियमों को वचन पूर्वक प्रमाणित करना।

:- आडम्बरहीनता अथवा दिखावा रहित व्यवहार की सरलता संज्ञा है।

:: आनंद :- सहअस्तित्व में अनुभूति की 'आनंद' संज्ञा है।

:: पूर्णता :- सर्वतोमुखी समाधान संपन्नता ही 'पूर्णता' है।

:: निर्भ्रमता :- न्याय, धर्म एवं सत्यतापूर्ण व्यवहार, भाषा, भाव, बोध, संकल्प व अनुभूति की 'निर्भ्रमता' संज्ञा है।

★ विचार का प्रतिरूप ही भाव, भाषा एवं व्यवहार के रूप में परिलक्षित होता है।

★ न्याय, धर्म एवं सत्यानुभूति योग्य क्षमता से व्यवहार, भाव व भाषा संयमित और परिमार्जित होता है।

- पवित्र विचार ही मनोबल, मनोबल ही कर्त्तव्य निष्ठा, कर्त्तव्य निष्ठा ही समाधान-समृद्धि, समाधान-समृद्धि ही सहअस्तित्व तथा सहअस्तित्व ही पवित्र विचार है, जिससे न्यायवादी व्यवहार प्रतिष्ठित है अन्यथा अवसरवादी व्यवहार अप्रतिष्ठित है।
- अवसरवादिता पर ही संयमता, नियंत्रण तथा सुधार का अधिकार जागृति पूर्वक प्रमाणित होता है।
- प्रत्येक मानव जन्म से ही न्याय का याचक है। न्यायपूर्ण व्यवहार प्रस्तुत करने योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता को उत्पन्न करना ही, एक से अनेक मानव द्वारा किए जा रहे अनवरत प्रयास का मूल उद्देश्य है।
- न्यायवादी मानवों की परस्परता में सहज स्वभाव ही 'सामाजिकता' है तथा यही मानवीयतापूर्ण समाज है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - सोलह
पोषण एवं शोषण

- कोई भी मानव स्वयं का शोषण नहीं चाहता है।
- इकाई - अनुकूल इकाई = शोषण।

  इकाई + अनुकूल इकाई = पोषण।

  ★ विकास और जागृति संपूर्ण सृष्टि का लक्ष्य है तथा सृष्टि में प्रत्येक जड़ इकाई की चेष्टा विकास क्रम व विकास के लिए ही है । सृष्टि में इकाई के स्वतंत्र अस्तित्व का दर्शन नहीं होता। प्रत्येक इकाई वातावरण के दबाव से क्षुब्ध होकर स्वतंत्र होने के प्रयास में है, साथ में वातावरण से प्रेरित रहता ही है। सृष्टि, जड़ एवं चैतन्य, दो स्वरूप में है। जड़ अपने 'त्व' सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी रूप में है । जिसका दृष्टा मानव है। चैतन्य सृष्टि में मानव इकाई के जागृति पूर्वक स्वतंत्र (स्वायत्त) होने की व्यवस्था है। यहाँ स्वतंत्रता का अर्थ सब से अलग होने से नहीं है, फिर स्वतंत्रता का क्या अर्थ है ? स्वतंत्रता का अर्थ है, अपने को वातावरण के दबाव से मुक्त कर लेना तथा सहअस्तित्व सहज व्यवस्था में संगीतमय रूप में प्रमाणित करना । मानव इकाई में इसकी पूर्ण संभावनाएँ हैं तथा जागृत मानव ने स्वतंत्रता की अनुभूति भी की है ।

  ❋ इस अध्याय में शोषण एवं पोषण का अध्ययन मानव के संदर्भ में ही किया गया है । पोषण सहअस्तित्व के अर्थ में, इसके विपरीत शोषण है।

  ★ वातावरण के प्रताड़ना तथा क्षोभ से मुक्त होकर स्वतंत्र अस्तित्व की अनुभूति करना मानव जागृति की चरम परिणति है। विकास की दिशा में जो समस्त अवरोध है, वह 'शोषक' तथा सहायक समस्त तत्व 'पोषक' हैं। अतएव, यह सिद्ध हुआ कि जागृति को अवरुद्ध करने वाली समस्त क्रियाएँ 'शोषण' हैं तथा जागृति को गतिशील करने वाली समस्त क्रियाएँ 'पोषण' हैं ।

  ★ प्रत्येक इकाई परस्परता से प्रभावित है, चाहे वह प्रभाव स्थूल हो अथवा सूक्ष्म हो। चूंकि यहाँ मानव इकाई के पोषण एवं शोषण का विश्लेषण है, अत: हमें व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा अंतर्राष्ट्रीय भेद से विश्लेषण करना होगा। अंतर्राष्ट्रीय मानव समुदाय एक है तथा सब की साम्य कामना 'सुख' ही है। निरंतर सुख की

उपलब्धि ही मानव का चरम विकास है तथा सुख की स्थिति में ही मानव अपने को वातावरण के दबाव से मुक्त अनुभव करता है। सुखी मानव अन्य का पोषण करने में भी समर्थ होता है।

- सुख एक बौद्धिक स्थिति है। 'जीवन' बल व शक्तियों की संगीतमयता व एकसूत्रता ही सुख है। सर्वमानव समाधान पूर्वक सुखी होता है।
- मानव ने बौद्धिक समाधान तथा भौतिक समृद्धि से सुख की कामना की है।
  - ❋ यह उल्लेखनीय है कि 'जीवन परमाणु' सर्वोच्च विकसित पद है।
- बौद्धिक समाधान के मार्ग में सब से बड़ा अवरोधक तत्व भय है। मानव कुल तीन प्रकार के भय से पीड़ित हुआ है :-

  (1) प्राकृतिक भय,

  (2) पाशविक भय तथा

  (3) मानव में निहित अमानवीयता का भय।
  - ★ मानव का मानव से भय परधन, परनारी/परपुरुष तथा परपीड़ात्मक व्यवहार के कारण है। यही मानव में निहित अमानवीयता का भय है। परधन, परनारी/परपुरुष एवं परपीड़ात्मक व्यवहार से द्वेष, आतंक, हिंसा एवं प्रतिहिंसा उत्पन्न होती है।
- उपरोक्त तीनों से कुल चार प्रकार से मानव भयभीत है :-

  (1) पद भय (2) मान भय (3) धन भय (4) मृत्यु भय।
- भौतिक समृद्धि के लिए मानव के पास केवल तीन ही अर्थ हैं :- (1) तन (2) मन (3) धन।
- भ्रमित मानव ने तन, मन एवं धन के नियोजन से ही प्राप्त प्राकृतिक ऐश्वर्यों को उपयोग तथा भोग करते हुए प्राकृतिक भय, पाशविक भय तथा मानव में निहित अमानवीयता के भय से मुक्त होने की कामना की है।
  - ★ भय से निवारण हेतु समुदाय रुपी सामाजिकता की कामना मानव ने किया। सामाजिकता का अर्थ ही है संबंध एवं संपर्क का निर्वाह। संबंध एवं संपर्क के निर्वाह के लिए आधारभूत प्रेरणा श्रोत चार हैं :-

    (1) सभ्यता, (2) संस्कृति, (3) व्यवस्था (4) विधि।

★ सभ्यता, संस्कृति, व्यवस्था और विधि पूर्वक मानव ने प्राप्त अर्थ का नियोजन करते हुए सुख की अनुभूति की कामना की है। छोटी से लेकर बड़ी इकाई तक ने अर्थ का उपयोग और उपभोग करते हुए सुखी होने का प्रयास किया है, पर जब एकाकी प्रयोग से उसे सुख की उपलब्धि नहीं हुई तो समाज का गठन हुआ तथा ऐसे गठित समाज में संपर्क एवं संबंधों के निर्वाह के लिए नियम स्वीकृत हुए। इन नियमों का सभ्यता एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने का प्रयास किया गया तथा इन्हें आवश्यकीय तथा अनावश्यकीय नियमों के रूप में माना गया। साथ ही इन्हें ऐसा ही मानने और प्रयोग करने हेतु प्रेरणा देने के लिए व्यवस्था और विधि का जन्म हुआ।

★ मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के प्रकाश में संस्कृति सम्मत विधि व्यवस्था को सुनिश्चित करने के लिए प्राप्त अर्थ 'तन, मन और धन' की सदुपयोगात्मक नीतियों का निर्धारण हुआ तथा इन्हें 'धर्म -नीति' की संज्ञा दी गई। धर्म-नीति मानव का वैभव है।

★ सामाजिकता एकसूत्रता को बनाए रखने के लिए तथा अमानवीयता से मुक्ति के लिए, जिससे मानव को प्राप्त अर्थ-तन, मन और धन की सुरक्षा भी होती हो ऐसी **राज्यनीति** अध्ययन गम्य हुई। सामाजिक इकाई होने के कारण एक मानव के तन तथा धन की सुरक्षा के साथ परिवार, समाज तथा राष्ट्र की सुरक्षा स्वयमेव सिद्ध है। यह उसी स्थिति में संभव तथा व्यवहार्य है जब मानव से लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवन में एकसूत्रता हो।

★ राज्यनीति से साकार होने वाली उपलब्धि के मूल तत्व हैं :-

● स्व-धन, स्वनारी/स्व-पुरुष और दया में निष्ठा एवं विश्वास का स्थापना तथा पर-धन, पर-नारी/पर-पुरुष और पर-पीड़ात्मक व्यवहार से मुक्ति।

★ वैचारिक पक्ष के परिमार्जन से तथा विकास से ही परधन, परनारी/परपुरुष एवं परपीड़ा युक्त व्यवहार का उन्मूलन संभव है। विचार का परिमार्जन केवल इसके इससे श्रेष्ठ शक्ति के प्रभाव में आने पर ही संभव है क्योंकि यह नियम है कि अविकसित, विकसित के सान्निध्य में ही विकास की प्रेरणा पाता है और विकास को प्राप्त करता है। विचार पक्ष का परिमार्जन मात्र चित के प्रत्यावर्तन से ही संभव है जिससे वैचारिक पक्ष में मानवीयता के प्रति आदर का भाव उत्पन्न होकर तदनुरूप व्यवहार संभव है।

- ★ राज्यनीति का क्षेत्र अर्थ की सुरक्षा से अधिक संबद्ध होने के कारण इसका संबंध भौतिक वस्तुओं से अधिक है। अत: इसका धर्मनीति के आश्रय में होना अनिवार्य व अपरिहार्य है।

- ● अंतर्राष्ट्रीय नीति से राष्ट्रीय नीति को प्रेरणा व दिशा, राष्ट्रीय नीति से सामाजिक नीति को प्रेरणा व दिशा, सामाजिक नीति से पारिवारिक नीति को प्रेरणा व दिशा और पारिवारिक नीति से मानवीयतापूर्ण आचरण के लिए प्रेरणा व दिशा प्राप्त होती है।

- ● इसकी भिन्न पद्धति से भी नीति निर्धारण होता है, जिससे कि मानव समाज के लिये व्यक्ति की महत्ता तथा व्यक्ति के लिए मानव समाज की महत्ता प्रतिपादित होती है। इसके साथ ही व्यक्ति से लेकर संपूर्ण मानव समाज की एकसूत्रता का महत्व भी हृदयंगम होता है।

- ● जागृति विधि से अंतर्राष्ट्रीय नीति में अखंडता व सार्वभौमता की नीति, राष्ट्रीय नीति में विधि (न्याय) की अक्षुण्णता बनाए रखने के लिए व्यवस्था, सामाजिक नीति में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष तथा दया पूर्ण कार्य-व्यवहार की नीति और व्यक्तिगत जीवन में समझदारी संपन्न नीति से ही पोषण संभव है।

  - ★ संबंध एवं सम्पर्क के विषय में एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। इन दोनों में दायित्व का निर्वाह आदान प्रदान के आधार पर होता है परन्तु दोनों में भेद यह है कि संबंध की परस्परता में प्रत्याशाएं पूर्व निश्चित रहती है तथा इसके अनुरूप ही आदान प्रदान होता है। सम्पर्क में आदान एवं प्रदान परस्परता में पूर्व निश्चित नहीं रहता। इसलिए सम्पर्क में आदान व प्रदान क्रियाएं ऐच्छिक रूप में अवस्थित है। संबंध दायित्व प्रधान एवं सम्पर्क कर्तव्य प्रधान है। सम्पर्क में परस्परता में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष दयापूर्ण कार्य व्यवहार की अपेक्षा रहती ही है। मानव अथवा इससे विकसित तक ही संबंध है जबकि समस्त इकाईयाँ परस्पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क में है ही।

- ● संपूर्ण संपर्क, संबंध के लिए प्रेरणा के श्रोत हैं। संपर्क दो प्रकार के होते हैं-

  (1) प्राकृतिक संपर्क (2) मानव संपर्क।

  - ★ प्राकृतिक संपर्क में जागृत मानव प्राकृतिक ऐश्वर्य का उपयोग व सदुपयोग करता है। समस्त भौतिक संपर्क तथा इसकी उपलब्धियाँ संबंध के निर्वाह के लिए ही होती है। मानव संपर्क से अपने विकास के लिए प्रेरणा पाता है अथवा उसके लिए

प्रवृत्त होता है।

★ मानव संपर्क जो जागृति के लिये प्रेरणा देता है पोषण है।

● जो जिसका मूल्यांकन नहीं करेगा वह उसका सदुपयोग नहीं करेगा या नहीं कर सकेगा। अत: मानव के हर पक्ष का मूल्यांकन आवश्यक है।

★ सम्पूर्ण संबंधों के मूल में मूल्यांकन आवश्यक है। मूल्यांकन मौलिकता का ही होता है। मौलिकता के आधार पर ही कर्तव्य का निर्धारण तथा निर्वाह होता है। दायित्वों का निर्वाह जिस इकाई के प्रति होना है उस इकाई के प्रति न होने से उसका पोषण अवरूद्ध होता है अथवा शोषण है साथ ही जिस इकाई द्वारा दायित्व का निर्वाह होना है उसे, न होने की स्थिति में प्रतिफल के रूप में अविश्वास ही मिलेगा । अविश्वास ही द्रोह, विद्रोह तथा आतंक का कारण बनता है जो शोषण की ओर प्रेरित करता है।

★ प्रत्येक संबंध में सम्पर्क निहित है ही। संबंध में भाव (मौलिकता) पक्ष विशिष्ट है तथा भौतिक पक्ष गौण है। प्रत्येक संबंध में भाव का जितना तिरस्कार होता है भौतिक पक्ष उतना ही प्रबल होता है। संबंधों मे भाव का निर्धारण मानवीय परम्परा के अनुसार है। संबंधों के निर्वाह में भाव पक्ष का तिरस्कार कर भौतक पक्ष को वरीयता प्रदान कर जब आचरण किया जाता है तो अपने से अविकसित को विकास का लक्ष्य मान लेने की भ्रमित मान्यता का जन्म होता है जबकि समस्त भौतिक पक्ष मनुष्य से अविकसित है ही। इसलिए विकास का मार्ग अवरूद्ध होता है। परिणाामतः मानवों ने भौतिक उपलब्धियों के लिए ही युद्ध किया है।

● किसी भी उपलब्धि के प्रति आवश्यकीय नियम सहित पूर्ण समझ की 'निश्चय' तथा अपूर्ण समझ से किए गए प्रयास की 'मान्यता' संज्ञा है।

★ अत: संबंध में भाव पक्ष का तिरस्कार ही उस संबंध का शोषण है ।

● मानव के लिए पोषण युक्त संपर्कात्मक एवं संबंधात्मक विचार एवं तदनुसार व्यवहार से ही मानवीयता की स्थापना संभव है, अन्यथा, शोषण और अमानवीयता की पीड़ा है।

★ शोषण और पोषण तीन प्रकार से होता है।

★ दायित्व का निर्वाह करने से पोषण अन्यथा शोषण है। प्राप्त दायित्वों में नियोजित होने वाली सेवा के नियोजित न करते हुए मात्र स्वार्थ के लिए जो प्रयत्न है एवं दायित्व के अस्वीकारने की जो प्रवृति है उसको दायित्व का निर्वाह न करना कहते

हैं।

★ दायित्व को निर्वाह न करने पर स्वयं का विकास, जिसके साथ निर्वाह करना है उसका विकास तथा इन दोनों के विकास से जिन तीसरे पक्ष का विकास हो सकता है वह सभी अवरूद्ध हो जाते हैं। विकास को अवरूद्ध करना ही शोषण है।

★ दायित्व का अपव्यय अथवा सद्व्यय करना -दायित्व के निर्वाह में आलस्य एवं प्रमाद पूर्वक प्राप्त प्रतिभा और वर्चस्व का न्यून मूल्य में उपयोग करना ही दायित्व का अपव्यय है।

★ दायित्व का विरोध करना अथवा पालन करना - मौलिक मान्यताएं जो संबंध एवं सम्पर्क में निहित है उसके विरोध में ह्रास के योग्य मान्यता को प्रचारित एवं प्रोत्साहित करना ही दायित्व का विरोध करना है। दायित्वों का विरोध अभिमान वश एवं अज्ञानवश किया जाता है।

★ प्रत्येक इकाई के मूल में तीन बातें मुख्य होती हैं:-

(1) गठन (2) उद्देश्य और (3) आचरण (कार्यक्रम) की विशिष्टता। यहाँ चूंकि व्यक्ति से लेकर अंतर्राष्ट्रीय मानव समाज की इकाई के संदर्भ में शोषण एवं पोषण की विवेचना है अत: हम उपरोक्त चर्चा के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विभिन्न इकाईयों के गठन, उद्देश्य और आचरण (कार्यक्रम) की विशेषता निम्नानुसार होने पर ही संपूर्ण मानव समाज एकसूत्रता में होकर, शोषण मुक्त हो सकेगा।

इकाई	गठन की विशिष्टता	गठन का उद्देश्य	आशित आचरण
मानव	विचार एवं शरीर	सुखानुभूति	न्यायसम्मत व्यवहार
परिवार	सीमित समझदार व्यक्तियों के समूह का संबंध प्रधान गठन	समाधान एवं समृद्धि	समाधान सहित सेवा, व्यवसाय एवं प्रयोग
समाज	सीमित परिवारों का समूह, जिसमें संबंध एवं संपर्क दोनों सम्मिलित हों।	समृद्धि सहित सत्यता एवं अखण्ड सामाजिकता को आत्मसात करना, अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा	जागृति में, से, के लिए प्रचार एवं प्रदर्शन, प्रकाशन तथा प्रोत्साहन। शिक्षा-संस्कार विधि से लोक-व्यापीकरण

राष्ट्र	राष्ट्रव्यापी जनजाति के समूह का गठन एवं सम्पर्क के निर्वाह के लिए विधि की प्रधानता।	मानवीयता का संरक्षण प्रत्यक्ष रूप में अर्थ की सुरक्षा।	न्याय पूर्ण व्यवस्था।
विश्व	कई राज्यों का समूह जिसके मूल गठन में मानवीयता प्रधान संयोजक तत्व है सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में	मानवीयता को प्रोत्साहन।	सहअस्तित्व में, से, के लिए।

★ उपरोक्त वर्णित उद्देश्य अर्थात् तन, मन और धन के सदुपयोग और तन, मन और धन की सुरक्षा की पूर्ति के लिए तथा तदनुकूल आचरण को व्यवहार में लाने हेतु और तदनुसार विभिन्न स्तरों के गठन की संपर्कात्मक तथा संबंधात्मक परस्परता को विश्वासपूर्वक सुदृढ़ करने के लिये एक समन्वित धर्मनीति तथा राज्य नीति आवश्यक है, जिससे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित तथा विकसित किया जा सके, जो मानव के जागृति की संपूर्ण संभावनाओं से युक्त हो। ऐसी व्यवस्था मात्र पोषण-प्रधान गुणों व नीतियों से ही संपन्न होगी, जो जागृति का मार्ग प्रशस्त करेगी, जिससे मानव सुखी रहेगा।

★ उपरोक्तानुसार धर्मनीति तथा राज्यनीति के व्यवहारान्वयन में सहायक सभी विचार तथा व्यवहार पोषक, अन्यथा में शोषक ही सिद्ध होंगे।

★ वातावरण के दबाव से मुक्त होने के लिए शोषण से मुक्ति आवश्यक है, जो सहअस्तित्व में अनुभवपूर्वक सर्वतोमुखी समाधान से ही मानव में प्रमाणित है।

★ मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद के प्रकाश में संपूर्ण मानव समाज के लिए समन्वित धर्मनीति तथा राज्यनीति निम्न आधारभूत सिद्धांतों की सहायता से की गयी है।

● 1. भूमि एक (अखण्ड राष्ट्र) राज्य अनेक
2. मानव जाति एक कर्म अनेक
3. मानव धर्म एक समाधान अनेक
4. सत्ता (व्यापक रूप में) देवता अनेक

● उक्त चार सिद्धांतों से एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्वयंसिद्ध सूत्र की निष्पत्ति होती है, वह है :-

- मानव जाति सही में एक तथा भ्रमवश गलती में अनेक है। अनेक (परस्पर विरोध) होने का कारण रहस्य और उपभोक्तावाद ही है। जागृति पूर्वक सभी अनेक परस्पर पूरकता, उपयोगिता विधि से एक हो जाते हैं।

मानव धर्म-नीति

परिभाषा

अर्थ की सदुपयोगात्मक नीति ही धर्मनीति है।

:: मानव की सार्वभौमिक साम्य कामना सुख की अनुभूति हेतु मानव के समस्त सम्पर्क एवं संबंध के निर्वाह के लिए समाधान, समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व सहज प्रमाण प्रस्तुत करने हेतु निश्चित कार्यक्रम की 'मानव धर्म नीति' की संज्ञा है।

आवश्यकता

- मानव धर्मनीति सहज समझ तथा परिपालन इसलिए आवश्यक है कि मानव प्रयोग एवं उत्पादन द्वारा प्राप्त अर्थ तथा प्राप्त प्राकृतिक संपदा के सदुपयोग की कामना करता है।
    - ★ धर्मनीति का अध्ययन मानव के परस्परता में पाये जाने वाले सम्पर्क एवं संबंध का अध्ययन है क्योंकि मानव संपर्क एवं संबंध से सुखी अथवा दुःखी हो रहा है न कि वस्तु, वाहन आदि से।

लक्ष्य अथवा साध्य

- अमानवीयता से मानवीयता की ओर गुणात्मक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करने हेतु समाधान, साधन, अवसर तथा व्यवस्था उपलब्ध कराना, जो अतिमानवीयता के लिये प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन देने में समर्थ हो।
- प्रत्येक मानव में साध्य को पाने हेतु तीन बातों का होना अनिवार्य :-
- 1. साधक, 2. साधना, 3. साधन।

1. साधक : प्रत्येक मानव को 'साधक' की संज्ञा है, वह क्रम से व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा अंतर्राष्ट्रीय भेद से है।

2. साधना : तन, मन तथा धन सहित मानवीय दृष्टि, विषय एवं स्वभाव सहित साध्य (मानवीयता एवं अतिमानवीयता) को पाने हेतु प्रयुक्त क्रिया प्रणाली

को 'साधना' की संज्ञा है।

3. साधन : तन, मन व धन ही साधन है। सर्वमानव के लिए जागृति ही साध्य है।

- साधन की प्रयुक्ति कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित एवं अनुमोदित भेद से कुल नौ प्रकार की होती है। इन समस्त साधनों को तीन क्षेत्रों में ही प्रयुक्त किया जा रहा है :-

  (1) प्राकृतिक क्षेत्र (2) सांस्कृतिक क्षेत्र (3) बौद्धिक क्षेत्र।

  ★ सहअस्तित्व व सामाजिकता का अध्ययन व्यक्ति के जागृति एवं व्यवहार के संदर्भ में ही है।

  ★ मानव धर्मनीति का अध्ययन अपेक्षाकृत ढंग से ही संभव है वह है अतिमानवीयता की अपेक्षा में मानवीयता का अध्ययन तथा अतिमानवीयता एवं मानवीयता की अपेक्षा में अमानवीयता की समीक्षा। यह सहअस्तित्व, सामाजिकता, समृद्धि, समाधान, संतुलन, सच्चरित्रता एवं सुख, शांति, संतोष, आनन्द के उद्देश्य से किया जाता है और यही मानव की आद्यान्त आकांक्षा है।

  ★ अखंड समाज समझदारी सहित समझदार व्यक्तियों के उद्देश्यपूर्ण आचरण संहिता समेत व्यवस्था प्रणाली ही है। अखंड समाज में व्यक्ति संपर्क एवं संबंध द्वारा जुड़ा हुआ है।

- मानव समाज में परस्पर निम्न संबंध दृष्टिगोचर होता है :-

  1. पिता-माता एवं पुत्र-पुत्री संबंध,
  2. पति-पत्नी संबंध,
  3. गुरु और शिष्य संबंध,
  4. भाई और बहिन संबंध,
  5. साथी-सहयोगी संबंध,
  6. व्यवस्था और समग्र व्यवस्था संबंध,
  7. मित्र संबंध।

  ★ **1. पिता-माता एवं पुत्र-पुत्री संबंध :-** माता-पिता के संबंध में पुत्र-पुत्री के साथ मातृ भाव में शरीर भाव प्रधान रहता है तथा पितृ संबंध में बौद्धिक विकास की भावना प्रधान रहता है। मूल रूप में माता पोषण प्रधान तथा पिता संरक्षण प्रधान

स्पष्ट है।

माता पिता की पहचान हर मानव संतान किया ही रहता है। शिशुकाल की स्वस्थता का यह पहचान भी है। अतएव माता-पिता जिन मूल्यों के साथ प्रस्तुत होते हैं, वह ममता और वात्सल्य है। ममता मूल्य के रूप में पोषण प्रधान क्रिया होने के रूप में या कर्त्तव्य होने के रूप में स्पष्ट है। इसलिए मां की भूमिका ममता प्रधान वात्सल्य के रूप में समझ में आती है। ममता मूल्य के धारक-वाहक ही स्वयं में माँ है तथा पिता वात्सल्य प्रधान ममता के रूप में समझ में आता है।

अभिभावक सन्तान का अभ्युदय ही चाहते हैं। कुछ आयु के अनन्तर इसका प्रमाण चाहते हैं।

❋ माता एवं पिता हर संतान से उनकी अवस्था के अनुरूप प्रत्याशा रखते हैं। उदाहरणार्थ शैशवावस्था में केवल बालक का लालन पालन ही माता-पिता का पुत्र-पुत्री के प्रति कर्त्तव्य एवं उद्देश्य होता है तथा इस कर्त्तव्य के निर्वाह के फलस्वरूप वह मात्र शिशु की मुस्कुराहट की ही अपेक्षा रखते हैं। कौमार्यावस्था में किंचित शिक्षा एवं भाषा का परिमार्जन चाहते हैं। इसी अवस्था में आज्ञापालन प्रवृत्ति, अनुशासन, शुचिता, संस्कृति का अनुकरण, परंपरा के गौरव का पालन करने की अपेक्षा होती है। कौमार्यावस्था के अनंतर संतान में उत्पादन सहित उत्तम सभ्यता की कामना करते हैं। सभ्यता के मूल में हर माता-पिता अपने संतान से कृतज्ञता (गौरवता) पाना चाहते हैं तथा केवल इस एक अमूल्य निधि को पाने के लिये तन, मन एवं धन से संतान की सेवा किया करते हैं। संतान के लिये हर माता-पिता अपने मन में अभ्युदय तथा समृद्धि की ही कामना रखते हैं, इन सब के मूल में कृतज्ञता की वाँछा रहती है। जो संतान माता-पिता एवं गुरु के कृतज्ञ नहीं होते हैं, उनका कृतघ्न होना अनिवार्य है, जिससे वह स्वयम् क्लेश परंपरा को प्राप्त करते हैं और दूसरों को भी क्लेशित करते हैं।

★ **2. पति-पत्नी संबंध :-**

❋ दाम्पत्य जीवन की चरम उपलब्धि 'एक मन और दो शरीर होकर' व्यवहार करना है। दाम्पत्य जीवन में व्यवहार निर्वाह संपर्क एवं संबंध ही है। तात्पर्य यह है कि दाम्पत्य जीवन व्यक्ति के रूप में दो है और व्यवहार के रूप में एक हैं।

❋ एक मन और दो शरीर अनुभव करने के लिए दोनों पक्षों द्वारा निर्विरोध पूर्वक अपने संबंध एवं संपर्क का निर्वाह करना ही अवसर, आवश्यकता तथा उपलब्धि है।

जहाँ तक मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, आदर और यश का प्रश्न है, वह पति अथवा पत्नी दोनों में सम्मिलित रूप से रहता है तथा उनमें से किसी एक को भी मिलने पर दूसरे पक्ष में वह समान रूप में बंटता ही है और इसकी स्वीकृति भी है। पति-पत्नी के रूप में दो शरीर एक मन होने का यही प्रमाण है।

❋ परस्परता रूपी सभी संबंधों में विश्वास मूल्य सदा-सदा होना परमावश्यक है। यही मूल मुद्दा है संबंधों को पहचानने का। सभी संबंध अथवा स्थापित संबंध पहचान में होने के उपरांत शरीर काल तक निर्वाह होने की बात आती है। यही जागृत मानव परंपरा का प्रमाण है। संबंधों में से एक महत्वपूर्ण संबंध पति-पत्नी संबंध है । इस संबंध में परस्परता में मूल्यों का पहचान इस प्रकार से होता है कि विश्वास पूर्वक सम्मान, स्नेह व प्रेम मूल्यों का निरंतर अनुभव होता है या समय-समय पर होता है । न्यूनतम विश्वास मूल्य बना ही रहता है। प्रेम मूल्य; दया, कृपा, करुणा की अभिव्यक्ति है। इस विधा में पति में मूल्यांकन के आधार पर दया, कृपा, करुणा मूल्यों का स्पष्ट होना, उसी प्रकार से पत्नी द्वारा भी इन मूल्यों का स्पष्ट होना ही प्रेम मूल्य है। वास्तविक रूप में पात्रता के अनुसार वस्तु का मूल्यांकन, पात्रता के अनुसार योग्यता का मूल्यांकन, योग्यता के अुनसार पात्रता का मूल्यांकन परस्परता में होना स्वाभाविक क्रिया है। यह नित्य नैमित्यिक है। नित्य मूल्यांकन का तात्पर्य हम मूल्यांकन में अभ्यस्त हो गये हैं। नैमित्यिक का तात्पर्य-प्रयत्न पूर्वक ध्यान पूर्वक मूल्यांकन करने से है। ऐसी स्थिति बारंबार होते-होते मूल्यांकन सहज रूप से होना पाया जाता है। इस प्रकार योग्यता के अनुसार पात्रता, पात्रता के अनुसार योग्यता का मूल्यांकन विशेषकर पति-पत्नी संबंध में होना अति आवश्यक है। ये दोनों मूल्यांकन के साथ ही पात्रता और योग्यता में संतुलन स्थिति को पाया जाता है। तीसरी विधि से पति या पत्नी अथवा दोनों में योग्यता, पात्रता हो ही नहीं, यह दाम्पत्य जीवन अथवा किसी भी प्रौढ़/युवा में संभव ही नहीं है। यही हो सकता है कि योग्यता और पात्रता का न्यूनातिरेक हो सकता है। इसी में सामंजस्य को पाने के लिए दाम्पत्य जीवन का महती उपयोग होना पाया जाता है। इन तथ्यों को, पूर्व आशयों को भुलावा देना ही दुःख और परेशानी का कारण है। यही भ्रम है।

★ **3. गुरु और शिष्य संबंध :-**

❋ गुरु की ओर से शिष्य के प्रति आशा बंधी रहती है कि जो अध्ययन कराया जाता है, उसका बोध शिष्य को होगा। शिष्य कृतज्ञ व आज्ञाकारी होगा।

- ❋ शिष्य की गुरु से प्रत्याशा रहती है कि उसकी वांछा तथा जिज्ञासा के आधार पर उन्हीं दिशाओं में गुरु द्वारा अध्ययन कराया जाएगा। गुरु और शिष्य दोनों में उपलब्धि की कामना की साम्यता है। प्रक्रिया में पूरकता है। एक प्रदाता है और दूसरा प्राप्तकर्त्ता है। प्राप्तकर्त्ता और प्रदाता की एक ही अभिलाषा है कि 'बोध' पूर्ण हो जाये।
- ❋ शिष्य का अर्थ बोध जब पूर्ण हो जाता है, उस समय गुरु पर्व मनाता है अर्थात् गुरु को प्रसन्नता की अनुभूति होती है, यही **वात्सल्य** स्थिति है। तात्पर्य यह है कि हर एक बड़े अपने से छोटों में वांछित गुणों की प्रसारण क्रिया में तत्पर रहते हैं। इसके बदले में जो तोष (उत्सवित होना) वे पाते हैं, वही इसकी उपलब्धि है। प्रदाय के बदले में किसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति की अभिलाषा नहीं रहती।
- ❋ शिष्य का गुरु के साथ विश्वास सहित पहचान किया रहना सहज है। यह स्वाभाविक मिलन है। योग, मिलन के रूप में स्पष्ट होता है। गुरु-शिष्य का योग अपने में जागृति के आकाँक्षा पूर्वक कार्य-व्यवहार और अध्ययन करना, क्योंकि गुरु ही अध्ययन कराने वाला होना सुस्पष्ट है। अध्ययन कराने के क्रम में सदा-सदा शिष्य द्वारा ग्रहण करने की अपेक्षा व विश्वास समाया रहता है। उसमें जितने भी शिष्य सार्थक होते हैं, गुरु में प्रसन्नता का स्रोत समाया रहता है, यह स्पष्ट हो चुका है। यही गुरु-शिष्य के परस्परता में सफलता का प्रमाण है। जैसे-जैसे शिष्य का आकाँक्षा और जिज्ञासा शांत होता है, वैसे ही सभी संशय दूर होते जाता है। ऐसे संशय मुक्ति विधि से गौरव, श्रद्धा, कृतज्ञता मूल्य शिष्य में गुरु के लिए अर्पित होना पाया जाता है। इस प्रकार गुरु शिष्य में मूल्यों का मूल्यांकन पूर्वक उत्सवित होना स्वाभाविक होता है।

★ 4. भाई और बहन संबंध :-

- ❋ भाई और बहन के संबंध को सौहार्द्र-भाव के नाम से जाना जाता है। इसमें परस्पर जागृति की प्रत्याशा एवं उत्साह है। एक की जागृति, दूसरे पक्ष के जागृति को आप्लावित कर देता है। जैसे यदि कोई बहन किन्हीं विशेष सद्गुणों से संपन्न है तो इसके कारण बहन स्वयम् में जितना आप्लावित है उतना ही अथवा उससे अधिक आप्लावन भाई में पाया जाता है। इसी प्रकार भाई का भाई के साथ अथवा बहन का बहन के साथ पाया जाता है।
- ❋ भाई-बहन की पहचान एक निश्चित आयु में हो पाती है। पहचान होते ही परस्परता

में सच्चाई, समझदारी और परिवार सम्मत अथवा जागृत मानव परिवार सम्मत अपेक्षा के अनुसार, कौमार्य अवस्था में आज्ञापालन सहयोग और अनुसरण जैसे कार्यों में परस्पर मूल्यांकन होना पाया जाता है। यही मित्रों के साथ भी होता है। जब भाई-बहन इन मुद्दों पर मूल्यांकन करने लगते हैं तब भी अभिभावक और गुरुजनों के साथ आज्ञापालन संबंध रहता ही है । अनुसरण भी इन्हीं दो पक्षों से जुड़ा रहता है। मूल्यांकन में ये सब बात स्पष्ट होना स्वाभाविक रहता है। जहाँ तक सहयोग की अभिव्यक्ति है, इसमें एक दूसरे को अधिकाधिक सटीकता की और विचार अथवा प्रकाशित होने की संभावना बनी ही रहती है।

कौमार्य और युवावस्था के बीच भाई-बहन, भाई-भाई, बहन-बहन; के परस्परता में अनुशासन की बात आती है। अनुशासन आज्ञा पालन के क्रम में एक पक्षीय हो पाते हैं । अनुशासन गुरुजनों व अभिभावकों से जीने में प्रमाणित रहने के आधार पर, अनुशासन बोध संतानों में होना स्वाभाविक है । इन्हीं तथ्य के आधार पर, हर मानव संतान अनुशासन को अपने विचारों से जोड़ना शुरु करता है । उसी के साथ आवश्यक-अनावश्यक तथा उपयोगी, अनुपयोगी विधा में भी वैचारिक प्रयुक्तियाँ होना स्वाभाविक रहता है। इस प्रकार अनुशासन आवश्यकता, उपयोगिता के आधार पर स्वीकृत होना शुरु होता है। शनैः-शनैः हर मानव संतान क्रम से अनुशासन में दक्ष होना पाया जाता है। इन सभी विधाओं में मानव संतान गुजरता हुआ अर्थात् आज्ञापालन, अनुशासन प्रक्रिया से, सोच विचार प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ अपने आप में निश्चय की प्रक्रियाएँ आरंभ होते ही यही निश्चयन प्रक्रिया सुस्थिर होना ही आज्ञापालन और अनुशासन के आशय रहता ही है।

जैसे ही युवावस्था में पहुँचते हैं, स्वाभाविक रूप में स्वानुशासन का प्रमाण आवश्यकता के रूप में होता ही है। यही अभ्युदय का प्रमाण होना पाया जाता है । स्वानुशासन सर्वतोमुखी समाधान के रूप में ही प्रमाणित होता है । यही मानव संचेतना की अपेक्षा और सार्थकता है। यह शिक्षा-संस्कार कार्यों से लोक सुलभ होना पाया जाता है। जागृत मानव परंपरा में ही मानवीय शिक्षा-संस्कार सार्थक होना पाया जाता है। इस विधि से कार्य-व्यवहार विचार सम्पन्न होते हुए भाई-बहन-मित्र संबंधों में विश्वास पूर्वक सम्मान व मूल्यांकन पूर्वक परस्परता में स्नेह मूल्य को सदा-सदा प्रमाणित करना होता है। इस विधि से इन संबंधों में विश्वास, सम्मान, स्नेह मूल्य प्रधान रहता है साथ ही प्रेम मूल्य स्पष्ट होना भावी रहता है।

★ **5. साथी-सहयोगी संबंध :-**

❋ एक दूसरे के लिए पूरक विधि से सार्थक होना पाया जाता है। यह संबंध सहयोगी की कर्त्तव्य निष्ठा से व साथी के दायित्व निष्ठा से सार्थक होना पाया जाता है। यह परस्पर पूरक संबंध है । इनमें मूल मुद्दा दायित्व को निर्वाह करना, कर्त्तव्यों को पूरा करने में ही परस्परता में संगीत होना पाया जाता है। यह जागृत परंपरा की देन है। इसमें मुख्यत: विश्वास मूल्य रहता ही है। गौरव, सम्मान, स्नेह मूल्य अर्पित रहता है । सहयोगी के प्रति सम्मान मूल्य विश्वास के साथ अर्पित रहता है। इस विधि से मंगल मैत्री होना स्वाभाविक है।

❋ उपलब्धि एवं विकास के आधार पर साथी सहयोगी संबंध दो पक्षों में गण्य है। उसे साथी (स्वामी) से सहयोगी (सेवक) अकिंचनता को स्वीकारता है। उसे परिप्रेक्ष्य में सहयोगी, साथी को श्रेष्ठ मानता है, जो उसकी मौलिकता है । इस संबंध में साथी, सहयोगी का पूरा उत्तरदायी हो जाता है और सहयोगी साथी को ही उस परिप्रेक्ष्य के पक्षों का कर्त्ता मानता है। इस संबंध में साथी के विशेष गुण, निपुणता कुशलता दिखाई पड़ता है। साथी - सहयोगी संबंध वह है जिसमें पद एवं भौतिक आदान-प्रदान परस्परता में निश्चित व प्रत्याशित रहता है। इस प्रकार इस संबंध में भी सुखद स्थिति की निरंतरता देने वाली वस्तु विश्वास ही है। अस्तु, इसमें विश्वास की स्थिरता प्रदान किया रहना ही इस संबंध की अंतिम अनुभूति है।

★ **6. समझदार मानव परंपरा में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का संबंध :-**

❋ मानवत्व सहित व्यवस्था में विधि समायी रहती है। विधान निर्वाह रूप में प्रमाणित होता है। व्यवस्था का धारक-वाहक जागृत मानव ही होता है। व्यवस्था में भागीदारी करने के लिए मानव को जागृत होना रहना आवश्यक है। जागृति पूर्वक ही हर नर-नारी जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

❋ साधक द्वारा साध्य की उपलब्धि की संभावनाओं के अनुरूप फल मिलने पर निर्णय होता है कि साधना सही दिशा में गतिशील है। संभावनायें सुदृढ़ होने पर मान्यताओं के रूप में अवतरित होती है। सभी मान्यतायें विकास अर्थात् जागृति तथा व्यवहार के लिए है।

❋ विकास के लिए जो मान्यतायें हैं वे अंतरंग में अभ्यास एवं जागृति के लिए प्रेरणा स्त्रोत तथा बहिरंग में सामाजिकता तथा व्यवसाय के लिए प्रेरणा स्त्रोत है।

सामाजिक दायित्व का प्रमाण हर समझदार परिवार में समाधान, समृद्धिपूर्वक जीने में प्रमाणित होता है। यह क्रमशः सम्पूर्ण मानव का एक इकाई के रूप में पहचान पाना बन जाता है। पहचानने के फलन में निर्वाह करना बनता ही है। ऐसी निर्वाह विधि स्वाभाविक रूप में मूल्यों से अनुबंधित रहता ही है। यही व्यवस्था में भागीदारी की स्थिति में परिवार व्यवस्था से अन्तर्राष्ट्रीय या विश्व परिवार व्यवस्था तक स्थितियों में भागीदारी की आवश्यकता रहता ही है। ऐसे भागीदारी के क्रम में मानव अपने में, से समझदारी विधि से प्रस्तुत होना बनता है। समझदारी विधि से ही हर नर-नारी व्यवस्था में भागीदारी करना सुलभ सहज और आवश्यक है। इसी क्रम से मानव लक्ष्य प्रमाणित होते हैं जो समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व के रूप में पहचाना गया है, इसे प्रमाणित करना ही मानवीयता पूर्ण व्यवस्था है।

★ **7. मित्र सम्बन्ध :-**

:: समाधान, समृद्धि सहज समानता ही मित्र संबंध है एवं सर्वतोमुखी समाधान में सहभागिता हो उसकी 'मित्र' संज्ञा है।

:: जिसमें बैर का अभाव हो उसकी मित्र संज्ञा है।

इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि एक पक्ष यदि किसी विपरीत घटना या परिस्थिति से घिर जाए तो दूसरा पक्ष अपना पूरा तन, मन और धन व्यय करने के लिए तथा मित्र को उस घटना-विशेष अथवा परिस्थिति विशेष से उबारने के लिये प्रयत्नशील हो जाये। यही मित्रता की चरम उपलब्धि है। घटना ग्रस्त या परिस्थिति ग्रस्त मित्र की जो कठिनाइयाँ है, वह पूरी की पूरी दूसरे मित्र को प्रतिभासित होती है। मित्रता की कसौटी ही यह है कि परस्पर की कठिनाइयों को दूसरा पक्ष सटीक स्वीकार लेता है और यदि उसका परिहार है, तो उसके लिये अपनी शक्तियों को नियोजित करता है।

:: मित्रता की निरंतरता न्याय पूर्ण व्यवहार से ही सफल होती है। निर्वाह के इन समस्त सम्बन्धों से व्यष्टि से समष्टि तक पोषक अन्यथा शोषक सिद्ध है। मित्र-मित्र सम्बन्ध की परस्परता में विश्वास, सम्मान व स्नेह मूल्य प्रधान है एवं प्रेम संबंध भावी रहता है।

❋ विधि का अर्थ है मानव में निहित अमानवीयता का शमन तथा जागृति का मार्ग प्रशस्त करना। व्यवस्था का तात्पर्य है मानवीयता की स्थापना के लिए प्रोत्साहन योग्य अवसर व साधन को उपलब्ध कराने की सामर्थ्य अर्जित करना।

★ मानव के लिए सुख ही धर्म है। सुख की आशा से ओतप्रोत मानव को एक क्षण के लिए भी इस कामना से विमुख नहीं किया जा सकता। **धर्म** की परिभाषा ही इस प्रकार की गई है कि ''जिससे जिसका वियोग न किया जा सके, अथवा जिसका वियोग सम्भव न हो, वह उसका धर्म है।'' धर्म की इसी परिभाषा के आधार पर पदार्थ का धर्म 'अस्तित्व', अन्न व वनस्पति का धर्म 'पुष्टि', जीवों का धर्म 'जीने की आशा' और मानव का धर्म 'सुख' प्रतिपादित किया गया। यह भी प्रतिपादित किया गया कि हर विकसित अवस्था की इकाई में अविकसित इकाई का धर्म विलय रहता ही है।

:: उपरिवर्णित सम्बन्ध एवम् सम्पर्क में तारतम्यात्मक व्यवहार पक्ष के आनुषंगिक मानव का, विभिन्न विभूतिपरक एवम् स्थितिपरक अध्ययन आवश्यक तथा वांछनीय है। अस्तु, सभी मानव आबाल-वृद्ध निम्न बारह स्थिति में गण्य है। ये सभी सुखी होना चाहते हैं। सुख भी नियम से, दुःख भी नियम से होना सिद्ध हुआ है। अतः निम्न बारह स्तर में पाये जाने वाले मानव किन नियम-सिद्ध प्रक्रिया द्वारा सुखी होना पाए जाते हैं, उसका स्पष्टीकरण निम्नानुसार है - यह सब व्यवहार संबंध व सम्पर्कात्मक है -

- 1. बलवान दयापूर्वक सुखी होता है,
- 2. बुद्धिमान विवेक तथा विज्ञान पूर्वक,
- 3. रूपवान सत् चरित्रता पूर्वक,
- 4. पदवान न्याय पूर्वक,
- 5. धनवान उदारता पूर्वक,
- 6. विद्यार्थी निष्ठा पूर्वक,
- 7. सहयोगी कर्त्तव्य पूर्वक
- 8. साथी दायित्व पूर्वक
- 9. तपस्वी संतोष पूर्वक,
- 10. लोक सेवक स्नेह पूर्वक,
- 11. सहअस्तित्व में प्रेम पूर्वक मानव सुखी होता है।

- 12. रोगी तथा बालक के साथ आज्ञा पालन के रूप में सुखानुभूतियाँ सिद्ध हुई हैं।

★ धर्मनीति के परिपालन से समस्त सम्पर्कात्मक तथा सम्बन्धात्मक व्यवहार में क्या अपेक्षा की जाती है, जिससे कि जीवन सफल होता है नीचे दर्शाया गया है। ऐसी धर्मनैतिक व्यवस्था तथा इसके लिए किया गया समस्त व्यवहार, प्रयोग तथा प्रयास अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का पोषक है।

- 1. पुरुष का जीवन यतित्व से सफल है। पुरुष में जागृति को प्रमाणित करना यतित्व है।
- 2. स्त्री का जीवन सतीत्व से सफल है। स्त्रियों में जागृति का प्रमाणित होना सतीत्व है।
- 3. माता-पिता का जीवन व्यक्तित्व से।
- 4. पुत्र का जीवन नैतिकता के प्रति निष्ठा से।
- 5. व्यवस्था, न्यायपूर्ण नियम के समर्थन व पालन से।
- 6. प्रजा का जीवन समग्र व्यवस्था में भागीदारी से तथा अनुशासन एवं नियम को स्वीकारने से।
- 7. गुरु का जीवन अनुभव को प्रामाणिकता पूर्वक अध्ययन कराने से।
- 8. शिष्य का जीवन गुरु द्वारा कराये गये अध्ययन के श्रवण, मनन तथा अर्थबोध सम्पन्नता से।
- 9. सहयोगी का जीवन कर्त्तव्य को निर्वाह करने से।
- 10. साथी का जीवन दायित्वों को निर्वाह करने से।
- 11. भाई या बहन का जीवन एक दूसरे के अनन्य जागृति की आशा एवं प्रयास से तथा स्नेह सहित दायित्व वहन करने से।
- 12. मित्र का जीवन परस्पर दिखावा रहित उदारता पूर्ण, समृद्धि सहित सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने से सफल है।
- उपरोक्तानुसार व्यवहार करने में समस्त मानव पाँचों स्थितियों में सफल हो जाय, यही धर्म-नैतिक व्यवस्था का कार्यक्रम व उद्देश्य है तथा शोषण के लिए प्राप्त समस्त प्रवृत्तियों का समूल निराकरण, मात्र उपरोक्तानुसार प्रतिष्ठित आचरण से ही संभव है। इसी विधि

से अखण्ड समाज का प्रतिष्ठित होना स्पष्ट है।

मानव राज्य-नीति

परिभाषा

:: **राज्य नीति का अर्थ :-** तन, मन एवम् धन की सुरक्षा के लिए विधि व्यवस्था प्रदान करने हेतु जो मानवीयता पूर्ण कार्यक्रम है, उसे 'राज्य नीति' संज्ञा है।

:: **राज्य :-** जिस भू क्षेत्र में मानव का आवास एवं व्यवसाय है और साथ ही जो एक ही व्यवस्था तंत्र के आश्रित हो एवं सार्वभौम व्यवस्था तंत्र में भागीदार हो, उसे 'राज्य' संज्ञा है।

आवश्यकता

● मानव प्रयोग व व्यवसाय द्वारा प्राप्त अर्थ तथा प्राकृतिक सम्पदा की सुरक्षा की कामना करता है, क्योंकि उसमें उसका श्रम नियोजित एवम् प्रयोजित है। ऐसा सुरक्षा के लिये राज्य-नीति का अध्ययन व समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी का परिपालन आवश्यक है।

लक्ष्य अथवा साध्य

● राज्य नीति का लक्ष्य अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था की अक्षुण्णता है।

● अमानवीयता से मानवीयता की ओर प्रगति हेतु मार्ग प्रशस्त करने के लिए साधन, अवसर तथा व्यवस्था की स्थापना एवम् सुरक्षा जो अतिमानवीयता को प्रोत्साहन देने में समर्थ हो।

❋ राज्यनीति सहज लक्ष्य को सार्थक और सर्वजन सुलभ बनाने की कामना से समझदारी की आवश्यकता है। समझदारी सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान, चैतन्य प्रकृति रूपी जीवन ज्ञान और मानवीयता रूपी आचरण ज्ञान ही संपूर्ण ज्ञान है। हर नर-नारी इसका ज्ञाता कर्ता-भोक्ता होने के योग्य ही है। इसे एक से अनेक मानव तक बोधगम्य, अनुभव गम्य रूप में प्रमाणित होना आवश्यक है। यही एक मात्र उपलब्धि अथवा जागृति ही संपूर्ण भ्रम को दूर करने के लिए पर्याप्त है।

❋ जागृत मानव परंपरा में राज्य का स्वरूप अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र अध्ययन से और आचरण से व्याख्या होने के आधार पर विधि को पहचानने के मुख्य रूप से पाँच मुद्दे पाये गये हैं। यह - (1) मानवीय शिक्षा-संस्कार (2) न्याय-सुरक्षा (3) उत्पादन

कार्य (4) विनिमय-कोष (5) स्वास्थ्य-सयंम के रूप में गण्य हैं।

राज्य प्रक्रिया में उक्त पाँचों व्यवस्थाएं सार्वभौमिकता के अर्थ में ही सार्थक होना पाया जाता है। मानवीय **शिक्षा-संस्कार** की सफलता अर्थ बोध होने के रूप में है। **न्याय-सुरक्षा** की सफलता संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति के रूप में सार्थक होना पाया जाता है। **उत्पादन-कार्य** हर परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में, समृद्धि के अर्थ में सार्थक होना पाया जाता है। **विनिमय-कोष** श्रम मूल्य के पहचान सहित, श्रम विनिमय पद्धति से सार्थक होता है। और **स्वास्थ्य-संयम** मानव परंपरा में जीवन जागृति को प्रमाणित करने योग्य शरीर की स्थिति-गति के रूप में सार्थक होता है। यह सब मानव सहज जागृति के अक्षुण्णता का द्योतक है अथवा सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज और उसकी अक्षुण्णता का द्योतक है। यही राज्य वैभव का स्वरूप है। इस विधि से हर परिवार समाधान-समृद्धि पूर्वक जीना होता है।

- यदि समस्या है तो समाधान है ही। समाधान के आधार पर निश्चितता को पाना अनिवार्य है।

- कोई भी मानव अनिश्चित विधि व व्यवस्था नहीं चाहता। विधि एवम् व्यवस्था के प्रति विश्वास एवम् निष्ठा की निरन्तरता के लिये सार्वभौम विधि व्यवस्था आवश्यक है।

  ★ इसके पूर्व में न्यायवादी व अवसरवादी व्यवहार का विश्लेषण किया जा चुका है। अवसरवादी नीति से अनिश्चित दिशा, गति एवम् घटना ही सम्भव है, जिससे व्यवस्था में स्थिरता तथा विश्वास नहीं उत्पन्न कराया जा सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि न्यायवादी नीति के विकास तथा व्यवहारान्वयन के लिये मानवीयता ही आधार है।

  ★ विधि का लक्ष्य है, निषेध पर विजय (समाधान) और व्यवस्था का लक्ष्य है विधि का पालन एवं संवर्धन। उपरोक्तानुसार निर्णीत विधि से मानवीयता की विजय होता है तथा ऐसी विधि के लिये दी गई व्यवस्था का लक्ष्य मानवीयता का संरक्षण एवम् संवर्धन ही है। इस प्रकार मानवीयता पूर्ण परंपरा विधि व व्यवस्था की उपलब्धि विश्वास है।

- विधि का मूल सूत्र मानवीयता पूर्ण आचरण ही है।

- मानव परम्परा में जागृत मानव ही शिक्षा प्रदान करने में समर्थ है। शिक्षा का प्रयोजन है, अखण्ड सामाजिकता का सूत्र एवम् व्याख्या समाधान, समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व।

इस विधि से समाज अखण्डता और सार्वभौमता के रूप में वैभवित होता है।

:: उपरिवर्णित धर्मनैतिक तथा राज्य नैतिक व्यवस्था के लिए जो मानवीयतापूर्ण दृष्टि, स्वभाव तथा विषयों को व्यवहार में आचरित करने योग्य अवसर तथा साधन प्रस्तुत हो सके तथा रूचि उत्पन्न कर सके शिक्षा नीति है।

★ समस्त मानव समाज द्वारा बौद्धिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवम् प्राकृतिक क्षेत्र में ही विभिन्न कार्य सम्पादित किये जा रहे हैं। इन तीनों क्षेत्रों में किया गया कार्य ही मानव के लिए सम्पूर्ण व्यवहार कार्य है।

:: राज्य-नीति का लक्ष्य **तन, मन एवम् धन की सुरक्षा** है तथा इसके लिए विधि तथा व्यवस्था प्रदान करना है। इस क्रम में यह जान लेना आवश्यक है कि बौद्धिक नियम की अवधारणाएँ ही क्रम से व्यवहार काल में प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक नियमों का अनुसरण करती हैं, जिससे जागृति प्रमाणित होती है। यहाँ हम बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक क्षेत्र में किए जा रहे व्यवहार के विधि व निषेध पक्ष का अध्ययन करेंगे।

★ सदुपयोगी राज्य-नीति के निर्धारण के लिए विधि व निषेध निम्नानुसार परिलक्षित होता है :-

बौद्धिक क्षेत्र

विधि (जागृत मानव प्रवृत्ति)	**निषेध (भ्रमित मानव प्रवृत्ति)**
● असंग्रह (समृद्धि का प्रमाण, व्यय के लिए आय)	● संग्रह (आय को व्यय से मुक्त करने का प्रयास)
● स्नेह (सामाजिक नियम से निर्विरोधिता) का प्रमाण	● द्वेष (आवश्यकीय नियम का विरोध) दूसरे का नाश, शोषण से स्वरक्षा की स्वीकृति
● विद्या (सहअस्तित्व पूर्ण समझ) संशय एवं विपर्यय से मुक्त जानकारी, समझ	● अविद्या (संशयात्मक एवम् विपर्ययात्मक प्रवृत्ति) अधिमूल्यन, अवमूल्यन, निर्मूल्यन प्रवृत्ति।
● सरलता (दिखावा रहित स्पष्टता) जीवन व अन्यों में गुरु मूल्यन मूल्यांकन	● अभिमान (दिखावा पूर्ण जीवन, अपने में अधिमूल्यन)

● अभय (विवेक) समाधान का प्रमाण	● भय (अविवेक)

सामाजिक क्षेत्र

● स्वधन - प्रतिफल पारितोष पुरस्कार सम्पन्नता का प्रमाण	● परधन (शोषण एवं पाखण्ड पूर्वक प्राप्त धन)
● स्व-नारी या स्व-पुरुष, (सामाजिक निर्णय अनुसार प्रमाण)	● पर-नारी या पर-पुरुष (सामाजिक निर्णय के प्रतिकूल)
● दयापूर्ण कार्य व्यवहार दया (जीने देना) पात्रता के अनुसार वस्तु सुलभता का प्रमाण	● पर-पीड़ा (दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप)

प्राकृतिक क्षेत्र

★ प्राकृतिक सम्पत्ति खनिज वन का उनके उत्पादन के अनुपात में व्यय प्रमाण	★ प्राकृतिक सम्पत्ति का उत्पादन से अधिक व्यय (अतिरिक्त व्यय)
★ प्राकृतिक सम्पत्ति के संतुलन में पूरक होने का प्रमाण	★ उत्पादन में अनानुपातीय दोहन व प्राकृतिक वैभव में हस्तक्षेप एवं शोषण (धरती क्षतिग्रस्त)
★ प्राकृतिक वैभव में आवर्तनशीलता को बनाये रखना	★ प्राकृतिक आवर्तनशीलता में बाधा उत्पन्न करना। अनावर्तिय द्रव्यों का शोषण करना।

:: उपरोक्तानुसार विधि एवम् निषेध को मूल आधार स्वीकार कर समस्त अर्थ-तन, मन एवम् धन की सुरक्षा की नीति निर्धारित होना स्वाभाविक है।

● राष्ट्रीय स्तर पर राज्य-नीति निम्न छः दृष्टिकोण से निर्धारित की जानी चाहिए तथा उसका लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए। इन बिन्दुओं के आधार पर मानव के सहअस्तित्व, जागृति तथा समृद्धि की दृष्टि से व्यवस्था तथा स्वानुशासन का सामान्यीकरण महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

★ 1. राष्ट्रीय सुरक्षा, सहअस्तित्व सिद्धान्त से।

★ 2. आर्थिक सुरक्षा, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन सिद्धान्त

आवर्तनशील विधि से।

★ 3. उत्पादन सुरक्षा, प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने के सिद्धान्त से।

★ 4. विनिमय सुरक्षा, श्रम नियोजन व विनिमय सिद्धान्त से ।

★ 5. विद्याध्ययन संस्कार सुरक्षा, सहअस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान विधि से।

★ 6. नैतिक सुरक्षा, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा से।

★ 1. **राष्ट्रीय सुरक्षा :-** राष्ट्रीय जन-जाति (राष्ट्र में रहने वाले मानव) में राष्ट्रीय स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार धारणा एवम् निष्ठा को सुरक्षित रखना। राष्ट्रीय सुरक्षात्मक नीति अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सहज है। जिससे राष्ट्रान्तर्गत व्यक्ति, परिवार तथा समाज को सुरक्षा का अनुभव हो सके और प्रत्येक व्यक्ति भय से रहित होकर व्यवस्था, व्यवसाय एवं व्यवहार में रत हो सके, जिससे समाधान समृद्धि-पूर्ण जीवन का अनुभव कर सकने का अवसर उपलब्ध हो। स्पष्ट है कि ऐसी नीति मात्र मानवीय दृष्टि को लक्ष्य में रखकर ही निर्धारित की जा सकती है, साथ ही ऐसी नीति में अन्य राष्ट्रों के शोषण की कोई संभावना न होने से परस्पर सहअस्तित्व के लिये विश्वास के आधार का निर्माण होगा ।

★ 2. **आर्थिक सुरक्षा :-** राष्ट्रीय अर्थ सुरक्षा का नीति निर्धारण निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जाना चाहिये :-

(1) व्यवस्था द्वारा सभी व्यक्तियों में उनकी क्षमता, पात्रता एवम् योग्यता के आधार पर उत्पादन कार्य में प्रवृत होने वाली नीति का विकास। इसका स्पष्ट स्वरूप परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन से है एवं समाधान-समृद्धि हर परिवार में प्रमाणित होने से है।

(2) परिवार समृद्धि के लिये प्रोत्साहन देना तथा तदनुरूप साधन सुलभता करने की नीति को अपनाना।

(3) जागृति सहज क्षमता, योग्यता एवम् पात्रता के आधार पर सम्मान व गौरव प्रदान करना।

(4) उत्पादन हेतु अधिकतम श्रम व साधन व्यय करने हेतु प्रोत्साहन देने वाली नीति का विकास करना।

(5) अनेक जाति, वर्ग, मत, सम्प्रदायों एवम् पक्षात्मक विचारों से मुक्त समाधान पूर्ण मानवीयता सहज अखण्ड समाज नीति का विकास करना।

(6) स्वधन, स्वनारी/स्व पुरुष, दया पूर्ण कार्य-व्यवहार को स्थापित करने वाली नीति का विकास करना।

(7) हर परिवार में समाधान, समृद्धि सहज आधार पर अमीरी-गरीबी का असंतुलन समाप्त करना।

(8) व्यवस्था के अंतर्गत हर आयुवर्ग के नर-नारियों को न्याय सुलभ कराने वाली पद्धति का विकास करना।

❋ समस्त अर्थ नीति द्वारा मानवीयता पूर्ण दृष्टि, स्वभाव व विषय को लक्ष्य में रखते हुए समस्त संपर्क तथा संबंधों का निर्वाह करने में व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक को समृद्धि होने की पूर्ण संभावना होनी चाहिये, जिसका मूर्त रूप अधिक उत्पादन व कम उपभोग पूर्वक स्वधन, स्व-नारी/स्व-पुरुष एवं दया पूर्ण क्रियाओं में निष्ठा एवं परधन, पर-नारी/परपुरुष एवं पर-पीड़ात्मक क्रियाओं का निराकरण ही है, क्योंकि अंततोगत्वा समस्त संपर्क एवं संबंध और स्वत्व का साकार व्यवहार्य रूप स्वधन, स्व-नारी/स्वपुरुष और दया पूर्ण कार्य व्यवहार ही है।

★ 3. **उत्पादन सुरक्षा :-** प्रत्येक व्यक्ति के श्रम और तकनीक का पूर्ण सदुपयोग करते हुए अर्थ के उत्पादन की दिशा में किये गये प्रयास की उत्पादन संज्ञा है। प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता एवं कला मूल्य को स्थापित करना ही उत्पादन है।

:: प्राप्त श्रम अर्थात् निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य का सदुपयोग ही अर्थ सुरक्षा है।

❋ मानव के लिये आवश्यकीय उत्पादन मुख्यत: दो ही हैं - 1. कृषि और 2. उद्योग। अन्य जितने भी व्यवसाय हैं, वह इनके आश्रय में तथा इनके पूरक सिद्ध होते हैं।

❋ उत्पादन की सुरक्षा के लिये व्यवस्था को निम्न तथ्यों के आधार पर नीति निर्धारण करना चाहिये।

(1) निपुणता एवं कुशलता को वरीयता प्रदान करना।

(2) निपुण एवं कुशल व्यक्ति को साधन उपलब्ध कराना।

(3) मानव उपयोगी वस्तुओं यथा आहार, आवास, अलंकार, दूरगमन, दूरश्रवण तथा दूरदर्शन के लिये वस्तुओं तथा उपकरणों पर प्रयोग तथा प्रयास को सहायता देने

वाली नीति का विकास करना।

(4) अधिकाधिक उत्पादन व व्यक्तित्व सम्पन्न करने वाली, निपुणता तथा कुशलता का समझदारी के साथ सामान्यीकरण करने वाली नीति का विकास करना।

(5) श्रम के फल का शोषण न हो, ऐसी नीति का विकास करना।

⁕ व्यवसाय की सुरक्षा के लिये नीति निर्धारण करते समय न्याय के आश्रय से या न्यायोचित उत्पादन नीति का विकास करने से ही संपर्क एवं संबंधों के निर्वाह हेतु उपयुक्त उपयोग, सदुपयोग, वितरण, प्रयोग व व्यवसाय के लिये समुचित अवसर उपलब्ध हो सकेगा।

★ 4. **विनिमय सुरक्षा -** उत्पादित वस्तुओं का श्रम मूल्य मूल्यांकन सहित उपभोक्ता को प्राप्त कराने वाले कार्य की विनिमय संज्ञा है।

⁕ विनिमय सुरक्षा के लिये निम्न आधार पर नीति निर्धारण होना चाहिए।

⁕ 1. लाभ-हानि मुक्त विनिमय हेतु सहअस्तित्ववादी दृष्टि व विनिमय पद्धति को प्रोत्साहित करने वाली नीति का निर्धारण करना।

⁕ 2. श्रम मूल्य और श्रम विनिमय आधारित विनिमय पद्धति को विकसित करना।

⁕ अंतर्राष्ट्रीय विनिमय लाभ-हानि रहित होना आवश्यक है, जो वस्तु व श्रम मूल्य के रूप में ही सफल है।

★ 5. **विद्याध्ययन सुरक्षा -** अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित, मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववादी विचार विधि से विधिवत् स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य वस्तुस्थिति सत्य का अध्ययन कराने वाली जानकारी की 'विद्या' संज्ञा है।

⁕ अध्ययन को सफल बनाने का दायित्व अध्यापक, अभिभावक अध्यापन तथा शिक्षा वस्तु और प्रणाली पर है, क्योंकि यह चारों परस्पर पूरक हैं।

⁕ शिक्षा प्रणाली, अध्यापक, माता, पिता तथा अध्ययन यह सब एकसूत्रात्मक होने से ही सफल विद्याध्ययन पद्धति का विकास संभव है, जिससे कृतज्ञता तथा सहअस्तित्व का मार्ग प्रशस्त होता है।

⁕ शिक्षा प्रणाली के लिये शिक्षा नीति के निर्धारण के लिये धर्म-नीति और अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था रूपी राज्य-नीति का निर्भ्रम ज्ञान आवश्यक है।

⁕ शिक्षा नीति का आधार एवं उद्देश्य मानव में मानवीयता तथा सामाजिकता होना

अनिवार्य है। मानवीयता ही सामाजिकता है जो सार्वभौमिक तथ्य है। इसलिए इसके आधारित शिक्षा प्रणाली से मानवीयता सम्पन्न नागरिकों का निर्माण होगा जिनकी सहअस्तित्व तथा पोषण में दृढ़ निष्ठा होगी।

शिक्षा नीति का लक्ष्य है -

⁕ मानवीय दृष्टि, प्रवृत्ति व स्वभाव सहज ज्ञान-विवेक-विज्ञान सम्पन्न समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी संपन्न नागरिकों का निर्माण, जिनमें अतिमानवीयता के लिये मार्ग प्रशस्त होता है।

⁕ शिक्षा नीति की सफलता निम्न सूत्रों से है :-

(1) विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन।

(2) मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का अध्ययन।

(3) अर्थशास्त्र के साथ प्राकृतिक एवं वैयक्तिक ऐश्वर्य के सदुपयोगात्मक तथा सुरक्षात्मक नीति पक्ष का अध्ययन।

(4) समाजशास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति तथा सभ्यता का अध्ययन।

(5) राजनीति शास्त्र के साथ मानवीयता के संरक्षण एवं संवर्धन के नीति पक्ष का अध्ययन।

(6) दर्शन शास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का अध्ययन।

(7) इतिहास एवं भूगोल के साथ मानव तथा मानवीयता का अध्ययन।

(8) साहित्य शास्त्र के साथ तात्विकता का अध्ययन।

★ 6. **नैतिक सुरक्षा :-** यह मूलतः जीवन जागृति पर आधारित है। जागृति पूर्वक ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था को पहचानना होता है। फलस्वरूप नैतिकता प्रमाणित होती है। यही सदुपयोग, सुरक्षा का अर्थ है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - सत्रह
रहस्य मुक्ति

- समझ को प्रगट न करना या न कर सकना या समझ सम्पन्न नहीं हो पाना ही रहस्य है तथा इसके लिए जो अक्षमता है उसे 'रहस्यता' संज्ञा है।

- इकाई क्रिया है। मानव ही सहअस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से संपूर्ण समझ संपन्न होता है । जागृत मानव, भ्रमित मानव के जागृति का मार्ग प्रशस्त कर स्वयं के जागृति को प्रमाणित करता है ।

- प्रत्येक इकाई का सर्वांगीण दर्शन उसके रूप, गुण, स्वभाव व धर्म से होता है। इनमें से रूप, गुण और स्वभाव समझ में आता है और धर्म की मात्र अनुभूति ही संभव है, जो अनुभव प्राप्त इकाई द्वारा एक प्रक्रियाबद्ध अनुभव के संभावना पूर्ण आदेश, संदेश एवं निर्देश व अध्ययन से ही संभव है।

- जीवन में अनुभव सहअस्तित्व में होना स्पष्ट है। अनुभव मूलक विधि से पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संज्ञानशीलता पूर्वक व्यवस्था में प्रमाणित होना स्वाभाविक है। इसी आधार पर मन में मूल्यों का आस्वादन क्रिया संपन्न होता है। तब संज्ञानशीलता अर्थात् सहअस्तित्व समाधान प्रधान रूप में प्रमाणित होता है। यही मूल्यों के आस्वादन के रूप में परिलक्षित होता है। यही निरंतर सुख का प्रमाण है और संज्ञानशीलता पूर्वक संवेदना नियंत्रित होने का प्रमाण है।

- जीवन सदा सुख की पिपासा से तृषित रहता है।

    ★ सुख की उपलब्धि के लिये पंचेन्द्रियों द्वारा अजस्त्र प्रयत्न के पश्चात् भी उसकी (सुख की) अक्षुण्णता या निरंतरता न हो पाने के परिणाम स्वरूप ही ऐसे सुख की निरंतरता की संभावना की ओर मानव पुन: प्रयत्नशील होता है। ऐसी संभावना इस सिद्धांत पर है कि जिसका चैतन्य पक्ष जितना जागृत है उसके पूर्ण होने व प्रमाणित होने की उतनी ही संभावना है। जिससे सुख की निरंतरता होती है। यही कारण है कि मानव अपने से अधिक जागृत से संपर्क एवं संबंध के लिये प्रयत्नशील रहता है ।

- रहस्यता का उन्मूलन चैतन्य पक्ष (बौद्धिक) के जागृति के स्तर पर आधारित है। चैतन्य

पक्ष (बौद्धिक) सहज जागृति स्तर भेद से उसकी अवस्थाएँ हैं ।

- बौद्धिक विकास :- पूर्ण जागृत, जागृत अर्ध जागृत, अल्प जागृत तथा अजागृत भेद से है । इसे ही पूर्ण चेतन, चेतन, अर्ध चेतन, अल्प चेतन तथा अचेतन के नाम से भी संबोधित किया गया है।
- चैतन्य इकाई में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि व आत्मा ये पाँच बल अविभाज्य हैं।
- मानव के प्रत्येक क्रियाकलाप में बौद्धिक प्रयुक्ति है। यह क्रम से आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अस्तित्वानुभूति है।
- भ्रमवश मन द्वारा संवेदना सापेक्ष आशा, वृत्ति के द्वारा आशा के अनुरूप विचार, चित्त के द्वारा विचार के अनुरूप इच्छा; यह इंद्रिय मूलक संवेदनशील प्रणाली है । बुद्धि के आत्मविमुख होने से भ्रमित चित्रण और इच्छाओं का होना पाया जाता है।
- जागृति में मन की आशा वृत्ति की अनुरूपता में, वृत्ति के द्वारा विचार चित्त की अनुरूपता में, चित्त की इच्छा बुद्धि के बोधन के अनुरूप तथा बुद्धि आत्मा की अस्तित्वानुभूति पूर्वक सार्थक होती है। फलत: प्रत्यावर्तन-परावर्तन क्रियाएं सिद्ध होती हैं।
- स्थूल शरीर और मन के मध्य में आशा, मन और वृत्ति के मध्य में विचार, वृत्ति और चित्त के मध्य में इच्छा, चित्त और बुद्धि के मध्य में संकल्प तथा बुद्धि और आत्मा के मध्य में प्रमाण की अपेक्षा रहती है तथा यह आवर्तन क्रिया है। प्रत्यावर्तन-परावर्तन के संयुक्त रूप का नाम आवर्तन क्रिया है। यही जागृत जीवन चक्र है।
- इस प्रकार जीवन में सामरस्यता रहती है। शरीर के लिये मन, मन के लिये वृत्ति, वृत्ति के लिये चित्त, चित्त के लिये बुद्धि तथा बुद्धि के लिये आत्मा, आत्मा के लिये सहअस्तित्व में अनुभव सहज प्रेरकता है।

  ⁕ स्थूल शरीर में संवेदनाओं की तृप्ति के लिए मन में आशा, मन की इस आशा के समर्थन में वृत्ति में विचार, वृत्ति के ऐसे विचार के समर्थन के लिए चित्त में इच्छा तथा चित्त में इच्छा के समर्थन के लिए बुद्धि में अपेक्षा अथवा कामना बनी रहती है । शरीर से मन, मन से वृत्ति, वृत्ति से चित्त तथा चित्त से बुद्धि विकसित इकाई होने के कारण इस परस्परता में विषमता रहती है। बुद्धि में यथार्थ अपेक्षा बनी रहती है।

  ★ मन के अनुरूप ही स्थूल शरीर का संचालन है, जिससे कि इनके बीच में आशा बनी रहती है। परंतु वृत्ति मन से विकसित होने के कारण मन की आशा के अनुरूप नहीं

बन पाती और परस्पर विषमता बनी ही रहती है । वृत्ति अपने अनुसार मन और शरीर का उपयोग चाहती है। इसी क्रम से वृत्ति, चित्त में विषमता बनी ही रहती है। यह विषमता ही श्रम की अनुभूति तथा विश्राम की तृषा के लिये कारण सिद्ध होती है।

- ✳ अनुभव मूलक विधि से सहअस्तित्व में अनुभव प्रमाण आत्मा में, अनुभव के अनुसार बोध बुद्धि में, बोधानुरूप चिंतन चित्त में, चिंतन अनुरूप तुलन (न्याय, धर्म, सत्य) वृत्ति में, तुलन अनुसार आस्वादन मन में होता है।
- ✳ अनुभवगामी विधि से वृत्ति में उत्पन्न विचारों के अनुरूप मन में आशा का होना तथा उसकी पूर्ति हेतु ही शरीर का उपयोग एवं सदुपयोग करने की, चित्त में उत्पन्न इच्छा को कार्यरूप देने हेतु विचार करने की, बुद्धि में आत्मानुभव के लिये किये गये संकल्प के अनुसार इच्छा की अपेक्षा का नियंत्रित बने रहना ही प्रत्यावर्तन क्रिया है ।
- ✳ आत्मा के मध्यस्थ क्रिया होने के कारण - बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन तथा शरीर; आत्मा द्वारा अनुशासित तथा नियन्त्रित होना अस्तित्व सहज है। इस नियन्त्रण के विरोध के क्रम में जो प्रयास है, वह ही विषमता को जन्म देता है ।
- ✳ मन, वृत्ति से; वृत्ति चित्त से; चित्त बुद्धि से; तथा बुद्धि आत्मा से आप्लावित रहती ही है। यही जागृति है फलत: इस क्रम में क्रियाशील होने पर, तृप्त होने के कारण, उनके क्रियाकलाप में पूर्ण सक्षमता आ जाती है, जिससे श्रम का क्षोभ नहीं होता तथा जीवन के सभी सोपानों में विश्राम प्रमाणित होता है । यही सर्वतोमुखी समाधान और अभ्युदय है। ऐसी स्थिति में शरीर पूर्णत: मन द्वारा नियंत्रित होता है। नियंत्रित अर्थात् संज्ञानशीलता के आधार पर संवेदनाएं नियंत्रित हो जाती हैं।

- ● जड़ परमाणु ही विकास पूर्वक चैतन्य अवस्था अथवा पद को पाता है।
  - ✳ उपरोक्त क्रमानुसार जड़ परमाणु विकास को पाकर चैतन्य पद में जीवावस्था में संवेदनाओं को वंशानुसार पहचानने के रूप में प्रमाणित हैं। तात्पर्य यह है कि 'जीवन-पुंज' के रूप में एक परमाणु क्रियाशील रहता है।
- ● जीवावस्था में, मन शरीर को जीने की आशा पूर्वक जीवंत बनाये रखते हुये वंशानुषंगीय विधि से कार्य करता है। अत: इसे अजागृत की संज्ञा है। जीवावस्था में बौद्धिक पक्ष अविकसित रहता है। उस अवस्था में मन, शरीर द्वारा नियंत्रित होता है तथा वृत्ति और चित्त उपेक्षित रहते हैं।

- ज्ञानावस्था में बुद्धि तीन अवस्थाओं में परिलक्षित होती है:-

  ★ (1) **अल्प विकसित (अल्प जागृत)** - जीवन में इच्छा पूर्वक विचार एवं आशावादी प्रवृत्ति हो तो उसे अल्प जागृत की संज्ञा दी जाती है। इस दशा में मन, वृत्ति, चित्त तंत्रित होते हैं।

  (2) **अर्ध विकसित (अर्ध जागृत)** - आत्म बोध रहित संकल्प (अवधारणा) पूर्वक इच्छा, विचार व आशा की प्रवृत्ति को अर्ध जागृत की संज्ञा है। इस दशा में मन, वृत्ति व चित्त बुद्धि-तंत्रित होते हैं।

  (3) **विकसित (जागृत-पूर्ण जागृत)** - आत्म बोध सहित संकल्प पूर्वक इच्छा, विचार, आशा प्रवृत्ति को जागृत की संज्ञा दी जाती है। इस दशा में मन, वृत्ति, चित्त व बुद्धि आत्मा द्वारा नियंत्रित एवं अनुशासित होते हैं।

- केवल **वृत्ति** और **मन** के संयोग की स्थिति में मानव जीवन में निद्रा अथवा **स्वप्न** का कार्य ही सम्पादित होता है। कार्य-व्यवहार में प्रमाणित न होने वाली कल्पनाएँ स्वप्न हैं।

- आत्म बोध पर्यन्त, मानव के द्वारा जागृत, स्वप्न एवम् सुषुप्ति (निद्रा) अवस्था में कायिक, वाचिक तथा मानसिक साधनों से सम्पन्न होने वाले समस्त क्रिया कलाप के मूल में अहंकार ही है। अर्थात् भ्रमित मान्यताएँ ही हैं।

- आत्म बोध रहित बुद्धि की 'अहंकार' संज्ञा है। आत्मबोध होने तक अहंकार का अभाव नहीं है।

- इसी अहंकार को चित्रण में 'अभिमान' संज्ञा से, वृत्ति में 'हठ' संज्ञा से तथा मन में 'आसक्ति और आवेश' संज्ञा से जाना जाता है।

- आवेश एवं आसक्ति मानव के जीवन को सफल बनाने में सर्वदा असमर्थ हैं। इसीलिए आवेश एवं आसक्ति के उन्मूलन के लिये अध्ययन, प्रयोग एवं प्रयास है।

- वृति के आश्रय में मन, चित के आश्रय में वृति, बुद्धि के आश्रय में चित का न होना ही मन और वृति, वृति और चित, चित और बुद्धि के बीच साविपरीतता है, यही बौद्धिक रहस्य है।

  ★ उपरोक्त साविपरीतता को समाप्त करने तथा बौद्धिक रहस्यता अथवा अहंकार का उन्मूलन करने के लिए निश्चित प्रक्रिया है। इस निश्चित प्रक्रिया के अनुसार अभ्यास एवं व्यवहार से ही बौद्धिक रहस्यता का उन्मूलन होता है। ऐसी प्रक्रिया दो

प्रकार से गण्य है :-

★ एक -अनुसंधान।

★ दो - अनुसरण, अनुकरण, अध्ययन।

❋ **एक - अनुसंधान -** जो आविष्कारात्मक अनुभूति है, उसका साधक पूरा अध्ययन करता है। पूरे अध्ययन से तात्पर्य है क्रिया की आरंभिक स्थिति अर्थात् ह्रास की अंतिम स्थिति और विकास व जागृति तक अध्ययन करना।

❋ इस अध्ययन से साधक को यह स्पष्ट होता है कि अंतिम से अंतिम ह्रास एक सूक्ष्म परमाणु या इससे भी सूक्ष्म हो सकता है। यह परिणाम कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो, अंततोगत्वा क्रिया ही है। अब उससे यह भी स्पष्ट होता है कि समस्त क्रियाएँ महावकाश में ओत-प्रोत हैं। यह महावकाश शून्य अर्थात् व्यापक वस्तु ही है। इस शून्य की सर्वत्र समान अवस्थिति ही एक मात्र कारण है कि समस्त इकाईयों की क्रिया के लिए समान रूप से प्रेरणा सम्पन्न रहने के लिये सत्ता उपलब्ध है। ऐसे समाधि तप्त साधक में, ज्ञान-विज्ञान-विवेक सफल होता है। जिसने संपूर्ण ह्रास-विकास को देखा है, स्वयम् को देखा है और अपने को सतत् विकासशील सृष्टि के किसी विकासांश में पाया। अब साधक यहाँ से विकास की ओर अध्ययन करता है। अध्ययन पूर्वक यह निर्णय में आता है कि विकास का चरमोत्कर्ष, व्यापक सत्ता में समूची क्रियाएँ अनवरत क्रियाशील हैं, इसी व्यापकता में अनुभूति योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता का उपार्जन ही एकमात्र परम पुरुषार्थ है, यही जागृति है। साधक यह भी अनुभव करता है कि यह मात्र उसका अथवा एक साधक का लक्ष्य नहीं अपितु समूचे मानव का अंतिम लक्ष्य है। अत: ऐसी क्षमता, योग्यता एवं पात्रता को उपार्जित करने के लिए अमानवीयता से मानवीयता की ओर न्यायपूर्ण व्यवहारपूर्वक स्वयं को अपनी स्थिति में पाता है। साधक जब अभ्यासपूर्वक पूर्णतया न्यायपूर्ण व्यवहार व धर्मपूर्ण विचार में प्रतिष्ठित हो जाता है, तो तत्काल ही ऐसी तात्विकता सहित प्रतिभा संपन्न साधक, देव मानव एवं दिव्य मानवीयता के लिए जो शेष जागृति है, उसकी पूर्ति हेतु चैतन्य पक्ष की क्षमता को विकसित करना आरंभ कर देता है। फलस्वरूप ही देव मानवीयता और दिव्य मानवीयता का पात्र बनता है और प्रमाणित होता है। व्यापकता में संपूर्ण प्रकृति का अस्तित्व, विकास और जागृति को अनुभव करने लगता है। इस उपलब्धि के फलस्वरूप ही साधक अनुभव करता है कि जीवन सफल हो गया, जागृति की

चरम उपलब्धि हुई। यह उसमें 'प्राप्त अनुभूति के आनंद' को परंपरा प्रमाण के रूप में स्थिर कर देता है। ऐसी उपलब्धि के अनंतर रहस्यता के उन्मूलन की दक्षता, व्यवहार में मानवीयता की परिपूर्ण उपादेयता को सिद्ध करने में उनका प्रस्तुतीकरण ही प्रमाण बन जाता है।

★ **दो - अनुसरण, अनुकरण तथा अध्ययन :-** इसका विशद् विश्लेषण पूर्व के अध्यायों में यथा-स्थान किया है, जिसका सारभूत कार्यक्रम है। यह जागृत परंपरागत विधि से सार्थक होता है।

❋ 1. न्यायपूर्ण व्यवहार का अनुकरण अथवा अनुसरण करना।

❋ 2. समाधान पूर्ण (धर्म पूर्ण) विचार में प्रवृत्त होना-रहना।

❋ उपरोक्त दोनों कार्यक्रमों की दृढ़ता एवं निष्ठा की अपेक्षा में सत्यता की अनुभूति का अधिकार जागृति पूर्वक प्राप्त होता है, फलस्वरूप बुद्धि आप्लावित होती है।

❋ उपरोक्तानुसार जब साधक मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं धर्म पूर्ण विचार में प्रतिष्ठित हो जाता है तब मन, वृत्ति, चित्त तथा बुद्धि सहज क्रियाएं किस प्रकार से संपादित होती है, इसका अनुभूतिपरक वर्णन नीचे दिया गया है।

● मन जब वृत्ति का संकेत ग्रहण करने योग्य होता है तब न्यायपूर्ण व्यवहार में परिवर्तित होता है, जो मित्र आशाएं हैं। मैत्री तथा न्याय की प्रत्याशा ही स्नेह के रूप में प्रदर्शित होती है। स्नेह के फलस्वरूप ही सुख तथा न्याय एवं निर्विरोधिता है। मानवीयता के संरक्षणात्मक, परिपालनात्मक और आचरणात्मक नियमों की ही 'न्याय' संज्ञा है।

● वृत्ति जब चित्त का संकेत ग्रहण करने योग्य होती है, तब शान्ति सहज अनुभव होता है। विचार की पुष्टि चिन्तन से ही है। चिन्तन से ही प्रक्रिया, फल और प्रयोजन का निर्णय होता है।

★ अत: मन, वृत्ति तथा चित्त की एकसूत्रता से न्यायपूर्ण व्यवहार के लिए मित्र आशाएं जन्मती हैं जो प्रक्रिया, फल और प्रयोजन का निर्णय करती हैं, जिसे 'धर्म पूर्ण विचार' संज्ञा है।

● चित्त जब बुद्धि का संकेत ग्रहण करने योग्य होता है तब संतोष सहज अनुभूति होती है। फलस्वरूप स्वायत्त मानव जीवन का प्रादुर्भाव होता है अर्थात् मानव स्व-तंत्रित होता है।

- ❋ ऐसे स्वतंत्र मानव में अधिक उत्पादन, कम उपभोग तथा अपव्यय का अत्याभाव होता है और वह अधिकाधिक जागृति के लिए प्रेरणा स्त्रोत होता है। मानव में स्वतंत्रता की तृषा पाई ही जाती है।

- मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि एकसूत्रता से न्यायपूर्ण व्यवहार एवं धर्मपूर्ण विचार के लिए सत्य प्रतीति होता है।

- बुद्धि जब आत्मा का संकेत ग्रहण करने योग्य होता है, तब 'स्व-बोध' होता है, यही 'आत्मबोध' हैं। आत्मबोध से सत्य संकल्प होता है। सत्य संकल्प मात्र सत्य पूर्ण एवं सत्यपूर्ण आचरण ही है।

- मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि आत्मानुशासित होने पर न्यायपूर्ण व्यवहार धर्म पूर्ण विचार में सत्यानुभूति सहज सहअस्तित्व प्रतिष्ठित होता है।

- निश्चयात्मक निरंतरता ही संकल्प है। निश्चय सहित चित्रण ही योजना है तथा योजना सहित विचार ही समाधान सहज अभिव्यक्ति है।

- पूर्वानुषंगिक संकेत ग्रहण योग्यता का प्रादुर्भाव शक्ति की अंतर्नियामन प्रक्रिया से ही है। यह व्यवहार का विचार में, विचार का इच्छा में, इच्छा का संकल्प में तथा संकल्प का अनुभव में अथवा मध्यस्थ क्रिया में प्रत्यावर्तन ही है।

- अपराध के अभाव में आशा का प्रत्यावर्तन, अन्याय के अभाव में विचार का प्रत्यावर्तन, आसक्ति के अभाव में इच्छा का प्रत्यावर्तन तथा अज्ञान के अभाव में संकल्प का प्रत्यावर्तन होता है।

  - ★ अत: अपराधहीन व्यवहार के लिए व्यवस्था का दबाव एवं प्रभाव, अन्यायहीन विचार के लिए सामाजिक आचरण का प्रभाव, आसक्ति रहित इच्छा के लिए अध्ययन एवं संस्कार का प्रभाव तथा अज्ञान रहित बुद्धि के लिए अन्तर्नियामन अथवा ध्यान आवश्यक है, जिससे ही प्रत्यावर्तन क्रिया सफल है। ध्यान का अर्थ समझने के लिए मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि को केन्द्रित करना और समझने-अनुभव करने के उपरांत प्रमाणित करने के लिए मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि को केंद्रित करना। अर्थबोध होने के लिए तथा अर्थ बोध को प्रमाणित करने के लिए ध्यान होना आवश्यक है। यही ध्येय है। सर्वमानव ध्याता है।

  - ❋ अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि मानवीयतापूर्ण व्यवस्था, सामाजिक आचरण, अध्ययन और संस्कार के साथ ही अंतर्नियामन आवश्यक है, जिससे चरम विकास

(जागृति) की उपलब्धि संभव है।

- न्याय पूर्ण व्यवहार, धर्मपूर्ण विचार तथा सत्यानुभूतिपूर्ण इच्छा संपन्न हो जाना ही जागृति है।
- व्यवहार में गलती एवं अपराध को न होने देना भी जागृति का लक्षण है। इसे मानव की परस्परता में देखा भी जाता है। न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीना ही पूर्ण जागृति है।
  - ★ मानव को अध्यात्मिक (व्यापक पक्ष), अधिदैविक (बौद्धिक पक्ष), और अधिभौतिक (जड़ पक्ष) का दर्शन, अध्ययन व प्रयोग करने का अवसर प्राप्त है। सहअस्तित्व में अनुभव व प्रयोग करने का अधिकार हर नर नारी को प्राप्त है।
  - ★ रहस्य के मूल में अहंकार अथवा भ्रम ही है।
  - ★ सत्यबोध के अभाव में चित्त में होने वाली चित्रण क्रिया में अति व्याप्ति, अनाव्याप्ति अथवा अव्याप्ति दोष का रहना अनिवार्य है । फलत: काल्पनिक आरोप चित्रण में होगा ही । चित्रण में इस काल्पनिक आरोप की 'अभिमान' अथवा भ्रम संज्ञा है।
  - ❋ मन से वृति, वृत्ति से चित्त, चित्त से बुद्धि श्रेष्ठ प्रक्रिया है। अत: इसी क्रमिक अधिकार भेद से उनका परस्पर नियंत्रण है।
- मानवयीतापूर्ण दृष्टि, स्वभाव और विषय पर अधिकार पाने के पश्चात् ही देव मानवीयता तथा दिव्य मानवीयता के लिए जो शेष प्रयास हैं, उसे करने में साधक प्रवृत्त होता है।
- आत्मबोध ही आध्यात्मिक उपलब्धि है।
  - ★ अन्तर्नियामन प्रक्रिया द्वारा ही आत्म बोध होता है, जो ध्यान देने की चरम उपलब्धि है । यह ही जागृति है। ऐसे आत्म बोध (अनुभव बोध) सम्पन्न मानव की, जागृत मानव संज्ञा है तथा यही प्रमाण रूप में मानव, देवमानव, दिव्य मानव होना पाया जाता है।
- अवधारणा के अनन्तर आत्मा की ओर बुद्धि का प्रत्यावर्तन होते ही आत्म बोध तथा ब्रह्मानुभूति (सह अस्तित्व में अनुभूति) एक साथ ही प्रभावशील होती है। प्रभावित हो जाना ही उपलब्धि है। ऐसी उपलब्धि बुद्धि को आप्लावित किये रहती है ।
- ऐसे ब्रह्मानुभूत आचरण प्रमाण सम्पन्न इकाई को मानव, देव मानव, दिव्य मानव की संज्ञा है जो सतत प्रेरणा का श्रोत है।

- मानव अपनी तथा अन्य मानव, देवमानव, दिव्य मानव, देवात्मा व दिव्यात्मा की प्रेरणा से, अनुग्रह से तथा अनुकम्पा से अध्ययन पूर्वक जागृत होना चाहता है, जिससे वह भी देवत्व तथा दिव्यत्व की उपलब्धि कर सकें।

- जागृत मानव अजागृत मानव का मार्गदर्शक है ही तथा मार्गदर्शन करता ही है।

  ⁕ सामाजिकता की 'अपेक्षा' उसके योग्य वैचारिक संवेदनशीलता से है। वैचारिक परिमार्जन आवश्यक है, क्योंकि सामाजिकता का संरक्षण सम्पर्कों एवम् सम्बन्धों के निर्वाह से है। सामाजिकता का निर्वाह परिमार्जित विचार एवम् संज्ञानपूर्ण व्यवहार से ही है। ऐसे परिमार्जित विचार एवम् व्यवहार, मात्र मानवीयता एवम् अतिमानवीयता से सम्पन्न होने पर ही सम्भव है। यही जागृति है।

  ⁕ जड़ पक्ष पर जागृत मानव सहअस्तित्व सहज संतुलन को बनाये रखने के लिए नियन्त्रण करने का अधिकार सम्पन्न रहता है। इसी नियंत्रण (ज्ञान) सहअस्तित्व में अनुभव सहज क्षमता, योग्यता तथा पात्रता पूर्ण होने पर चैतन्य पक्ष की जागृति प्रमाणित होती है, अन्यथा में उसके द्वारा ह्रास की स्वीकृति ही है।

  ⁕ नियंत्रण (ज्ञान या व्यापकता) की अनुभूति के लिये विचार पक्ष की संयमता, विचार पक्ष की संयमता के लिये चित्त शक्ति का प्रत्यावर्तन, ऐसे प्रत्यावर्तन के लिये दृढ़ता तथा निष्ठा, और दृढ़ता तथा निष्ठा के लिये जड़, चैतन्य व व्यापक का निर्भ्रम ज्ञान आवश्यक है।

  ⁕ नीचे संक्षेप में जड़, चैतन्य तथा व्यापक सत्ता के बारे में मूल निर्देशक तत्व दिये गये हैं -

- 1. जड़ मरण धर्मा, चैतन्य अमरत्वधर्मा तथा व्यापक नित्य-धर्मा है।

- 2. अनेक परमाणुओं से गठित पिण्ड या अनेक परमाणुओं से गठित अवस्था की 'स्थूल' संज्ञा है।

- 3. परमाणु की 'सूक्ष्म' संज्ञा है।

- 4. आत्मा की 'कारण' संज्ञा है।

- 5. व्यापक की 'महाकारण' संज्ञा है।

  ★ निरपेक्ष ऊर्जा सर्वत्र (व्यापक) होने के कारण सर्वदा सबको प्राप्त है। नित्य सहअस्तित्व के कारण :-

- पदार्थावस्था की इकाईयाँ इसे पाकर सक्रिय।
- प्राणावस्था की इकाईयाँ इसमें होने के कारण स्पन्दित।
- जीवावस्था की इकाईयाँ इसमें होने के कारण आशान्वित है।
- ज्ञानावस्था की इकाईयाँ इसमें होने के कारण आशान्वित और संज्ञानित हैं।
  - ★ उत्तरोत्तर विकसित इकाई में निम्नस्तरीय इकाईयों के गुण विलय रहते ही हैं।
- ज्ञान का उद्‌घाटन चैतन्य पक्ष अथवा विचारों द्वारा ही होता है।
- विचार पक्ष संस्कारों के आधार पर ह्रास और जागृति की ओर गतित है।
- दूसरों के कष्ट, दुःख, वेदना एवम् संकट के प्रति मानव में संवेदना होती ही है, जो ज्ञानानुभूति की सक्षमता अथवा संभावना के कारण है।
- ज्ञानानुभूति की योग्यता मानव के जागृति पर; मानव की जागृति संस्कारों पर; संस्कारों का विकास वातावरण, अध्ययन व प्रयास पर; वातावरण, अध्ययन व प्रयास मानवीयता, अतिमानवीयता पर; मानवीयता, अतिमानवीयता ज्ञानानुभूति की योग्यता पर निर्भर करती है।
- स्वस्वरूप ही आत्मा (मध्यस्थ क्रिया) है। मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि से आत्मा सहज अनुभव श्रेष्ठ क्रिया है। फलस्वरूप ही आत्मा के प्रभाव से पूर्णतया प्रभावित न होने तक बुद्धि में आनन्दानुभूति, चित्त में सन्तोषानुभूति, वृत्ति में शान्ति की अनुभूति तथा मन में सुखानुभूति नहीं है।
- जो सुखी नहीं है, वह दूसरों को सुखी नहीं कर सकता। जो सुखी नहीं है, वह दुःखी ही होगा तथा जिसके पास जो होगा वह उसी का बंटन कर सकेगा।
- बुद्धि को आत्मबोध व व्यापकता सहज अनुभव बोध का अवसर है। इसीलिये ऐसी अनुभूति के अनन्तर सर्वतोमुखी समाधान व समझ सुलभ है।
- विकसित इकाई अविकसित इकाई के अनुरूप व्यवहार और विचार से ह्रास की ओर गतित होती है जैसे मानव जीवों से विकसित है पर जीवों के सदृश्य व्यवहार, विहार एवं आहार के प्रयास से ही ह्रास की ओर गतित है।
- आसक्तिवश ही गुरु मूल्य का लघु मूल्य की ओर झुकाव है, जो अवमूल्यन है। गुरु मूल्य को लघु मूल्य के लिए प्रायोजित एवं नियोजित करने के लिए भ्रम का रहना अनिवार्य है।

- यथार्थता से भिन्न मान्यता ही 'भ्रम' है।
- ह्रास की सूचना रहते हुए भी विकास के स्पष्ट ज्ञान एवम् निष्ठा के अभाव में मानव विवशता पूर्वक अर्थात् भ्रमपूर्वक पतन की ओर गतित है।

★ अपराधहीन व्यवहार के लिये सार्वभौम व्यवस्था की प्रेरणा, न्यायपूर्ण विचार के लिये सामाजिक आचरण का प्रभाव, धर्मपूर्ण इच्छा के लिये अध्ययन एवम् सुसंस्कार का प्रभाव तथा अज्ञान रहित बुद्धि के लिये अर्न्तनियामन का प्रभाव आवश्यक सिद्ध होता है।

  ❋ अतः परस्परता में जो व्यतिरेक है उसके उन्मूलन के लिये तथा परस्परता में विश्वास को उत्पन्न करने के लिये, जो जागृति के लिये प्रथम सोपान है, मानवीयतापूर्ण आचरण व सामाजिकता, न्यायपूर्ण व्यवस्था, सहअस्तित्व रूपी सत्य प्रतिष्ठित शिक्षा एवम् इसमें विश्वासपूर्वक व्यक्तिगत निष्ठा उत्पन्न करना सबका सम्मिलित दायित्व सिद्ध होता है।

  ★ ह्रास एवं विकास का जो क्रम है, वह आवर्तनशीलता के आधार पर सिद्ध होता है। प्रत्येक मानव जागृति ही चाहता है, किन्तु भ्रमवश ह्रास को प्राप्त करता है। इसका कारण मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा के बीच आवर्तन एवं प्रत्यावर्तन क्रिया एवं उसके प्रभाव का ज्ञान न होना ही है, जो रहस्यता के रूप में मानव मन को उद्वेलित किए रहता है।

- भ्रान्त अवस्था में प्रधानतः छः प्रकार के आवेशों को पाया जाता है, वे हैं 1. काम, 2. क्रोध, 3. मद, 4. मोह, 5. लोभ और 6. मत्सर।
- इन सबके मूल में आवेश है। आवेश ही मानव के लिए दुःख का कारण है।
- आवेश के मूल में हठ, हठ के मूल में भ्रम और भ्रम के मूल में अहंकार है।

  :: हठ :- अपने विचार या व्यवहार से पूर्णतः प्रभावित हो जाना हठ है।

  :: काम :- प्रजनन या यौन संवेदना क्रिया में सुख पाने की प्रवृत्ति की काम संज्ञा है।

  :: क्रोध :- स्वयम् की अक्षमता का प्रदर्शन ही क्रोध है।

  :: मदः- असत्यता के प्रति मान्यता की पराकाष्ठा ही मद है।

  :: मोह :- मुग्ध हो जाना ही मोह है।

  :: लोभ :- पात्रता से अधिक विशेष विभूति के प्रति उत्कट वांछा एवम् प्रयास ही

लोभ है। सुविधा-संग्रह प्रवृत्ति होना।

:: मत्सर :- दूसरे के ह्रास एवम् पतन हेतु उत्कट कामना व प्रयास मत्सर है ।

- मन में आवेश, वृत्ति में हठ, चित्त में भ्रम तथा बुद्धि में आत्मा से विमुखता (अहंकार) ही शरीर मूलक प्रवृत्तियाँ है, और मन में मित्र-आशा, वृत्ति में विचार, चित्त में इच्छा और बुद्धि में ऋतम्भरा, आत्मा में अनुभव प्रमाण परावर्तन क्रिया है।

- मन एवम् वृत्ति के मध्य में भ्रमित मनःकृत वातावरण के दबाव से दुःख तथा इसके विपरीत वृत्ति एवम् मन के मध्य में वृत्ति सहज वातावरण के प्रभाव से सुख की उपलब्धि होती है ।

- वृत्ति एवम् चित्त के मध्य में वृत्ति कृत वातावरण के दबाव से अशांति तथा इसके विपरीत चित्त एवम् वृत्ति के मध्य में चित्त सहज वातावरण के प्रभाव से शान्ति की उपलब्धि होती है।

- चित्त एवम् बुद्धि के मध्य में चित्त कृत वातावरण से असंतोष तथा इसके विपरीत बुद्धि एवम् चित्त के मध्य बुद्धि सहज वातावरण से संतोष की उपलब्धि होती है।

- बुद्धि एवम् आत्मा के मध्य में आत्मा का ही वातावरण होना पाया जाता है क्योंकि आत्मा मध्यस्थ है । यह वातावरण प्रभावपूर्ण रहता है तथा आत्माभिमुख बुद्धि सहअस्तित्व में अनुभव सहज आनन्द की अनुभूति रहना पाया जाता है।

  ★ इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि जागृत जीवन में मन और वृत्ति के योग से सुख, वृत्ति और चित्त के योग से शान्ति, चित्त व बुद्धि के योग से संतोष तथा बुद्धि और आत्मा के योग से आनन्द की अनुभूति होती है । यही जागृति है।

- जागृत जीवन में आवर्तन क्रिया में आत्मसत्ता का बुद्धि में, बुद्धि सत्ता का चित्त में, चित्त सत्ता का वृत्ति में तथा वृत्ति-सत्ता का मन में पूर्णतः अवगाहन होता है। चूंकि मन से वृत्ति, वृत्ति से चित्त, चित्त से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है, जो जागृति मूलक आवर्तन क्रम के अनुसार आनन्द, संतोष, शान्ति और सुख के रूप में प्रमाणित होता है।

- बुद्धि के लिए आत्मानुभूति तथा व्यापकता का बोध, चित के लिए सत्यबोध पूर्ण बुद्धि का चिंतन, वृति के लिए यथार्थ चिन्तनपूर्ण चित का विचार और मन के लिए न्यायपूर्ण विचारों का मनन ही पूर्ण विकास है जो प्रत्यावर्तन प्रक्रिया के द्वारा देव मनुष्य तथा दिव्य मनुष्य का जीवन सिद्ध होता है।

- आत्मा, मध्यस्थ क्रिया होने के कारण प्रभावी ही रहता है, क्योंकि दबाव सम-विषम में

ही है। अनुभव प्रभाव मध्यस्थ होने के कारण दबाव मुक्त है। अनुभव सहज नित्य प्रभाव ही है।

- बुद्धि के लिए आत्मानुभूति तथा व्यापकता का बोध, चित्त के लिए सत्य बोध पूर्ण बुद्धि का चिंतन, वृत्ति के लिए यथार्थ चिंतन पूर्ण चित्त का विचार और मन के लिए न्याय पूर्ण विचारों का मनन ही पूर्ण विकास है जो प्रत्यावर्तन प्रक्रिया की उपलब्धि है। इस प्रत्यावर्तन प्रक्रिया के द्वारा देव मानव तथा दिव्य मानव का जीवन सिद्ध होना पाया गया है।

- कुछ इकाईयों का विकास (जागृति) तथा अन्यों का ह्रास (भ्रम) एक रहस्य सा लगता है। इस रहस्य के मूल में प्रत्यावर्तन क्रिया है। ह्रास की ओर गतित मानवों को अन्यों का विकासशील होना रहस्यमय लगता है; जबकि इसमें कोई रहस्य नहीं है। ह्रास की ओर गतित मानव भी उन्हीं साधनों का उपयोग कर ह्रास को प्राप्त कर रहा है, जिन साधनों का उपयोग कर दूसरा व्यक्ति विकसित (जागृत) हो रहा है अर्थात् साधन वही है मात्र उनकी प्रयुक्ति की दिशा में ही अंतर है।

- आत्मा मध्यस्थ क्रिया है। मध्यस्थ-क्रिया का वातावरण भी मध्यस्थ है, यही कारण है कि आत्मा तथा उसके वातावरण पर्यन्त सम तथा विषम का दबाव नहीं पड़ता है।

- सत्ता व्यापक है इसलिए वह दबाव का कारण सिद्ध नहीं होता। क्रिया के बिना दबाव या प्रभाव सिद्ध नहीं होता। अत: शून्य अथवा व्यापक सत्ता प्रभाव व दबाव दोनों से मुक्त व सम-विषम प्रभाव से तटस्थ है। हर इकाई स्वयम् की पात्रता वश ही उसे पाकर गतिशील है।

    ★ व्यापक सत्ता सर्वत्र एवम् सर्वकालिक अवस्थिति तथा उसमें समस्त क्रियाएं समाहित होने से यह सिद्ध हुआ कि व्यापक सत्ता एवम् क्रियाएं अविभाज्य है।

    ❋ यह सर्वकालिक, सर्वदेशिक है एवम् सर्वत्र व्याप्त होने के कारण सबको समान रूप से प्राप्त है। इसलिए, यह सिद्ध होता है कि सभी शून्य में संरक्षित व नियंत्रित है। यह नियंत्रण ही इकाई की चेष्टा का मूल कारण है। इसलिए सत्ता को 'महाकारण' संज्ञा से भी जाना जाता है।

    ★ यह विकल्प अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में है। इस प्रस्ताव में मानव ही अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण देना प्रतिपादित है। साथ ही मानव ही प्रमाण होने का साक्षी को भी सँजो लिया है। इस मुद्दे पर सर्वमानव का ध्यानाकर्षण करना आवश्यक है ही। इस क्रम में समुदाय चेतना से मानव चेतना,

मानव चेतना से समाज चेतना में परिवर्तित होना ही महत्वपूर्ण घटना है। ऐसे स्थिति की सफलता मानव ही, शिक्षा-संस्कार पूर्वक, सर्वतोमुखी समाधान संपन्न होना ही एक मात्र उपाय है। इसे सार्थक बनाने के क्रम में ही मानव व्यवहार दर्शन, मानव के सम्मुख प्रस्तुत है। इस प्रकार समग्र विकास और जागृति को परंपरा में प्रमाणित करने हेतु एक मात्र इकाई मानव है क्योंकि अस्तित्व में केवल मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में है। भ्रमित मानव के द्वारा भ्रमित मानव के चार ऐश्वर्यों (रूप, बल, पद, धन) का शोषण होता है।

- जागृति का वैभव ही अज्ञान का निराकरण है।
- अविकसित के प्रति आसक्ति (आकर्षण) से ही विवशता है, जो जागृति को अवरूद्ध करती है। जैसे भ्रमित परम्परा में मानव पशुओं के सदृश्य जीता देखा गया है।
- अविकसित, विकसित के लिए साधन ही सिद्ध हुआ है और विकसित अविकसित के लिए साध्य।
- साधन का सदुपयोग ही विकास है और उसका दुरूपयोग ही ह्रास का द्योतक है।
- विकसित का एकसूत्रवत् अनुकरण तथा अनुसरण पूर्वक स्वयं स्फूर्त होना ही और जागृति को प्रमाणित करना ही सर्वमानव का वैभव है ।
- विश्राम या समाधान बौद्धिकता का वैभव है।
- अध्यात्मिकता की कोई सीमा नहीं है क्योंकि यह व्यापक है। व्यापक वस्तु में सहअस्तित्व रूपी समझ ही समाधान है। इसे प्रमाणित करना ही सर्वमानव का सौभाग्य है।
- भौतिकता परिणामवादी, बौद्धिकता अमरत्ववादी तथा अध्यात्मिकता नित्यवादी हैं ।
- चैतन्य इकाई के संस्कार भेद से ही उसकी क्षमता, योग्यता एवम् पात्रता है।
- क्षमता, योग्यता एवम् पात्रता के अनुसार ही चैतन्य इकाई ने मानवीयता, अतिमानवीयता और अमानवीयता का उद्घाटन किया है।
- मानव की क्षमता भेद से क्रम से बोध, दर्शन, कल्पना, आशा, अवस्था, प्रयास, प्रभाव और मानव की क्षमता का द्योतक है।
- पदार्थ, मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा का नाश नहीं है या अभाव नहीं है। इनमें मात्र विकास और जागृति का ही न्यूनाधिक्य है।

- पदार्थ परिणामवादी, प्राण तरंगवादी, मन चयनवादी, वृत्ति तुलनवादी, चित्त चित्रणवादी, बुद्धि बोधवादी तथा आत्मा अस्तित्ववादी तत्व है।
- आत्मा तीनों कालों में मध्यस्थ क्रिया के रूप में एक सा विद्यमान है। अस्तित्व अपरिवर्तनीय है। इसका आत्मा में अनुभव, बुद्धि में बोध होता है।
- स्वस्वरूप तथा परस्वरूप बोध बुद्धि में, पूर्ण अपूर्ण चित्रण भेद चित में, सत्यासत्य, धर्माधर्म, न्यायान्याय, लाभालाभ, हिताहित, प्रियाप्रिय भेद वृति व प्रवृति में पूर्वानुक्रम या परानुक्रम भेद मन में तथा उसकी चयन क्रियाएं है।
- वृत्ति, चित्त, बुद्धि व आत्मा के अनुकूल प्रेरणा की 'पूर्वानुक्रम' तथा प्राण, हृदय, शरीर और उसके व्यवहार, व्यवसाय के अनुकूल विवशता या दबाव की परानुक्रम संज्ञा है ।
- भौतिक, रासायनिक वस्तु व सेवा में आसक्ति से संग्रह, लोभ व कामुकता; प्राण तत्व में आसक्ति से द्वेष, मोह, मद, क्रोध, दर्प; जीवत्व (जीने की आशा) में आसक्ति से अभिमान, अज्ञान, ईर्ष्या और मत्सर यह अजागृत मानव की प्रवृत्तियाँ है। सत्य के प्रति निष्ठा से कर्त्तव्य में दृढ़ता, असंग्रह, सरलता तथा अभयता व प्रेमपूर्ण मूल प्रवृत्तियाँ सक्रिय होती हैं।
- पूर्ण-बोध का अवसर इस भूमि पर केवल मानव को ही है, अन्य किसी इकाई को नहीं । इसलिए मानव उसके बिना सुखी नहीं हुआ है। स्वस्वरूप (आत्म) बोध को पूर्ण बोध संज्ञा है।

  :: पूर्ण बोध - अस्तित्व दर्शन बोध, जीवन ज्ञान बोध, मानवीयतापूर्ण आचरण बोध।

  :: अपूर्ण बोध - सहअस्तित्व में अनुभव प्रमाण बोध होने के पहले अपूर्ण बोध।
- जागृत मानव परम्परा ही सर्वमानव में, से, के लिए सर्वशुभ का स्त्रोत है।
- मनःस्वस्थता अथवा आनंद की उपलब्धि ही रहस्य से मुक्ति है।
- स्वस्वरूप की अनुभूति परम्परा सहज योग विधि से सार्थक होना पाया जाता है। योग का अर्थ मिलन है । सार्थक मिलन का अर्थ जागृत परम्परा में शरीर और जीवन का योग होने से है। जागृत मानव के साथ जागृति के लिए मिलन क्रिया सम्पन्न होने से है।

''सर्व शुभ हो''

अध्याय - अट्‌ठारह

सुख-शांति-संतोष और आनन्द

- मानव ने अनुभूति में 'सुख-शान्ति-संतोष और आनन्द' सहज निरन्तरता पाने का प्रयास किया है।

- अनुभूति के लिये योग आवश्यक है। योग के प्राप्त एवम् प्राप्य दो भेद हैं।

  ❋ प्राप्य योग में किसी के योग में किसी का वियोग भी है । प्राप्त योग में न किसी का योग है और न ही किसी का वियोग है। प्राप्ति उसी की होगी जिसका अभाव होगा । प्राप्त योग (व्यापक सत्ता) से रिक्त मुक्त कोई इकाई नहीं है या क्रिया नहीं है। इसीलिये प्राप्य योग का ही सान्निध्य अथवा संग्रह होता है तथा प्राप्त योग की मात्र अनुभूति होती है।

- प्राप्त योगानुभूति के लिए सुयोग्य क्षमता, योग्यता और पात्रता ही अधिकार है। ऐसी सुयोग्य क्षमता, योग्यता और पात्रता प्राप्त करना ही इकाई के जागृति का चरमोत्कर्ष है ।

  ❋ सुयोग्य क्षमता, योग्यता और पात्रता के लिये सहअस्तित्व में अध्ययन है। अनुभव के लिए मानव ने अध्ययन, प्रयोग, अनुसंधान तथा अभ्यास भी किये हैं, जो मानवीयता और अतिमानवीयता के रूप में परिलक्षित हुआ है।

  ★ इस दिशा में जागृति का परिचय चैतन्य, ज्ञानावस्था के जागृत मानवों में ही पाया जाता है, जो मानव, देव मानव एवम् दिव्य मानव के रूप में है। मानव देव तथा दिव्य मानवों की संख्या वृद्धि के लिए समुचित प्रयोग, अध्ययन, व्यवहार व व्यवस्था के स्तर में एकसूत्रता को अनुस्यूत किया जाना मानव कुल के लिये अति आवश्यक है, क्योंकि ऐसे विकसित मानवों द्वारा अपराध या अपव्यय की संभावना नहीं है।

- अज्ञान, अत्याशा तथा अभाववश ही मानव अपराध करता है और अविवेकवश ही अपव्यय करता है ।

  ❋ अपराध और अपव्यय, यह दोनों व्यवहार, मानवीयता और सामाजिकता की दृष्टि से सहायक नहीं है। अजागृति वश अपराध है।

- मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) का अध्ययन अनुसंधानपूर्वक प्रस्तुत मध्यस्थ दर्शन का

शोधपूर्वक अध्ययन अनुसरण ही एकसूत्रता है। एकसूत्रता न्याय, धर्म तथा सत्यतापूर्ण व्यवहार, विचार एवं अनुभूति ही है।

- मानव को विचार के अभाव में किसी भी सम-विषमात्मक क्रिया सम्भावना नहीं है ।

- सत्य पहले से ही प्राप्त सत्ता है, जिसकी उपस्थिति जागृति के पूर्व भी पाई जाती है और अन्तिम ह्रास भी इसमें ही अवस्थित है । इसी के आनुषंगिक जो अनुभूति है, उसे 'पूर्वानुक्रम' की संज्ञा है। ऐसी अनुभूति में ही मानव ने समाधान एवम् आनन्द की निरंतरता का अनुभव किया है।

- मानव में तीनों ऐषणाएं, मानवीय विषय-प्रवृत्ति के रूप में स्पष्ट हुआ रहता है, दृष्टि न्याय प्रधान, धर्म व सत्य सम्मत रहती है। इनका स्वभाव धीरता, वीरता, उदारता के रूप में पहचाना गया है । ऐसे विषय, प्रवृत्ति, स्वभाव व दृष्टि संपन्न मानव को जागृत मानव के रूप में पहचाना गया है । इन्हें सर्वतोमुखी समाधान ज्ञान हुआ ही रहता है। उसे क्रियान्वयन करने की स्थिति में ऐषणाएं विशेषकर पुत्रेषणा, वित्तेषणा सीमित क्षेत्रों में व्यक्त करने के लिए व्यस्त रहते हैं। इस विधा में मानव उपयोगी, सदुपयोगी होते हुए, प्रयोजन पूर्ण होने में अपेक्षा बनी रहती है। इसलिए देवमानव, दिव्यमानव के रूप में व्यक्त होना, प्रमाणित होना आवश्यकता के रूप में होना पाया जाता है।

- पूर्वानुक्रम अनुभूति में, निहित क्रिया के रूप में, विकसित का संकेत ग्रहण करना है, जिससे विकास की ओर प्रवृत्ति, प्रयास एवम् उद्देश्य का रहना परम आवश्यक है।

- हर मानव जागृतिशील है अथवा जागृत होना चाहता है। हर मानव योग पूर्वक ही जागृत होता है। जागृति के लिए ही वह आतुर, कातुर, आकुल, व्याकुल, आवेशित अथवा उद्विग्न रहता है।

:: आतुर :- पात्रता से अधिक इच्छा प्रगट करने का प्रयास।

:: कातुर :- वाँछित इच्छा पूर्ति के लिए शीघ्रता से कार्यरत होना जिसमें कुशलता, निपुणता और पाण्डित्य का अभाव हो।

:: आकुल :- वाँछित के अभाव की पीड़ा का अनुभव।

:: व्याकुल :- वाँछित की पीड़ा से भर जाना।

:: उद्विग्न :- वाँछित क्रिया में अप्रत्याशित गति।

:: आवेश :- अतिक्रमण या आक्रमण से प्राप्त दबाव ही आवेश है।

:: विधिवत् आचरण :-धर्मनीति एवं राज्यनीति सम्मत व्यवहार।

- आस्वादन एवं अनुभूति के लिए ही मानव द्वारा विभिन्न सभी पक्षों का अनुसंधान, संधान, प्रयोग व व्यवसाय, अभ्यास तथा आविष्कार किया गया है।

  :: आस्वादन :- जो जिसमें नहीं हो या कम हो और उसे पाने की इच्छा हो, ऐसी स्थिति में उसकी उपलब्धि से प्राप्त प्रभावपूर्ण क्रिया की, जिसमें तृप्ति या तृप्ति की प्रत्याशा अवश्य हो, 'आस्वादन' संज्ञा है।

- कामना-जन्य क्षुधा तथा तृषा, राग द्वेषात्मक आवेशजन्य काम और क्रोध, मन आशित चार विषय तथा लोभ यह भ्रमित मानव की विवशताएँ हैं। जागृत विचारों से पोषित व्यवहार एवं तीन ऐषणाएँ, चिंतन से प्रस्तुत कला एवं साहित्य, बोधपूर्वक प्रस्तुत तात्विकता तथा समाधान, जागृत मानव के द्वारा उद्घाटित हुआ है।

- संसार के समस्त क्रियाकलाप व्यापक सत्ता की अनुभूति, विकसित के सान्निध्य और अविकसित के आस्वादन के लिये है ।

- सहअस्तित्व में अनुभव ही सर्वमानव का ईष्ट है। अनुभव के फलन में सहअस्तित्व में तद्रूपता, तादात्म्यता होना स्वाभाविक है। ऐसे तादात्म्य मानवत्व संपन्न मानव ही देव मानव, दिव्य मानव कोटि में होते हैं। ऐसे मानव के तत्सान्निध्य एवं तदावलोकन होना जागृत मानव परंपरा में भावी है। इससे स्पष्ट हुआ कि चरम विकास और जागृति व अभिव्यक्ति प्रमाण सदा-सदा मानव परंपरा में होना ही सौभाग्य है।

- भ्रमित मानव जागृति क्रम से जब जागृत होता है, तब जागृति ईष्ट होने के आधार पर जो भ्रमात्मक गुण स्वभाव रहा है वह शनैः शनैः विलय हो जाता है। फलतः जागृति में तद्रूपता को जीवन प्रमाणित करता है। जो मानव परंपरा में प्रमाणित होता है। भ्रमित अवस्था में अधिमूल्यन, अवमूल्यन, निर्मूल्यन को मूल्य माने रहते हैं, वह पूर्णतया जागृत होकर, जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य और उपयोगिता व कला (सुंदरता) मूल्य को पहचानना बन जाता है। यही तादात्म्यता का प्रमाण है। यही तत्सान्निध्यता है। सहअस्तित्व नित्य सान्निध्य है। जागृति की निरंतरता ही तदावलोकन है। जागृति में तादात्म्यता ही भ्रम का समापन है। भ्रम का समापन का तात्पर्य जागृति के उपरांत अपने-आप भ्रम का पूर्णतया प्रभाव शून्य हो जाने से है।

  * ईष्ट के गुण, स्वभाव, धर्म से पूर्णतया प्रभावित हो जाना ही तद्रूपता है। स्वमूल्य का ईष्ट के मूल्य में विलीनीकरण ही तादात्मयता है। ईष्ट का आश्रय भाव ही

तत्सान्निध्य है। ईष्ट का दर्शन मिलते रहना ही तदावलोकन है। जागृति ही मानव का ईष्ट है। तद्रूपता, तादात्मयता, तत्सान्निध्यता एवं तदावलोकन ही विकसित की अनुभूति का अंतिम लक्ष्य एवं उपलब्धि है।

- जागृति पूर्वक ही मानव में प्रमाण सहित मूल्यों की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन होता है और इसकी निरंतरता मानव परंपरा में बना ही रहता है। यही प्रेम व भक्ति है।
- दया, कृपा, करुणा की संयुक्त अभिव्यक्ति ही प्रेम है। जिसका हर जागृत मानव में, से प्रमाणित होना स्वाभाविक है। यह तदावलोकन में पायी जाने वाली शीर्ष कोटि की उपलब्धि व अनुभूति है।
- व्यापकता में अनुभूति से प्राप्त आप्लावन से (प्रभाव व प्रवाह) बुद्धि, चित्त, वृत्ति एवं मन पर्यन्त प्रभावशील है। इस आप्लावन को बुद्धि के स्तर पर आनंद, चित्त के स्तर पर संतोष, वृत्ति के स्तर पर शांति तथा मन के स्तर पर सुख संज्ञा है। यह अनुभूति ही इकाई का चरमोत्कर्ष है ।
- सहअस्तित्व में अनुभूति आत्मा करती है, तभी बुद्धि का प्रत्यावर्तन संभव होता है।
- मन का प्रत्यावर्तन वृत्ति में, वृत्ति का प्रत्यावर्तन चित्त में, चित्त का प्रत्यावर्तन बुद्धि में, बुद्धि का प्रत्यावर्तन आत्मा में एवं आत्मा का प्रत्यावर्तन व्यापक सत्ता में होता है ।
- प्रत्यावर्तन ही जागृति का कारण है।
- मानव में जागृति ज्ञान, विवेक, विज्ञान पूर्वक ही है जिसे बौद्धिक पक्ष कहते हैं। जो मानवीयता तथा अतिमानवीयता सहज है।
- जागृत मानव में मध्यस्थ व्यवहार, विचार व अनुभव पाया जाता है।
- मध्यस्थ व्यवहार :- न्यायपूर्ण व्यवहार।
- मध्यस्थ विचार :- धर्मपूर्ण विचार।
- मध्यस्थ अनुभव :- सहअस्तित्व रूपी परम सत्य।
- न्यायपूर्ण व्यवहार ही मानवीयतापूर्ण व्यवहार है। मानवीयता पूर्ण व्यवहार से तात्पर्य है मानवीयता के प्रति निर्विरोधपूर्ण व्यवहार जिसको समझना व समझाना अखंड मानव समाज की दृष्टि से आवश्यक है। इसके लिए अध्ययन व शिक्षा आवश्यक है।
- शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा केवल व्यवसाय का ज्ञान कराया जाता है यह मात्र भौतिक

समृद्धि के लिये सहायक हुआ है।

- मानवीयता और अतिमानवीयता का वर्गीकरण एवं पुष्टि मानव के साथ किए गये व्यवहार से ही सिद्ध हुई है, जिसके लिए अध्ययन तथा दीक्षा आवश्यक है।

:: दीक्षा अनुभवमूलक विधि से :- सुनिश्चित व्यवहार पद्धति व आचरण पद्धति बोध की 'दीक्षा' संज्ञा है, जो व्रत है, जिसकी विश्रृंखलता नहीं है, अथवा जिसमें अवरोध नहीं है।

- मानव के आहार, विहार, व्यवहार व व्यवस्था में भागीदारी से ही उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है।

:: व्यक्तित्व :- स्वयं में निहित प्रतिभा-प्रसारण के क्रम में सहायक आहार, विहार व व्यवहार की 'व्यक्तित्व' संज्ञा है।

★ व्यवहार का ईष्ट-अनिष्ट, उत्थान-पतन, विकास-ह्रास, उचित-अनुचित, लाभ-हानि, न्याय-अन्याय, पुण्य-पाप, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, समाधान-समस्या, आवश्यक-अनावश्यक, भेद-प्रभेद से तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति का मूल्यांकन उसके चैतन्य पक्ष की प्रतिभा का ही मूल्यांकन है, क्योंकि चैतन्य इकाई द्वारा ही जड़ पक्ष का चालन, संचालन, प्रतिचालन, परिपालन, परिपोषण, मूल्यांकन, परिवर्धन व परिवर्तन की क्रिया का संपादन हुआ है, जो उसी की इच्छा व विचार का पूर्व रूप है।

:: ईष्ट :- प्रयोजनशील व सार्थक इच्छा के अनुकूल मानवीयतापूर्ण व अतिमानवीयता सहज उपलब्धि।

समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व सहज ज्ञान, विवेक, विज्ञान है।

:: अनिष्ट :- प्रयोजनशील व सार्थक इच्छा के प्रतिकूल उपलब्धि।

:: उत्थान :- मानवीयता की ओर गति।

:: पतन :- अमानवीयता की ओर गति।

:: ह्रास :- अधिक मूल्यन से न्यून मूल्यन की ओर परिणाम।

:: विकास :- न्यून मूल्य से अधिक मूल्य की ओर परिणाम।

:: शोषण :- भ्रमवश किया गया कार्य-व्यवहार।

:: पोषण :- मानवीयता, अतिमानवीयता सहज परंपरा।

:: अनुचित :- समय, परिस्थिति तथा घटनाओं के संदर्भ में मानवीयता या अतिमानवीयता का शोषण, विरोध।

:: उचित :- समय, परिस्थिति तथा घटनाओं के अनुसार मानवीयता या अतिमानवीयता का पोषण।

:: लाभ :- कम वस्तु व सेवा के बदले में अधिक वस्तु व सेवा का पाना।

:: हानि :- अधिक वस्तु व सेवा के बदले में कम वस्तु व सेवा का पाना।

:: न्याय :- मानवीयता के पोषण के लिए संपादित क्रियाकलाप व व्यवहार। संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, उभयतृप्ति ही न्याय है।

:: अन्याय :- मानवीयता के विपरीत शोषण के लिए किया गया क्रियाकलाप व व्यवहार तथा अमानवीयतावश क्रियाकलाप व व्यवहार ही अन्याय है।

:: पुण्य :- मानवीयता तथा अतिमानवीयतापूर्ण व्यवहार।

:: पाप :- अमानवीयतावादी व्यवहार।

:: विधि :- सामाजिकता, मानवीयता, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की संरक्षण पोषणवादी नीति, कार्य व्यवहार।

:: निषेध :- सामाजिकता की शोषणवादी नीति, अमानवीय कार्य व्यवहार। जीव चेतनावश किया गया समस्त कार्य व्यवहार विचार।

:: कर्त्तव्य :- प्रत्येक स्तर पर प्राप्त संबंध एवं संपर्क के मध्य निहित मानवीयतापूर्ण आशा व प्रत्याशा पूर्वक व्यवहार। संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह।

:: अकर्त्तव्य :- प्रत्येक स्तर पर प्राप्त संबंध एवं संपर्क के मध्य निहित मानवीयतापूर्ण आशा व प्रत्याशा का निर्वाह न करने के स्थान पर अमानवीयतावादी आचरण अकर्तृत्व है।

:: समाधान :- प्रत्येक क्रिया के लिए परिशिष्ट एवं परिमार्जित पद्धति के अनुसरण में स्थिति सत्य वस्तुगत सत्य एवं वस्तुस्थिति का ज्ञान तथा सही, क्यों, कैसे का उत्तर, समाधान।

:: समस्या :- पशुमानव, राक्षस मानव का कार्य व्यवहार। समाधान के विपरीत में समस्या।

:: आवश्यक :- मानवीयता तथा अतिमानवीयता की ओर प्रगति।

:: अनावश्यक :- अमानवीयता की ओर गति।

:: चालन :- त्वरणन।

:: संचालन :- संगठित रूप से पूर्णता के अर्थ में चालन, विधिवत चालन।

:: प्रति-संचालन :- संतुलित रूप में त्वरणन।

:: प्रतिपालन :- जीवन में व्यतिक्रम का निवारण।

न्याय, धर्म, सत्य प्रतीत होने के अर्थ में पालन ।

:: परिपालन :- परम्परा के अर्थ में पालन।

:: परिपोषण :- जीवन-क्रम को जागृति सहज निरंतरता प्रदान करना।

:: परिवर्धन :- जीवन के क्रिया-कलाप में जागृति के लिए सहयोग।

:: चित्त-परिवर्तन :- मनाकार में उन्नतोचित्त स्फूर्त होना।

- खनिज, वनस्पति एवं जीव का उपयोग एवं सदुपयोग प्राकृतिक एवं वैकृतिक भेद से मानव करता है।

:: वैकृतिक :- उपयोगिता के अर्थ में मनाकार को साकार करना।

- संवेदन, संवहन, संरक्षण, संबोधन, संवर्तन तथा प्रत्यावर्तन क्रिया चैतन्य पक्ष की विशिष्टता है, जो जड़ में नहीं पायी जाती।

:: संवेदना :- पाँचों ज्ञानेंद्रियों व कर्मेंद्रियों का ज्ञान अथवा विकास के प्रति प्रवृत्ति।

:: संवहन :- पूर्णता के अर्थ में जिज्ञासाओं का वहन। अथवा पूर्णता के अर्थ में वहनशीलता।

:: संरक्षण :- विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करना।

:: संबोधन :- यथार्थ-बोधन।

:: संवर्तन :- परिमार्जन एवं परिपूर्णता के लिये प्राप्त संकेत के अनुसरण क्रिया की सम्वर्तन संज्ञा है।

:: प्रत्यावर्तन:- जागृति सहज गतिशीलता।

- मानव जागृति क्रम एवं जागृति के अनुसार पशु मानव, राक्षस मानव, मानव, देव मानव, दिव्य मानव के रूप में दृष्टिगत होता है।

* मानव, देव मानव, दिव्य मानव रूप में जागृति परंपरा है ।

- मानव जागृति में चैतन्य पक्ष का संस्कार और शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में संस्कृति

एवं सभ्यता में ही गण्य है। यह मानव परंपरा में प्रमाणित होता है।

:: संस्कृति :- पूर्णता के अर्थ में कार्य-व्यवहार। क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता के अर्थ में किया गया कृतियाँ।

:- अखंड समाज के अर्थ में कृतियाँ।

:- जागृत व्यक्ति या व्यक्तियों की अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन।

:: सभ्यता :- सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में प्रमाणित होना। यही सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में अभिव्यक्ति है।

:- मानवीयतापूर्ण व्यवहार की सभ्यता संज्ञा है।

● चैतन्य पक्ष में जागृति ही संस्कार है। यह सुसंस्कार है एवं जीव चेतना वश भ्रम ही कुसंस्कार है।

:: सुसंस्कार :- मानवीयतापूर्ण मानव द्वारा अखंड समाज में, से, के लिए किया गया आवश्यकीय कार्य और आचरण सुसंस्कार है।

● समाज की अखंडता, मानवीयता पूर्ण आचरण पर निर्भर करती है ।

* मानवीयता की प्रतिष्ठा व्यक्ति के संस्कार, समाज की संस्कृति एवं सभ्यता तथा समाज गठन के मूल में पाई जाने वाली विधि एवं व्यवस्था पर निर्भर करती है।

* मानवीयता तथा अतिमानवीयता से सम्पन्न होने के लिए सहअस्तित्व में संकल्प, इच्छा व विचार का परिष्कृत होना आवश्यक है, जो सुसंस्कार ही है।

* सुसंस्कार के लिये वातावरण एवं अध्ययन ही प्रधान कारण है एवं सहायक भी है । इसको सुरक्षित तथा परिमार्जित करने का दायित्व मनीषियों पर निर्भर है। न्यायपूर्ण व्यवहार तथा अखण्ड सामाजिकता की प्रेरणा सुसंस्कारों के वर्धन में सहायक है।

● न्यायपूर्ण व्यवहार पक्ष, समाधान पूर्ण विचार पक्ष तथा सत्यानुभूति पूर्ण अनुभव पक्ष को भाषा द्वारा बोधगम्य, ज्ञानगम्य तथा व्यवहारगम्य बनाने का प्रयास अनुभवशील मानव अथवा जागृति सहज वृत्ति संपन्न व्यक्ति द्वारा किया जाता है।

:: सहजता :- व्यवहार, विचार एवं अनुभव की एकसूत्रता ही सहजता है।

:: सहज-वृत्ति :- सहजता प्राप्त मनीषियों की वृत्ति को ही 'सहज-वृत्ति' की संज्ञा

है।

:: न्यायपूर्ण व्यवहार :- सत्य सहज भास, संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति।

:: समाधानपूर्ण विचार :- सत्य सहज आभास।

:: चिंतन :- सत्य सहज प्रतीति।

:: ज्ञानानुभूति :- सहअस्तित्व रूपी परम सत्य में अनुभूति।

- ज्ञानानुभूति के लिए सहअस्तित्व रूपी ईष्ट के प्रति निर्भ्रम ज्ञान, अनन्यता, अनुराग तथा प्रेम के योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता का होना अनिवार्य है, जो साधक के न्याय पूर्ण व्यवहार, समाधान पूर्ण विचार से तथा किसी अनुभवपूर्ण मानव के आज्ञा पालन में पूर्ण निष्ठा से सिद्ध है।

:: निर्भ्रम ज्ञान :- जो जैसा है, उसको वैसा ही जानना व समझना, समझाना।

:: अनन्यता :- निर्भ्रम ज्ञान की निरंतरता।

:: अनुराग :- अनन्यता की निरंतरता।

:- निभ्रमता के लिए उत्कट प्रयास ही अनुराग है।

:: प्रेम :- अनुराग सहित अनन्यता की निरंतरता।

:- दया, कृपा, करूणा सहज संयुक्त अभिव्यक्ति।

- प्रेम की निरंतरता से ही मानव तद्रूप भाव को प्राप्त होकर भ्रम मुक्ति का अधिकारी होता है।

- अनादिकाल से व्यापक रूपी सत्ता हर इकाई को समान रूप में प्राप्त है ही, इसमें अनुभूति ही मानव के लिये सान्निध्यानुभूति है। यही मानव का लक्ष्य है।

- अनुभूति की स्थिति को ही 'कैवल्य' या 'तादात्म्य' अनुभूति की संज्ञा है, जिसमें क्लेश, अमर्ष, भय, भ्रम बंधन मुक्ति है।

- आत्मा सहअस्तित्व में अनुभूत होते ही बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन पर उस महिमा की प्रसारण-क्रिया बिंब-प्रतिबिंब-अनुबिंब-न्याय से प्रभाव सम्पन्न होती है।

- चैतन्य इकाई का अधिकतम विकसित अंश आत्मा ही है, क्योंकि हर अवस्था के परमाणु में मध्यांश, मध्यस्थ क्रिया में व्यस्त है और अन्य सभी अंग सम या विषम क्रिया में व्यस्त पाए जाते हैं।

- समझदारी की आंशिकता में क्रिया, क्रिया की आंशिकता में भोग, भोग के अनुपात में इंद्रियानुभव और इसके अतिरिक्त अनुमान के कारण ज्ञानवर्धन संपन्न हुआ है। मूल में पूर्ण ज्ञान व्यंजना का अधिकार आत्मा में है।

  :: व्यंजना :- अनुभव क्रिया का प्रभावशील, क्षमता अथवा प्रभाव क्षेत्र।

- अज्ञान, आलस्य, अत्याशा, आक्रोश, आवेश, प्रलोभन, अभाव व रोग पक्ष ही दु:ख का कारण है। समस्त दु:ख का मूल भ्रम में ही है।

- ह्रासांश में स्थित इकाई के लिए दो कारण हैं :- प्रथम है, अजागृति तथा द्वितीय है, शक्ति का अपव्यय।

- अजागृत को जागृत बनाना ही सामाजिकता का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य और कार्यक्रम है।

  ★ जो जिसको अधिक मूल्यवान मानता है, उसी के लिए वह अपने, तन, मन व धन का व्यय करता है। ऐसी मूल्यांकन क्रिया मनुष्य के द्वारा निर्भ्रान्त, भ्रान्ताभ्रान्त और भ्रान्त अवस्था भेद से होती है जिसके कारण कुछ मनुष्यों ने चार विषयों, कुछ मनीषियों ने तीन ऐषणाओं कुछ निर्भ्रान्त मानवों ने भ्रममुक्ति को परमावधि मूल्यांकित किया है। इस मूल्यांकन के अनुरूप ही विभिन्न स्तर के मनुष्यों द्वारा समस्त साधनों का नियोजन किया गया है।

  ❋ मानव कुल में निहित वैविध्यता का निराकरण केवल न्यायपूर्ण व्यवहार समाधान पूर्ण विचार नीति से संभव हुआ है।

  ❋ भ्रांत स्थिति से की गयी मूल्यांकन क्रिया को **आसक्ति,** भ्रांताभ्रांत स्थिति से किए गए मूल्यांकन की **जागृति** तथा निभ्रांत स्थिति से किए गए मूल्यांकन स्थिति की **'यथार्थ'** संज्ञा है।

  ❋ यथार्थ मूल्यांकन क्षमता ही **दर्शन की पूर्णता,** दर्शन की पूर्णता ही **संतुलन,** पूर्ण संतुलन ही **ज्ञान,** ज्ञान ही व्यापकता में **अनुभूति,** व्यापक में अनुभूति ही **निर्भ्रमता** और निर्भ्रमता से ही यथार्थ मूल्यांकन क्रिया नि:सृत होती है। ऐसी इकाई में न्याय पूर्ण व्यवहार और धर्म पूर्ण विचार स्वभाव के रूप में परिलक्षित होता है।

- अनुभव के लिए समझदारी, समझदारी के लिए अनुभूति, इच्छा के लिए समझदारी और समझदारी के लिए इच्छा, इच्छा के लिए क्रिया और क्रिया के लिये इच्छा, उपयोग के

लिये क्रिया और क्रिया के लिए उपयोग, क्रिया के लिए उत्पादन और उत्पादन के लिए क्रिया व्यस्त है।

- रूप क्रिया की गणना काल, सम्वेग, वेग , विसर्जन, गुण व स्वभाव के अनुसार स्थूल व सूक्ष्म भेद से है, जो मानव की समझदारी (ज्ञान) बुद्धि में भाव, इच्छा में प्रतिभाव, विचार में अनुभाव, मन से प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त होती है।

- सुरूप व कुरूप के भेद से रूप, जड़ व चैतन्य के भेद से क्रिया, लोक व लोकेश के भेद से लक्ष्य, विषय व निर्विषय व्यवस्था के भेद से ज्ञान, विधि व निषेध के भेद से कर्म, सार्थक व निरर्थक भेद से भाषा है।

- अवस्था भेद से आसक्ति एवं समाधान, आसक्ति एवं समाधान भेद से आवश्यकता, आवश्यकता भेद से श्रम, श्रम भेद से उत्पादन, उत्पादन भेद से उपलब्धि, उपलब्धि भेद से परिणाम, परिणाम भेद से ही क्षमता, योग्यता एवं पात्रता; क्षमता, योग्यता एवं पात्रता भेद से सहजात्मक, लोकात्मक (ईषणात्मक) और विषयात्मक प्रवृत्तियाँ तथा इन तीनों अथवा इनके मिश्रित बौद्धिक अवस्था में ही चित्रण की अभिव्यक्ति की समर्थता है।

- सतर्कता, सजगता, सहजता प्राप्त मानव जीवन में विश्राम का तथा लोकासक्त मानव जीवन में श्रम का क्षोभ है।

- मानव ने अपनी क्षमता, योग्यता और पात्रता के अनुसार सहजोन्मुखता में नित्यता का, लोकोन्मुखता में अमरत्व का बोध और विषयोन्मुखता में अनित्यता की स्वीकृति किया है। सहजता में दिखावा, रहस्य तथा अविद्या व भ्रम का पूर्ण विलय होता है। इसीलिए जागृत मानव विकार से मुक्त है। साथ ही इस स्थिति में निरंतर तृप्ति, समाधान और विश्राम का अनुभव है।

- लोकेषणा ही श्रेष्ठ ऐषणा है। देव मानव स्वयं की जागृति को प्रमाणित करने के अर्थ में मानवीय परंपरा का पोषण और सम्वर्धन के लिए जन बल व धन का नियोजन करते हैं। यही यश का कारण व स्वरूप है, जिसकी सार्थकता मानव परंपरा में व्यवस्था सार्वभौमिकता के रूप में होना है। इसके फलन में अखंड समाज का ख्याति होना आवश्यक है। लोकेषणा अर्थात् जागृत मानव परंपरा को लोकव्यापीकरण करने के क्रम में यश का स्वीकृति है। यश का तात्पर्य-जागृति की स्वीकृति, सहानुभूति, अनुकरण क्रिया है। मानवीयता के विरोधी जितने भी कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाकलाप है उससे मुक्त रहना ही यश है।

- ❋ चारों विषय इंद्रिय तृप्ति से सीमित है। स्थूल शरीर मात्र की मृत्यु निश्चित है इसलिए विषयों से प्राप्त सुख की निरंतरता नहीं है।

- मानवीयता पूर्ण परंपरा सहज उद्देश्य से प्रयास, प्रयास भेद से साधनों का उपयोग, सदुपयोग; उपयोग, सदुपयोग भेद से फल; फल से प्रयोजन; प्रयोजन से उद्देश्य सफल होना पाया जाता है। यही जागृति पूर्ण जीवन परंपरा चक्र है।

- समस्त साधनों की गणना अंतरंग और बहिरंग भेद से है।

  :: बहिरंग साधन :- शरीर व उससे उत्पन्न या उत्पादित समस्त वस्तुएँ बहिरंग साधन हैं।

  :: अंतरंग साधन :- मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि व उससे उत्पन्न संकल्प, इच्छा, विचार व आशा अंतरंग साधन है।

- शरीर का साध्य मन, मन का साध्य वृत्ति, वृत्ति का साध्य चित्त, चित्त का साध्य बुद्धि, बुद्धि का साध्य आत्मा और आत्मा का साध्य सहअस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाण है।

  :: साध्य :- जिसको पाना है।

  :: साधन :- साध्य को पाने हेतु आवश्यक प्रयुक्ति, उपाय एवं वस्तु ।

  :: साधक :- साध्य को पाने हेतु साधन को जो प्रयुक्त करता है।

- जिसकी जागृति और तृप्ति शेष है, उसे ही शेष जागृति को प्राप्त करने के लिये साधन की आवश्यकता है।

- आत्मा का पूर्ण विकास (ज्ञान की पारदर्शकता) सहअस्तित्व में अनुभूति में, बुद्धि का पूर्ण विकास आत्मा के संकेत ग्रहण से, चित का पूर्ण विकास बुद्धि के संकेत बोध की सत्यसाक्षी में कलाकरण योग्य क्षमता से, वृत्ति का पूर्ण विकास चित्त के संकेत ग्रहण अर्थात् धर्म पूर्ण विचार निर्माण योग्यता से तथा मन का पूर्ण विकास वृत्ति का संकेत ग्रहण कर न्यायसम्मत व्यवहार पात्रता अर्जित करने से है ।

- मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि व आत्मा जीवन में अभिन्न है। जीवन जागृति के स्थिति में, जीवन परंपरा में प्रमाणित होने वाली विभूतियाँ (क्रियाएँ) बल और शक्ति के रूप में निम्न हैं :- आत्मा में दो विभूतियाँ, बुद्धि में चार, चित्त में सोलह, वृत्ति में छत्तीस व मन में स्थिति और गति में चौसठ विभूतियाँ (क्रियाएँ) पायी जाती है। उपरोक्त सभी क्रियाओं को हर व्यक्ति प्रमाणित कर सकता है । इस प्रकार मानव (जीवन) में कुल स्थिति और गति अर्थात् बल और शक्ति के रूप में 122 क्रियाएं पायी जाती है।

- अनुभव और आनंद रूपी प्रमाण आत्मा में ;
- अस्तित्व एवं परमानंद आत्मस्थ अनुभूति है।

:: अस्तित्व (अनुभव) :- नाश रहित गुण। नित्य वर्तमान।

:: परमानन्द (प्रामाणिकता) :- आत्मा की पारदर्शकता अथवा सहअस्तित्व में अनुभूति।

:: आनंद :- मध्यस्थ क्रिया सहज पूर्ण-बोध या आत्मबोध ।

:: धी :- निश्चय की निरंतरता।

:: अस्तित्व (बोध) :- ज्ञान-ग्रहण एवं प्रभावीकरण क्षमता।

:: धृति :- भय का अभाव।

:: श्रुति :- यथार्थ रूपी ज्ञान, विवेक, विज्ञान का भाषाकरण ।
यथार्थ जानकारी का भाषाकरण।

:: स्मृति :- बार-बार आवश्यकतानुसार, भाषापूर्वक समझदारी का प्रस्तुतीकरण ।

:: मेधा :- कला को धारण करने वाली क्रिया।

:: श्री :- समृद्धि की स्वीकृति।

:: संतोष :- अभाव का अभाव।

:: कला :- उपयोगिता योग्य सुंदर क्रिया।

:: कान्ति :- अज्ञान को क्षीण करने वाली प्रक्रिया।

:: इच्छा :- वांछित एवं इप्सित के प्रति सजगता।

:: विद्या :- जो जैसा है, उसको वैसा ही स्वीकार करना।

:: प्रज्ञा :- यथार्थ की पूर्ण अनुमान सहित पूर्ण स्वीकृति क्रिया ।

:: कीर्ति :- विकास की ओर सक्रियता।

:: विचार :- स्फुरण पूर्वक सत्यता को उद्घाटित करने हेतु की गई क्रिया।

:: निश्चय :- सत्यतापूर्ण विचार की निरंतरता।

:: धैर्य :- न्यायपूर्ण विचार की निरंतरता।

:: शांति :- समाधान पूर्ण विचार व्यवहार में गतित होना।

:: दया :- दूसरे के विकास में हस्तक्षेप न करना, सहायक होना।

:: दम :- ह्रास की ओर जो आसक्ति है, उसकी समापन क्रिया। उत्थान की ओर प्रवृत्त।

:: कृपा :- दूसरे मानव के जागृति के लिये सहायता अथवा पात्रता अर्जित करने में सहायक होना।

:: करुणा :- जागृति के लिए उत्प्रेरित करना अथवा जागृति के लिए योग्यता और पात्रता अर्जित करने में सहायक होना।

:: उत्साह :- जागृति के लिये प्रवृत्ति, उत्सव, सजगता।

:: कल्पना :- मान्यता का पूर्व रूप।

:: भाव :- मूल्य, मूल्यांकन।

:: श्रद्धा :- श्रेय की ओर गतिशीलता।

:: क्षमा :- जागृति के लिए की जाने वाली सहायता के समय उसके ह्रास पक्ष से अप्रभावित रहना।

:: अनुराग :- निर्भ्रम ज्ञान की निरंतरता में अनन्यता।

:: जाति :- रूप, गुण, स्वभाव व धर्म की विशिष्टता एवं भौतिकता।

- मन को जो प्रिय हो, उसके चुनाव की प्रकिया की चयन संज्ञा है। मन में आस्वादन अपेक्षा पूर्वक चयन होता है।

- चित्त सहज चित्रण के आठ क्रियायें - रूप, गुण, गणना, काल, विस्तार, श्रम, गति, परिणाम।

  ⋆ न्याय पूर्ण व्यवहार तथा व्यवसाय के समत्व में सहअस्तित्व तथा समृद्धि, शरीर तथा हृदय के समत्व में तृप्ति, हृदय तथा प्राण के समत्व में आरोग्य तथा पुष्टि, प्राण एवं मन के समत्व में बल तथा स्फूर्ति, मन व वृत्ति के समत्व में सुख, वृत्ति व चित्त के समत्व में शांति, चित्त व बुद्धि के समत्व में संतोष, बुद्धि व आत्मा के समत्व में आनंद आत्मा तथा व्यापक सत्ता में नित्य समत्व है ही। इसीलिए परमानन्द सहज अनुभूति व प्रमाण है।

- परमानन्द सहज अनुभूति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। परमानन्द सह-अस्तितव में अनुभव सहज वैभव है। यह जागृत जीवन में सहज क्रिया और अभिव्यक्ति है।

जीवन सहज 122 क्रियाओं की परिभाषा

- **आत्मा सहज दो क्रियाएँ -** अनुभव व प्रामाणिकता रूपी दो क्रियाकलाप।

अस्तित्व सहज **परमानंद सहज**

अनुभव **प्रामामिकता**

अस्तित्व :- सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में नित्य वर्तमान।

परमानंद :- अनुभव संपन्न अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन।

- **बुद्धि सहज चार क्रियाएँ :-** बोध एवं संकल्प रूपी चार क्रियाकलाप।

आनन्द :- अंतविहीन (बिना रूकावट) उत्सव क्रिया, नित्य उत्सव क्रिया।

धी :- उत्सवशीलता का प्रवर्तन क्रिया (परावर्तन के लिए तत्परता)।
जागृति सहज स्थिति और गति की स्वीकृति क्रिया परमता ही आनंद और धी है।

अस्तित्व :- स्थिति, गति, विकास, जागृति और वर्तमान सहज निर्भ्रम स्वीकृति -

1. जानना, मानना, स्वीकार करना
2. सहअस्तित्व।

धृति :- सहअस्तित्व सहज सत्य में निष्ठा और परावर्तित करने केलिए प्रवृति।
सत्य बोध सहज परावर्तन में निष्ठा।
भय का अभाव वर्तमान में विश्वास ही धृति है।

- **चित्त सहज सोलह क्रियाएँ :-** चिंतन व चित्रण रूपी सोलह क्रिया कलाप :-

श्रुति, स्मृति

श्रुति :- यथार्थ समझदारी का भाषाकरण।
यथार्थ जीवन व दर्शन पूर्ण अभिव्यक्ति।
सहअस्तित्व सहज यथार्थों का भाषा सहज संप्रेषणा, अभिव्यक्ति।

स्मृति :- बार-बार आवश्यकतानुसार भाषा पूर्वक समझ का प्रस्तुतीकरण।
:- भाषा से इंगित वस्तु को साक्षात्कार सहित चित्रण समेत की गई स्वीकृति, जिसको बार-बार दोहराया जाना प्रमाण है।

मेधा, कला

मेधा :- स्मृति का धारक-वाहक क्रिया ।

:- कला को साक्षात्कार करने वाली चिंतन क्रिया।

:- उपयोगिता एवं कला की संयुक्त उपलब्धि (प्रकाशन) एवं योग्यता मेधा अपने में, जीवन क्रियाओं में, से विज्ञान व विवेक सम्मत साक्षात्कार सहित स्वीकार क्रिया है।

कला :- उपयोगिता योग्य सुंदर क्रिया।

कान्ति, रूप

कान्ति :- कान्ति का तात्पर्य प्रकाश से है। सार्थकता संभावना के अर्थ में स्पष्ट होना प्रकाश है।

रूप :- आकार, आयतन, धन।

निरीक्षण, गुण

निरीक्षण :- अनुभव मूलक दर्शन व उसके प्रकटन की संयुक्त चिंतन चित्रण क्रिया ।

गुण :- सापेक्ष गतियाँ।

:- सम-विषम- मध्यस्थ गतियाँ, गतियों का आंकलन।

:- स्वभाव गति और अपेक्षित गति का प्रकाशन।

संतोष, श्री

संतोष :- अभाव का अभाव।

:- आवश्यकता से अधिक उत्पादन सहित विवेक सम्मत विज्ञान पूर्वक प्रमाणित होने की तत्परता।

श्री :- समृद्धि या समृद्धि की निरंतरता सहज स्वीकृति।

प्रेम, अनन्यता

प्रेम :- पूर्णानुभूति।

:- दया, कृपा, करुणा की संयुक्त अभिव्यक्ति।

:- पूर्णता में रति व उसकी निरंतरता।

अनन्यता :- मानव की परस्परता व नैसर्गिकता में पूरक क्रिया- कलाप।

:- प्रामाणिकता व समाधान में निरंतरता।

:- अजागृत के जागृति में सहायक क्रिया।

वात्सल्य, सहजता

वात्सल्य :- अभ्युदय के अर्थ में पोषण, संरक्षण की निरंतरता।

सहजता :- स्पष्टता व प्रामाणिकता।

:- व्यवहार, रीति, विचार एवं अनुभव की एक सूत्रता।

श्रद्धा, पूज्यता

श्रद्धा :- श्रेय की और गतिशीलता अर्थात् आचरण पूर्णता की ओर गुणात्मक परिवर्तन।

:- जागृति और प्रामाणिकता की ओर गति व उसकी निरंतरता।

पूज्यता :- गुणात्मक विकास और जागृति के लिए सक्रियता।

- **वृत्ति सहज छत्तीस क्रियायें**

तुलन एवं विश्लेषण रूपी छत्तीस क्रियाकलाप

विद्या, प्रज्ञा

विद्या :- जो जैसा है, अर्थात् जिस प्रयोजनार्थ है उसे वैसा ही विधिवत् जानने, मानने, स्वीकार करने की क्रिया।

प्रज्ञा :- परिष्कृति पूर्ण संचेतना।

:- यर्थाथ और यथार्थ सहज अनुमान अनुभव क्रिया।

:- वस्तुगत सत्य, वस्तु स्थिति सत्य के प्रति अवधारणा एवं अनुभव मूलक गति और स्थिति सत्य में बोध व अनुभव मूलक गति है।

कीर्ति, विचार (वस्तु)

कीर्ति :- जागृति की ओर सक्रियता।

:- वर्तमान में विकास और जागृति के संदर्भ में की गई श्रेष्ठता व सुलभता की प्रामाणिक प्रस्तुति।

विचार :- स्फुरण पूर्वक सत्यता को उद्‌घाटित करने हेतु की गई क्रिया।

:- सहअस्तित्व सहज प्रकाशन, संप्रेषणा, अभिव्यक्ति ।

निश्चय, धैर्य

निश्चय :- सत्यतापूर्ण विचार की निरंतरता।

:- लक्ष्य, दिशा और प्रयोजन की ओर गति।

:- सत्यता पूर्ण विचार की निरंतरता।

धैर्य :- न्यायपूर्ण विचार की निरंतरता।

शांति, दया

शांति :- समाधान पूर्ण विचार का फलन।

:- इच्छा एवं विचार की निर्विरोधिता।

दया :- दूसरे के विकास में हस्तक्षेप न करना।

:- पात्रता के अनुरूप वस्तु, योग्यता प्रदायी क्षमता ।

कृपा, करुणा

कृपा :- दूसरे के विकास के लिए सहायता अथवा पात्रता अर्जित करने में सहायक होने में अर्हता सम्पन्न रहना ।

:- वस्तु के अनुरूप पात्रता प्रमाणित कराने वाली क्षमता योग्यता को स्थापित करने की क्रिया ।

करुणा :- विकास के लिए उत्प्रेरित करना।

:- विकास के लिए योग्यता और पात्रता अर्जित करने में सहायक होना।

दम, क्षमा

दम :- ह्रास की ओर जो आसक्ति है, उसकी समापन क्रिया।

:- भ्रम, भय और अपव्ययता से मुक्ति और जागृति में निष्ठा।

क्षमा :- विकास के लिए की जाने वाली सहायता के समय उसके ह्रास पक्ष से अप्रभावित रहना।

तत्परता, उत्साह

तत्परता :- जागृति, जागृति क्रम में सक्रियता।

:- उत्पादन कार्यकलाप में लगनशीलता।

:- मानवीय व्यवहार-आचरण में निष्ठा।

:- व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज उदय की ओर परावर्तन क्रिया।

उत्साह :- उत्थान के लिए साहस।

:- व्यवस्था सहज सजगता।

कृतज्ञता, सौम्यता

कृतज्ञता :- जिस किसी की भी सहायता से उन्नति (विकास और जागृति) की प्राप्ति में सहायता मिली हो, उसकी स्वीकृति।

सौम्यता :- स्वेच्छा से स्वयं का नियंत्रण।

:- स्वभावगति प्रतिष्ठा अर्थात् शिष्टता।

गौरव, सरलता

गौरव :- निर्विरोध पूर्वक अंगीकार किये गये अनुकरण।

सरलता :- ग्रन्थि व तनाव रहित अगंहार।

विश्वास, सौजन्यता

विश्वास :- परस्परता में निहित मूल्य निर्वाह।

:- व्यवस्था की समझ, समाधान की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा।

सौजन्यता:- सहकारिता, सहभागिता, सहयोगिता, पूरकता।

सत्य, धर्म

सत्य :- जो तीनों काल में एक सा भासमान, विद्यमान एवं अनुभव गम्य है।

:- अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना विरचना के प्रति प्रामाणिकता का नित्य वर्तमान।

:- अस्तित्व सहज स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य नित्य वर्तमान।

धर्म :- धारणा ही धर्म है।

:- जिससे जिसका विलगीकरण न हो।

न्याय (सौजन्यता), संवेदना

न्याय :- मानवीयता के पोषण, संवर्धन एवं मूल्यांकन के लिए संपादित क्रियाकलाप।

:- संबंधों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह तथा मूल्यांकन व उभयतृप्ति क्रिया।

संवेदना :- पूर्णता के अर्थ में वेगित होना।

:- नियम-त्रय सहित किया गया कार्य-व्यवहार विचार।

:- विकास व जागृति के प्रति वेदना = जिज्ञासा, अपेक्षा, आशा।

:- जाने हुए को मानने के लिए, पहचाने हुए को निर्वाह करने के लिए स्वयं स्फूर्त जीवन सहज उद्देश्य और प्रक्रिया।

:- सभी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य संकेतों को ग्रहण करने की क्रिया।

:- व्यवस्था के प्रति तत्परता।

तादात्मयता, साहस

तादात्मयता:- नित्यता के अर्थ में स्वीकार सहित किया गया निर्णय।

साहस :- सहनशीलता समेत प्रसन्नता सहित किया गया व्यवहार क्रिया कलाप।

संयम, नियम

संयम :- मानवीयता पूर्ण विचार, व्यवहार एवम् व्यवसाय में नियंत्रित होना।

नियम :- नियंत्रण पूर्ण स्वयंस्फूर्त विधि से, व्यवस्था में जीते हुए, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने की प्रवृत्ति और प्रमाण।

वीरता, धीरता

वीरता :- अन्य को न्याय दिलाने में स्व-शक्तियों का नियोजन।

:- दूसरों को न्याय उपलब्ध कराने में अपनी भौतिक व बौद्धिक शक्तियों का नियोजन करना।

धीरता :- न्याय के प्रति निष्ठा एवं दृढ़ता।

भाव, संवेग

भाव :- मौलिकता=मूल्य=जिम्मेदारी, भागीदारी।

संवेग :- संयोग से प्राप्त गति।

जाति, काल

जाति :- रूप, गुण, स्वभाव व धर्म की विशिष्टता, भौतिक क्रिया, एकता, विविधता।

:- भौतिक वस्तु में अनेक प्रकार के परमाणु।

काल :- क्रिया की अवधि।

तुष्टि, पुष्टि

तुष्टि :- समझदारी पूर्वक छः सद्गुणों से संपन्न होना, परिवार में समाधान, समृद्धि को प्रमाणित करना। अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना निरंतर तुष्टि का स्वरूप है।

पुष्टि :- तुष्टि का निरंतर मूल्यांकन में निरीक्षण, परीक्षणपूर्वक किया जाना। पूर्णता की निरंतरता ही जीवन सहज संतुष्टि है। मानव परंपरा के रूप में उसका लोकव्यापीकरण होना ही पुष्टि है।

• मन सहज चौसठ क्रियाएँ

चयन व आस्वादन रूपी चौसठ क्रियाकलाप

भक्ति, तन्मयता

भक्ति :- भय से मुक्त होने का क्रियाकलाप और श्रम मुक्ति।

:- भजन और सेवा से संयुक्त अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशन क्रियाकलाप।

:- भक्ति संपूर्ण निष्ठा की अभिव्यक्ति है।

तन्मयता :- सम्यक निष्ठा के लिए निश्चित लक्ष्य एवं दिशा हेतु निर्देशन विधि से जागृति सहज प्रभाव में अभिभूत होना तन्मयता है।

ममता,उदारता

ममता :- अपनत्व की पराकाष्ठा पूर्वक पोषण संरक्षण कार्य।

:- स्वयं की प्रतिरूपता की स्वीकृति, उसकी निरंतरता।

उदारता :- स्वप्रसन्नता पूर्वक, दूसरों की जीवन जागृति, शरीर स्वस्थता व समृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार तन, मन, धन रूपी अर्थ का अर्पण-समर्पण

करना।

:- प्राप्त समाधान रूपी सुख सुविधाओं (समृद्धि) का, दूसरों के लिए सदुपयोग करना और प्रसन्न होना।

सम्मान, सौहार्द्र

सम्मान :- व्यक्तित्व, प्रतिभा की स्वीकृति और उसका संतुलन सहज प्रकाशन।

:- व्यक्तित्व, प्रतिभा की श्रेष्ठता की स्वीकृति, निरंतरता व स्पष्टता।

सौहार्द्र :- जिस प्रकार से स्वीकृति हो उस अवधारणा, अनुभव, स्मृति और श्रुति को यथावत् प्रस्तुत करने का क्रियाकलाप।

स्नेह, निष्ठा

स्नेह :- न्यायपूर्ण व्यवहार में निर्विरोधिता।

:- संतुष्टि में, से, के लिए स्वयं स्फूर्त मिलन और निरंतरता।

निष्ठा :- जागृति पूर्ण लक्ष्य में निश्चित अवधारणा व स्मरण पूर्वक प्राप्त करने व प्रमाणित करने का निरंतर प्रयास।

पुत्र-पुत्री, अनुराग

पुत्र-पुत्री :- शरीर रचना की कारकता सहज स्वीकृति और जीवन जागृति में पूरकता निर्वाह करने वाली मानव इकाई ही पिता है।

:- पोषण, सुरक्षा की स्वीकृति।

:- संतानों के पोषण संरक्षण के लिए, उत्पादन हेतू सक्षम बनाने हेतु आधार के रूप में स्वयं को स्वीकारना।

:- शिक्षा संस्कार प्रदान करने में स्वयं को सक्षम स्वीकारना।

:- सम्पूर्ण ज्ञान प्रावधानित करने के लिए स्वयं में स्वीकारना।

अनुराग :- निर्भ्रमता में प्राप्त आप्लावन (अनुपम रसास्वादन संभावना की स्वीकृति)

:- आप्लावन अर्थात् संबंधो में निहित मूल्यों का निर्वाह करने में सफलता।

साथी, दायित्व

साथी :- सर्वतोमुखी समाधान प्राप्त व्यक्ति।

:- स्वयं स्फूर्त विधि से दृष्टा पद में हों।

:- स्वयं को जानकर, मानकर, पहचान कर, निर्वाह करने के क्रम में साथी कहलाता है।

दायित्व :- परस्पर व्यवहार, व्यवसाय एवं व्यवस्थात्मक संबंधों में निहित, मूल्यानुभूति सहित, शिष्टतापूर्ण व्यवहार।

सहयोगी, कर्तव्य

सहयोगी :- प्रणेता अथवा अभ्युदय के अर्थ में मार्गदर्शक अथवा प्रेरक के साथ-साथ अनुगमन करना, स्वीकार पूर्वक गतित होना। उत्पादन में सहयोगी होना।

कर्तव्य :- प्रत्येक स्तर में प्राप्त संबंधों एवं सम्पर्कों और उसमें निहित मूल्यों का निर्वाह।

स्वायत्त, समृद्धि

स्वायत्त :- समृद्धि का अनुभव ही स्वायत्त है।

समृद्धि :- आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि है।

हित, स्वास्थ्य

हित :- शरीर सीमान्तवर्तीय उपयोगिता।

स्वास्थ्य :- मन एवं प्रवृत्तियों के अनुसार कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रियों का कार्य करने योग्य स्थिति में होना।

:- **स्पन्दन :-** स्फुरण योग्य स्थिति में कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय का होना।

प्रिय, प्रवृत्तियाँ

प्रिय :- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धात्मक ज्ञानेन्द्रियों के लिए शरीर स्वस्थता के अर्थ में अनुकूल योग संयोग।

प्रवृत्तियाँ :- उपलब्धि एवं प्रयोजन सिद्धि हेतु प्रयुक्त बौद्धिक संवेग।

:- परावर्तन होने के लिए जीवन में होने वाली आशा, विचार, इच्छा, संकल्पों एवं प्रामाणिकता की स्थिति, व्यवहार के अर्थ में मानवीयतापूर्ण मानसिकता।

उल्लास, ह्रास

उल्लास :- मुखरण। उत्थान की और पारदर्शक प्रस्तुति और गति।

ह्रास :- समाधान सहित प्रसन्नता व मुस्कान सहित मानवीय लक्ष्य व दिशा की ओर गति।

शील, संकोच

शील :- जागृति सहज वैभव को शिष्टता के रूप में सभी आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य में प्रामाणिकता को इंगित कर लेना और कराने की क्रिया का नाम शील है।

:- शिष्टता पूर्ण लक्षण।

संकोच :- अस्वीकृति को शिष्टता से प्रस्तुत करना।

गुरु, प्रामाणिक

गुरु :- शिक्षा-संस्कार नियति क्रमानुषंगीय विधि से जिज्ञासाओं और प्रश्नों को समाधान के रूप में अवधारणा में प्रस्थापित करने वाला मानव गुरु है।

प्रामाणिक :- प्रमाणों का धारक वाहक-यथा अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण समुच्चय को प्रयोग, व्यवहार अनुभवपूर्ण विधि से प्रमाणित करना और प्रमाणों के रूप में जीना।

शिष्य, जिज्ञासु

शिष्य :- जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए शिक्षा-संस्कार ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमें गुरु का सम्बन्ध स्वीकृत हो चुका रहता है।

जिज्ञासु :- जीवन ज्ञान सहित निर्भ्रम शिक्षा ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा का प्रकाशन।

भाई-मित्र, प्रगति

भाई :- एकोदर (एक उदर (पेट) से होने वाले) को भाई का संबोधन है। भाईवत् स्वीकृतियाँ या मित्र।

मित्र :- सहोदरवत् (सगे भाई जैसा) जो होते हैं, उन्हें भाई व मित्र का संबोधन है।

प्रगति :- मानवत्व रूपी सहज व्यवस्था व समग्र व्यवस्था अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी।

:- समाधान प्रधान समृद्धि सहज अपेक्षा प्रक्रिया और प्रमाण।

बहन, उन्नति

बहन :- एकोदरीय (एक पेट से पैदा होने वाली) अथवा एकोदरवत् बहनें होती हैं।

उन्नति :- समृद्धि प्रधान समाधान सहज अपेक्षा, प्रक्रिया व प्रमाण।

:- जागृति और उसकी निरन्तरता की और गति।

स्वीकृति, स्वागत

स्वीकृति :- अनुभव मूलक प्रभाव में इंगित होने वाले सम्पूर्ण संकेतों को यथावत् परावर्तन में प्रमाणित करने की क्रिया।

स्वागत :- अवधारणा अनुभव के लिए स्वीकृत क्रिया

:- नियम, न्याय, समाधान, सत्य सहज स्वीकृतियों, के लिए तैयारियाँ।

:- विवेक व विज्ञान सम्मत मानसिक, वैचारिक और ऐच्छिक तैयारियाँ।

रुचि, पहचान

रुचि :- रासायनिक द्रव्यों से रचित रचनात्मक व्यवस्था में अनुकूल भौतिक रासायनिक वस्तुओं के संयोग से योग में प्राप्त परिणामों की पहचान।

पहचान :- इन्द्रिय सन्निकर्ष में चरितार्थता आवश्यक अथवा अनिवार्य तत्व।

:- वस्तुओं का योग संयोग से प्राप्त कुल परिणाम की स्वीकृति।

सुख, स्फूर्ति

सुख :- समाधान

स्फूर्ति :- समाधान सहज प्रमाणों में, से, के लिए प्रवृत्ति।

पति-पत्नि, यतीत्व-सतीत्व

यतीत्व :- यत्न (प्रयोग) पूर्वक तरने के लिए, जागृति निर्भ्रमता और जागृति सहज निरंतरता के लिए किया गया सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार; निर्भ्रमता सहित की गई प्रक्रिया एवं प्रयास । यत्न अर्थात् शोधपूर्वक समझना ही तरना।

सतीत्व :- सत्व (संकल्प) पूर्वक तरने, जागृत होने के लिए किया गया कार्य-व्यवहार, समझ, प्रक्रिया समुच्चय; भ्रम मुक्ति । सत्व अर्थात् संकल्प निष्ठापूर्वक समझना ही तरना ।

माता, पोषण

पोषण :- इकाई + अनुकूल इकाई ।

पिता, संरक्षण

संरक्षण :- निर्बाधता । सुगमता के अर्थ में है।

ज्ञानेंद्रिय - कर्मेन्द्रिय क्रियाएं

मृदु-कठोर, वहन-संवहन

परिभाषा :- **संवहन-मृदु** :- (1) स्पर्शेंद्रिय से कम भार व दबाव को सहने वाली वस्तुएँ। (2) संकुचन पूर्वक वहन करने वाली वस्तुएँ ।

कठोर :- स्पर्शेंद्रिय से अधिक भार व दबाव को सहने वाली वस्तुएं । पूर्णता के वेदना सहित, गति वहन करना।

परिभाषा :- छः प्रकार की रुचियां जीभ के संयोग में आई वस्तु चाहे तरल, विरल, ठोस क्यों न हो, परिणाम स्वरूप ही पहचानना होता है । हर जागृत मानव संदवेदनाओं के प्रयोजनों का स्वस्थ शरीर के प्रयोजनों के लिए पहचाने रहना स्वाभाविक रहता है।

शीत/उष्ण:- पोषण/शोषण

खट्टा :- पोषण/शोषण

मीठा :- पोषण/शोषण

चरपरा :- पोषण/शोषण

कडुवा :- **पोषण/शोषण**

कसैला :- **पोषण/शोषण**

खारा :- **पोषण/शोषण**

सुगन्ध/दुर्गन्ध :- **प्रश्वसन/विश्वसन**

सुरूप/कुरूप :- **अपनापन/परायापन**

पोषण :- इकाई + अनुकूल इकाई ।

शोषण :- इकाई - अनुकूल इकाई ।

:- इकाई + प्रतिकूल इकाई।

''सर्व शुभ हो''

भूमिः स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यं यातु शुभोदयम् ॥

ग्रंथ

"अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन"
बनाम
"मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद"

दर्शन (मध्यस्थ दर्शन)
- ★ मानव व्यवहार एवं दर्शन
- ★ मानव कर्म दर्शन
- ★ मानव अभ्यास दर्शन
- ★ मानव अनुभव दर्शन

वाद (सहअस्तित्ववाद)
- ★ व्यवहारात्मक जनवाद
- ★ समाधानात्मक भौतिकवाद
- ★ अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शास्त्र (अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन)
- ★ व्यवहारवादी समाजशास्त्र
- ★ आवर्तनशील अर्थचिंतन
- ★ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

योजना
- ★ जीवन विद्या योजना
- ★ मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना
- ★ परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना

संविधान
- ★ मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

परिभाषा
- ★ परिभाषा संहिता

अन्य
- ★ जीवन विद्या एक परिचय
- ★ विकल्प
- ★ अध्ययन बिंदु
- ★ आरोग्य शतक
- ★ संवाद - भाग-1
- ★ संवाद - भाग-2

पुस्तक प्राप्ति संपर्क एवं निःशुल्क PDF डाउनलोड के लिए :-

Website : www.madhyasth-darshan.info; Email. : books@madhyasth-darshan.info